प्रकाशक :

रतिराम शास्त्री
साहित्य-भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ ।

मुद्रक :

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान प्रेस,
होशियारपुर ।

सूक्तानुक्रमिणा

क्रम संख्या	सूक्तनाम	पृष्ठ संख्या
१.	अग्नि सूक्त	१
२.	मरुत् सुक्त	१०
३.	विष्णु सूक्त	२८
४	द्यावापृथिवी सूक्त	३६
५	इन्द्र सूक्त	४३
६.	रुद्र सूक्त	६२
७.	मित्र सूक्त	८१
८.	उषस् सूक्त	६०
६.	पर्जन्य सूक्त	१०६
१०.	पूषन् सूक्त	११५
११.	आपस् सूक्त	१२२
१२.	अश्विनौ सूक्त	१२६
१३.	वरुण सूक्त	१३३
१४.	मण्डूक सूक्त	१४३
१५.	यम सूक्त	१५४
१६.	अक्ष सूक्त	१७१
१७.	पुरुष सूक्त	१८६
१८.	सृष्ट्युत्पति सूक्त (नासदीय)	२०२

प्राक्कथन

वाचक वृन्द !

ऋग्वेद के कतिपय सूक्त प्रत्येक यूनिवर्सिटी की संस्कृत M. A. परीक्षा मे निर्धारित हैं। पीटर्सन (Peterson) कृत सूक्त संग्रह बहुत दिनों तक आगरा यूनिवर्सिटी में चलता रहा जो बनारस, बम्बई, मद्रास, आदि यूनिवर्सिटियों में अब भी चलता है। मैकडानल (Arthur Anthony Macdonell) जिसे मुग्धानल भी कहते है,— कृत वैदिक रीडर आगरा यूनिवर्सिटी के संस्कृत M. A. में चलती है। इसमें मंत्रों का अर्थ मुग्धानल ने केवल इङ्गलिश में किया है, सायणभाष्य या संस्कृत व्याख्या मंत्रों की नहीं दी है, जिसके कारण इङ्गलिश जानकार छात्र वृन्द को भी यह कठिनाई होती है कि वह सरलतया यह नहीं जान सकता कि वेद मंत्रान्तर्गत किस पद के लिये इङ्गलिश का कौनसा पद रक्खा गया है। साथ ही हिन्दी में मंत्र का भाव क्या हुआ यह पता चलना भी कठिन हो जाता है। इस कठिनाई को अनुभव करके ही हिन्दी व्याख्या मैंने छात्रों के लाभार्थ लिखी है।

—:o:—

हिन्दी टीका की विशेषताएँ

(१) इस पुस्तक के रहते हुए आपको सायण भाष्य या मुग्धानल कृत इंगलिश व्याख्या की आवश्यकता न रहेगी क्योंकि इन दोनों व्याख्याओं में जहाँ-जहाँ भेद है उसका भी टिप्पणी में निर्देश कर दिया गया है।

(२) प्रत्येक मंत्रान्तर्गत पद की हिन्दी में व्याख्या करदी गई है।

(३) आप मन्त्रों के पदों को छोड़कर केवल हिन्दी की व्याख्या ही एक बार पढ़ जायेंगे तो आपको "कथा" के पढ़ने जैसा आनन्द आयगा तथा मन्त्रार्थ एकदम समझ मे आ जायगा।

(४) देवता परिचय दे दिया गया है, जिससे किस देवता की क्या-क्या विशेषताएँ हैं, उसका क्या स्वरूप है, यह सरल रीति से समझ में आ सकता है।

(५) छन्दः परिचय भी स्पष्ट रीति से करा दिया है जिससे किस मंत्र में कौनसा छन्द है, यह अनायास समझ मे आ सके।

(६) मंत्रों में स्वर-संचार का क्या ढग है इसका निरूपण भी आपको भूमिका में ही दृष्टिगोचर होगा। सारांश यह है कि वेद का विषय इतना कठिन अब नहीं रह गया है जितना छात्र समझते हैं, एक बार इसे ध्यान से पढ़ भर जाइये आपको वेदों के स्वाध्याय का आनन्द आने लगेगा, यह हमें पूर्ण विश्वास है। देवता परिचय कराते समय तथा मन्त्रार्थ करते समय हमने अपने मन्तव्य का प्रकाश, इच्छा होने पर भी, नहीं किया है, क्योंकि यह परीक्षोत्तीर्णता की दृष्टि से सम्भवतः लाभकारी न होता। हमने उसे छोड़ दिया है फिर भी यदि कहीं झलक आ गई हो तो विवशता है।

(७) प्रत्येक सूक्त के आरम्भ मे बाईं ओर एक संख्या दिखाई देगी जोकि यह बतलाती है कि यह मंत्र संग्रह ऋग्वेद के किस मंडल व सूक्त का है ?

—:o:—

वेद और उपवेद

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद नाम के चार वेद हैं, प्रत्येक वेद संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक व उपनिषद् इन चार रूपों में चर्चित पाया जाता है। ऋग्वेद की एकमात्र शाकल शाखा ही मिलती है, शुक्ल यजुर्वेद की काण्व और माध्यन्दिन यह दो शाखाएँ उपलब्ध होती हैं। सामवेद की कौथुम और राणायनीय यह दो शाखाएँ दृष्टि-गोचर हो रही हैं। अथर्ववेद की पिप्पलाद और शौनक शाखाएँ प्राप्य हैं। इन शाखाओं में मत्र सख्या-भेद, उच्चारण-भेद तथा पाठ-भेद

मिलते हैं जो साम्प्रदायिक हैं। ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद है। यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गन्धर्ववेद और अथर्ववेद का अर्थवेद है। चारों वेदों में चौबीस हजार मंत्र और सात लाख अड़सठ हजार शब्द हैं। ऋग्वेद सब वेदों में बड़ा है। उसमें १० मण्डल हैं। सब मण्डलों में १०२८ सूक्त और १०५८६ ऋचायें हैं। इन ऋचाओं में १५३८२६ पद हैं जिनमें ४३२००० अक्षर हैं। सामवेद में १५४३ साममन्त्र हैं। यजुर्वेद में ४० अध्याय हैं जिनमें १९७५ कण्डिकाएँ हैं। अर्थवेद में २० काण्ड हैं जिनमें ७६० सूक्त और लगभग ६००० ऋचाएँ हैं।

—: ० :—

ऋग्वेद का प्रतिपाद्य विषय

ऋग्वेद में १०२८ सूक्त हैं। यदि ११ बाल खिल्य और ३२ खिल सूक्त मिला दिये जायें तो सूक्त संख्या १०७२ बठती है। ऋग्वेद का एक सूक्त ऐसा भी है जिसमें केवल एक ही ऋचा है और वह मण्डल सख्या १ तथा सूक्त संख्या ९९ है। नहीं तो कम से कम ३ या ७ मंत्र तो एक सूक्त में होते ही है। कुछ ऐसे भी सूक्त हैं जिनमें मन्त्र संख्या अत्यधिक है, जैसे—अस्यवामीय सूक्त में ५२ मंत्र है, देखिये (१-६४) अस्यप्रेषा (ऋग् ९-९७) मंत्र संख्या ५८। विवाह सूक्त १०/८५ में ४७ मंत्र हैं। दूसरे मंडल से लेकर ८वें मंडल तक प्रत्येक मण्डल 'कुल मंडल' के नाम से प्रसिद्ध है। इनके क्रम से गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भारद्वाज, वसिष्ठ और आंगिरस ऋषि हैं और इनके कुल के किसी भी व्यक्ति के सूक्त एकत्रित करने का यत्न सा प्रतीत होता है, ९वें मण्डल में सोम विषयक सूक्त ही मिलते हैं, इसके ४ अध्याय या सूक्त पवमान नाम से प्रसिद्ध हैं। १०वें मण्डल में सब ही बचे बचाए सूक्त डाल दिये गये हैं। संहिता, पद, क्रम, घन, जाट, नाम के जो वेदों के पठन पाठन के प्रकार हैं, इनमें पद-पाठ बनाने वाले

शाकल्य ऋषि हैं तथा क्रम पाठ के वाभ्रव्य हैं। इन सूक्तों में बहुत से सम्वाद हैं जैसे पुरुरवा-उर्वशी सम्वाद (ऋ० १०६६) यम-यमी सम्वाद (मत्र सूक्त ३३)। ये संवाद बड़े प्रख्यात हैं। ये संवाद आदि के चार मण्डलो तथा १०वे मण्डल मे विशेष रूप से मिलते हैं। इन कथाओं का सग्रह शाट्यायन ब्राह्मण तथा वृहद् देवता में अविकलतया पाया जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ मत्र गर्भरक्षण (५७/७८, १०-१६२) श्लीपद निवृत्ति (१०/१६१) राजयक्ष्माऽपसारण (१०-१६३) अक्ष सूक्त (१०-३४) आदि विषयक भी पाये जाते हैं। दान सूक्त में दान की स्तुति है। दर्दुर सूक्त (७-१०३) मे मेंढको के रूपक से वर्षा परक मंत्रों का सग्रह (कारीरी-इष्टि-उपयुक्त संग्रह) मिलता है। आध्यात्मिक सूक्त व मत्रों की सख्या कम होने पर भी महत्वपूर्ण है। सृष्टि का मूलारम्भ तत्व कौनसा है नासदीय सूक्त में इसका गम्भीर विचार किया गया है। जीवात्मा-परमात्मा का विचार 'द्वासुपर्णा०' (१-१६४-२०) में किया गया है। तथा एक द्वैत्यवाद का प्रतिपादन 'हिरण्य गर्भः० (१०-१२१-१) में किया गया है। इसके अतिरिक्त कूट पदो के समान गूढ़ मत्र भी ऋग्वेद के (१-१६४) सूक्त में मिलते हैं। कुछ मत्र ऐसे भी हैं जिनका अर्थ आजतक दुर्ज्ञेय है जैसे "सृण्येव जर्भरीतुर्फरीनु" (१०-१०६-६) ऋग्वेद की कौशीतकी तथा सांख्यायन शाखा के अनुयायी व उनके ब्राह्मण मथुरा आदि स्थानों पर मिलते है। शाकल शाखा तो मिलती ही है। ऐतरेय ब्राह्मण में ८ पञ्चिकाएँ है प्रत्येक में (५-५) पाँच-पाँच अध्याय हैं, इसमें सोमयाग (अग्निष्टोम) राजसूय (राज्याभिषेक) का वर्णन है। आचार्य महीदास ऐतरेय इसके निर्माता है।

सांख्यायन या (शांखायन) ब्राह्मण मे ३० अध्याय हैं, जिनमें आदि के ६ अध्यायों मे अग्न्याधान, अग्निहोत्र, दर्श पूर्ण मासेष्टिक, और ऋतु याग का वर्णन है। शेष अध्यायों में सोमयाग का वर्णन है, जो ऐतरेय ब्राह्मण मे वर्णित सोमयाग से मिलता जुलता है। ऐतरेय

आरण्यक और सांख्यायन आरण्यक नाम के दो आरण्यक हैं जिनमें ऐतरेयोपनिषत् व कोशी (षी) तक्युपनिषत् का विषय भी अन्तर्भूत हो जाता है। एक वाष्कल उपनिषद् ऋग्वेद की उपनिषद् कहलाती है। वाष्कल, शाकल दोनों ही गृह्यसूत्र व श्रौत-सूत्र भी मिलते हैं। शौनक का प्रातिशाख्य ऋग्वेद की पठन-पाठन पद्धति पर प्रकाश डालता है 'पाणिनीयशिक्षा' भी ऋग्वेद की शिक्षा समझी जाती है। ऋग्वेद में एक महत्वपूर्ण दाशराज्ञ युद्ध का वर्णन मिलता है। जिस सुदास नामक राजा के विरुद्ध भद्र, द्रुह्य, तुर्वसु, आदि दस-बारह राजा लड़ते हैं। इस युद्ध में विश्वामित्र और वशिष्ठ जैसे महर्षि भी भाग लेते हैं। इस युद्ध में अर्ण और चित्ररथ नाम के राजाओं को यमुना में डुबाकर मार डाला गया है। ऐसा वर्णन मिलता है। जिसका तात्पर्य यह है कि शरीर रूपी भूमण्डल के १० इन्द्रियाँ विरोधी राजा हैं। सुदास आत्मा की ही संज्ञा है "क्योंकि सुष्ठु दास्यते उपक्षीयते इन्द्रियैरिति सुदाः आत्मा, अथवा शोभना दासा यस्य स सुदास, आत्मा", इससे (यह सुदास शब्द सकारांत व अकारांत दोनो प्रकार का है) वशिष्ठ और विश्वामित्र ये दोनों बुद्धि और अंतःकरण हैं अथवा वशिष्ठ और विश्वामित्र आत्मा की ही संज्ञा है जो कि तत्तत् गुणो की प्रधानता से मानी गई हैं। क्योंकि वेदों में इतिहास मानना जैमिनी मुनि के सिद्धान्त के विरुद्ध है अत. यही अर्थ-कल्पना उपयुक्त है। गंगा यमुना आदि १० नदियाँ सूर्य की दस किरणे हैं। इन नदियों का वर्णन "इमं मे गंगे" (१०/७५/५) इत्यादि मन्त्र में मिलता है। इसमें गंगा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्री, परुष्णी, असिक्नी, मरुद्वृधा, वितस्ता, आर्जिकीया, कपिल आदि दस किरणें बताई गई हैं। विषयान्तर होने से यह विषय हम यही छोड़ते हैं।

ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद है। आयुर्वेद नाम का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है। ऋग्वेद में कुल ६४ अध्याय, ८ अष्टक, १० मण्डल,

२००६ वर्ग, एक हजार सूक्त, ८४ अनुवाक्, १०४०४ मन्त्र हैं। ऋषि दयानन्द मन्त्र संख्या कुछ अधिक मानते हैं।

—: o :—

ऋग्वेद का काल

ऋग्वेद निर्माण काल के निर्धारण के विषय में केवल अनुमान से ही काम लिया जाता है। मैगडानल के अनुसार ईसा से तेरह शताब्दी पूर्व ऋग्वेद बना क्योंकि बौद्ध सम्प्रदाय ईसा से पाँच सौ वर्ष पूर्व फैला। जिसने वेदों का खण्डन किया है तथा वेदो की ब्राह्मण उपनिषद् रूपी व्याख्याएँ भी बनने में कुछ समय लगी; अतः ईसा से १३०० वर्ष पूर्व ही ऋग्वेद का काल मानना ठीक है। ज्योतिष-सम्बन्धी चर्चा जो ऋग्वेद में पाई जाती है, उसके अनुसार कुछ विद्वान् (जैसे तिलक आदि) वेदों को ६००० वर्ष पूर्व का मानते है। मैगडानल कहता है कि अवेस्ता और ऋग्वेद की भाषा में कोई विशेष अन्तर नहीं। अवेस्ता का निर्माणकाल ईसा से ८०० वर्ष पूर्व माना गया है। इसलिये ऋग्वेद का निर्माण काल १३०० वर्ष ईसा से पूर्व मानना ही उचित है। प्रोफेसर जेकोबि (Prof Jacobi) इस मत से सहमत नही है। वह ब्राह्मण काल और वेदकाल में ४५०० वर्ष (ईसा से पूर्व) का अन्तर मानता है। Revorent Zimmermann और मेक्समूलर दोनो ही १००० से लेकर १२०० वर्व ईसा से पूर्व तक का समय ही वेदो के उद्भव का मानते है। सभी विचारकों की विचारधारा भिन्न भिन्न है। तिलक और Whitney बड़ी मुश्किल से २००० वर्ष मानते हैं। मैक्समूलर का भी यही कहना है कि ऋग्वेद का निर्माणकाल ईसा से १३ शताब्दी पूर्व है। ऋग्वेद का अन्तः साक्ष्य बतलाता है कि मन्त्रों में आये शब्दों के प्रयोग में परिवर्तन के लिये कम से कम २०० साल लगे होंगे। इस प्रकार अधिक से अधिक १४०० (B. C.) वेदकाल माना जाता है। ऋग्वेद में भाषा सम्बन्धी भेद के कारणों पर भी कतिपय

मन्त्रों द्वारा प्रकाश डाला जा सकता है। तद्नुसार ९ मण्डलों की भाषा में तो सादृश्य उपलब्ध होता है किन्तु १०वें मण्डल की भाषा अत्यधिक आधुनिकता को लिये है। १०वाँ मण्डल बचे खुचे सूक्तों का संग्रह मात्र है जिनकी भाषा आधुनिकता की छाप को लिये हुए है।

दूसरी बात यह है कि दूसरे से ७वें मण्डल तक के सूक्त-ऋषि, उसके पारिवारिक प्राणी सबके सब इन मण्डलों के अन्दर वर्णित हैं और वे ही इन मण्डलों के निर्माता माने गये हैं और जब इनको उत्पत्तिकालीन सत्यता के आधार पर परखा जाता है तो यह निश्चित है कि नवें मण्डल में होने वाली मन्त्रगत शब्द-परिवृत्ति आधुनिकता के चिन्हों से परिवर्जित नहीं और उसमें भाषा के क्रमिक विकास का इतिहास छिपा हुआ है। इसी प्रकार Latin भाषा भी पढ़े लिखों की साहित्य-भाषा रही है और १९०० ई० पूर्व वर्षों तक अपनी सत्ता के चिन्हों को प्रकट करती रही है। Latin भाषा का पतन Caesar के बाद हुआ। तदनुसार Latin और संस्कृत की पारस्परिक समताओं के कारण भी २००० वर्ष ईसा से पूर्व वेद का काल नहीं बनता। मैत्रायणीय उपनिषद् में भी आधुनिकता के चिह्न दृष्टिगोचर होते हैं। अवेस्ता और वेद की भाषा को मिलाते हुए पाश्चात्य विद्वानों ने अधिक से अधिक ३००० ईसा से पूर्व का काल वेदों को दिया है। यह भी निश्चय किया है कि एक लम्बे समय तक Iranian भाषा अर्थात् अवेस्ता की भाषा और वैदिक भाषा परिवर्तन के बिना ही विद्यमान रही। यह बात ज्योतिष के आधार पर वेदों की प्राचीनता सिद्ध करने वाले तिलक और जेकोबि (Jacobi) ने मानी है। चान्द्रमास और सौरमासों को परस्पर मिलाकर व्यवहार करने की पद्धति वैदिक काल से चली। क्योंकि उस समय कृत्तिका नक्षत्र मृगशिरा नक्षत्र से मिला था। अंग्रेजी में कृत्तिका को Plcides और मृगशिरा को Orion कहते है। अतएव तिलक वेदों को ईसा से ६००० वर्ष पुराना बताते हैं। इस सिद्धान्त की पुष्टि ध्रुव नक्षत्र (Polar star) के वधू को दर्शन

कराने के द्वारा की जाती है। यह पद्धति गृह्य-सूत्रों में वर्णित है। ध्रुव की गति उत्तर दिशा में अर्द्धवृत्त के ऊपर चलती है। जो गति ऋग्वेद काल में थी वह गति अब नहीं रही। इसके परिवर्तन में कम से कम २८७० वर्ष लगे। तदनुसार वेद की प्राचीनता ईसा से ३००० वर्ष पूर्व हुई।

डा० आर० जी० भाण्डारकर ने एक नया ही विचार उपस्थित किया है। वे कहते हैं कि ईसावास्य उपनिषद् में असुर्या शब्द आता है जो कि यर्जुवेद के ४०वें अध्याय का मन्त्र है। यह असुर्या शब्द असीरिया Assyria से बना प्रतीत होता है। आर्य और दस्युओं का युद्ध या देव और दानवों का युद्ध वैदिक काल की प्रसिद्ध गाथा है। तदनुसार उत्तर मैसोपोटामिया से कुछ व्यक्ति भारत में आये और उन्होंने अपने धर्म को बढ़ाया। इस काल में २५०० वर्ष लगे। अत: वैदिक काल ईसा से २५०० वर्ष पूर्व मानना चाहिए। सारांश यह है कि उन्होंने ऋग्वेद का उद्भव काल कम से कम ५०० या ८०० वर्ष पूर्व या अधिक से अधिक ६००० वर्ष ईसा से पूर्व निर्धारित किया है; किन्तु हिन्दू धर्म के अनुयायी तथा ऋषि दयानन्द ने वेदों का काल वही माना है जो कि सृष्टि का काल है। तदनुसार वेदों को उत्पन्न हुए उतना ही समय बीत चुका जितना कि सृष्टि को बने, हुआ। हमें भी यही मत रुचिकर है क्योंकि स्मृति कहती है "अनादिनिधना दिव्या, वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा" ॥मनुः॥ शतपथ ब्राह्मण एवं कपिल व व्यास महर्षि का भी यही मत है।

—: ० :—

वैदिक गाथायें (Vedic Mythology)

वेद में वैसी ही गाथायें भी मिलती है जैसी कि पुराणों में। "सं कुमार इव (देवान्) अघमत" (ऋक् २५।२) में देवताओं को दस्युओं के द्वारा वैसे ही तग किया गया है जैसे एक बालक वृद्ध पितामह को

तंग करता है। प्रजापति की कथा वेदों में अत्यन्त प्रसिद्ध है। वैदिक देवी और देवता, मनुष्य और स्त्रियों के समान वर्णित है और उनकी पुरुषरूपता दिखाई पड़ती है। इसमें सन्देह नहीं कि काली या शिव की जैसी पौराणिक गाथायें वेद में नहीं मिलती किन्तु पदे-पदे वैदिक देवताओं का भिन्न भिन्न रूप में वर्णन मिलता है। ये देवता एक दूसरे के ऊपर आश्रित हैं जैसे कि इन्द्र वरुण पर और वरुण इन्द्र पर। अग्नि देवता का ६ देवताओं के साथ संयुक्त वर्णन मिलता है। यास्क ऋषि ने निरुक्त के दैवत-काण्ड के पंचम अध्याय में देवताओं को पृथिवी-स्थान (Terrestrial) अन्तरिक्ष स्थान या मध्य स्थान (aerial or intermediate) तथा द्युस्थान (Celestial) बतलाया है। साथ ही इन्द्र के अनेक अंगों का वर्णन भी किया है और उसके कर्म मनुष्यों जैसे बतलाये हैं। Bloom Field ने Religion of Veda नाम की पुस्तक के पृष्ठ ९६ पर वैदिक देवताओं के और पौराणिक देवताओ के साम्य की चर्चा की है, जिससे सिद्ध होता है कि यह मनुष्य का स्वभाव है कि वह किसी वस्तु को अपने जैसे स्वरूप में ही रखकर वर्णन करना चाहता है। तदनुसार प्रजापति की कथा, इन्द्र की कथा, मत्स्य की कथा, अश्विनी कुमारों की कथा, नदी की कथा तथा अन्य कथायें ऐसी ही प्रतीत होती हैं।

—:o:—

ऋग्वेद का इतना बृहद् आकार कैसे हुआ ?

जब इण्डो-आर्यन लोग भारत में आये तो वे अपने साथ धर्म भी लाए। यह धर्म प्राकृतिक शक्तियों को एक देवता मान लेना ही था। वे अग्नि और सोम के द्वारा यज्ञ-पद्धति के भी प्रवर्तक बने। उन्हें धार्मिक भावनाओं के छन्दोबद्ध बनाने का भी कौशल प्राप्त था। इस निर्णय पर हम वेद और अवेस्ता की भाषा की तुलना से ही पहुँचते हैं। वेद-मन्त्रों का निर्माण परम्परागत पुरोहितों या ऋषियों द्वारा ही हुआ। वे अपने मन्त्रों को अपने शिष्यों या पुत्रों को कण्ठस्थ कराके

पढ़ाते थे क्योंकि ७०० ईसवी पूर्व तक लेखन विज्ञान से भारतीय परिचित न थे। धीरे धीरे इन भिन्न भिन्न पुरोहित तथा ऋषियों द्वारा प्रोक्त मन्त्रो का संग्रह किया गया और वह वर्तमान रूप को धारण कर गया। तदनन्तर संहिता (व्याकरण सन्धियुक्त=वेद संहिता) का निर्माण हुआ। ये वे ही सन्धि नियम थे जो उस समय प्रचलित थे। तदनुसार यदि एकार या ओकार के वाद अकार आता था तो उसका पूर्व रूप हो जाता था—ऐसे ऐसे नियम वने। सर्व प्रथम 'पद-पाठ' बाद में संहिता-पाठ बना। तदनन्तर उच्चारण के और भी नियम जटा-पाठ, घन-पाठ, क्रम-पाठ आदि बनते चले गये। इस प्रकार वेद की सुरक्षा के लिये अनेक सावधानियाँ काम में लाई गई—जिनके कारण वेद का मूल भाग आज ढाई हजार या छः सहस्र वर्ष तक ज्यों का त्यों चला आ रहा है।

—:o:—

ऋग्वेद का विभाजन

ऋग्वेद में कुल १०१७ सूक्त हैं, यदि ८म अष्टक के ११ सूक्त और मिला लिये जायें तो १०२८ सूक्त एव १०,६०० अर्धर्च हैं। सबसे बड़े सूक्त में ५८ मन्त्र है, सबसे छोटे में एक ही मन्त्र है। ऋग्वेद का विभाजन दो तरह का है—अष्टकाओं या मण्डलों में। प्रथम विभाजन के प्रकार के अनुसार आठ अष्टक है। प्रत्येक अष्टक में ८–८ अध्याय है। प्रत्येक अनुवाक् में ५ या ६ वर्ग होते हैं। दूसरे विभाजन में मण्डल और सूक्तों में ऋग्वेद विभक्त है। १० मण्डल हैं तथा प्रत्येक मण्डल में ५, ६ से कम सूक्त नहीं, १६, २० तक भी सूक्त हैं, कहीं अधिक भी। यह अन्तिम विभाजन ही पाश्चात्य विद्वानों ने ऋग्वेद के मन्त्रादि निर्देश के लिए अपनाया है क्योंकि यह ऐतिहासिक है। Hymn शब्द का अर्थ सूक्त है।

—:o:—

ऋग्वेद के मण्डलों का क्रम (Arrangement)

१० मण्डलों में से ६ अर्थात् द्वितीय से सप्तम तक के मण्डल एकाकार प्रतीत होते हैं। उनमें भारतवर्ष के निवासियों के चरित्र की छाप है। मन्त्रों के अन्दर पठित-अन्तरे-टेक (refrains) इस बात का अन्तः साक्ष्य दे रहे हैं। Family book या पण्डों की बहियों जैसा उन का वर्णन है। प्रथम अष्टम एवं दशम मण्डल के सूक्तों की रचना भिन्न भिन्न ऋषियों की है। बाद मे उनका संग्रह कर दिया गया है। यह हम पहिले भी लिख चुके हैं। दशम मण्डल में यह भी विशेषता है कि उसमें छन्द-साम्यता है तथा एक ही सोम देवता को सम्बोधित करके सब मन्त्रो का चयन या उद्भावन किया गया है। प्रथम काण्ड में अग्नि का, इन्द्र का तथा अन्य अप्रधान देवताओं का वर्णन है। द्वितीय मण्डल में सोलह पाद की ऋचाओ से आरम्भ कर छः पाद तक की ऋचाएँ निर्दिष्ट हैं। इस प्रकार द्वितीय मण्डल में ४३, तृतीय में ६२, षष्ठ मे ७५ सूक्त हैं, जिनमें एक परिवार के व्यक्तियो की चर्चा है। अष्टम मण्डल कण्व-प्रणीत है। नवम मण्डल प्रथम आठ मण्डलों का पूरक है। सोम की चर्चा इसमें भी है। इस मण्डल मे उद्गाता के द्वारा गेय सोम देवता के मन्त्रों का संग्रह है। १०वें मण्डल की रचना से स्वयं प्रतीत होता है कि यह सबके बाद बना है क्योंकि इसकी भाषा शैली अन्य मण्डलों की अपेक्षा आधुनिकतर है। वैदिक कालीन पदों का भी इसमें कम प्रयोग है, नये शब्दो का प्रवेश है। दार्शनिक विचार तथा जादू टोनों के गूढ़ (Recondite) विचार भी इसमें उपलब्ध होते है। यही आधुनिकता का ज्वलंत प्रमाण है।

—:o:—

भाषा शैली

ऋग्वेद की भाषा पाणिनि काल से प्राचीन है क्योंकि पाणिनि ने जब भाषा को बन्धनों में बांधा (Stereotyped) उससे पूर्व के प्रयोग किये

गये है। एक ही शब्द के भिन्न भिन्न प्रयोग मिलते हैं, जैसे—दाधर्ति और दर्धर्ति। सर्वनामों के प्रयोग भी एकता नहीं रखते। श च त्र प्रयोगो के १२ भेद इसमें मिलते है जब कि लौकिक संस्कृत में केवल एक ही प्रकार शेष रह गया है। उच्चारणों में वल प्रदान भी ऋग्वेद से मिलता है जोकि संगीत के आरोहावरोह (Pitch of Voice) के समान है। लौकिक संस्कृत में स्वरों की विशेषता का सर्वथा अभाव है। यही हाल सन्धि-सम्बन्धी नियमों का भी है। एकार और ओकार के बाद अकार की ध्वनि ऋग्वेद में बोली जाती है पर लौकिक संस्कृत में नही।

—: o :—

ऋग्वेद के छन्द

ऋग्वेद छन्दोबद्ध है। ऋचा का प्रत्येक चरण ८, ११ या १२ यति (Syllable) रखता है। ऋग्वेद में कुल १५ छन्दों का प्रयोग हुआ है जिनमें ७ सर्वसाधारण है। त्रिष्टुप् (४ से ११ तक यति वाला), गायत्री (३ से ८ तक यति वाली), जगती (४ से १२ तक यति वाली) इन तीन छन्दों का प्रयोग सर्वाधिक है। कहीं कहीं उपजाति के प्रकार के दो भिन्न छन्दों का भी सम्मिश्रण पाया जाता है। आठवें मण्डल में प्रगाथ का प्रयोग अधिक है।

—: o :—

ऋग्वेद का धर्म

देवताओं को पुरुषाकार मान कर उनकी स्तुति करना ही ऋग्वेद का मुख्य विषय है। अतएव इसमें अनेक देवतावाद का प्रतिपादन है। देवता भू-स्थान, द्यु-स्थान तथा अन्तरिक्ष-स्थान पर रहने वाले माने गये हैं। देवताओं को सोम-पान से अमरता प्राप्त होती है। यह सोम अग्नि देवता या सविता के प्रसाद रूप में उपलब्ध होता है। देवताओं के शरीर की आकृति कल्पित है तथा उनके प्राकृतिक रूप पर आरोपित

है जैसे सूर्य की बाहुओं का वर्णन मिलता है जोकि उसकी किरणें ही हैं। अग्नि की जिह्वा भी उसकी ज्वालाएँ ही हैं। उनका निवास द्युलोक में है जोकि विष्णु का तृतीय पाद है। वहाँ वे सोम-पान कर आनन्द-मग्न रहते हैं। देवताओं का कार्य मनुष्यों की हानिकारक शक्तियों को दूर करना है। प्राणियों पर उनका अधिकार है। वे मनुष्यों को अभ्युदय प्रदान करते हैं। रुद्र ही एक ऐसा देवता है जो चाहे तो मनुष्य की हानि कर सकता है। देवताओं में एक से गुण मिलते हैं तथा सब देवता एक ही महादेव के रूप-रूपान्तर हैं किन्तु इसका यह मतलब नहीं कि एक ही देवतावाद ऋग्वेद को अभिप्रेत है क्योंकि किसी भी यज्ञ में एक देवता के लिये आहुति या पुरोडाश का प्रदान नहीं मिलता।

स्वर्ग-स्थानीय देवगण

द्यौस्, वरुण, मित्र, सूर्य, अश्विन् तथा उषा और रात्रि नाम की देवियाँ।

अन्तरिक्ष-स्थानीय देवगण

इन्द्र, अपानपात् , रुद्र, मरुद्गण, वायु, पर्जन्य एवं आयस्।

भू-स्थानीय देवगण

पृथ्वी, अग्नि और सोम। कुछ नदियाँ भी देवियाँ मानी गई हैं जैसे सिन्धु (Indus), विपाशा (व्यास), शुतुद्रि (सतलुज) जो कि पंजाब की नदियाँ हैं।

बौद्धिक (Abstract) देवता

धाता या ब्रह्मा या प्रजापति को सृष्टिकर्ता माना जाता है जो कि सूर्य, पृथ्वी और चन्द्र का भी उत्पादक है। त्वष्टा भी देवता है जिसके घर में बैठकर इन्द्र सोमरस पान करता है। त्वष्टा सरण्यु का पुत्र है

जोकि विवस्वान की स्त्री है। यम और यमी भी सरण्यु की ही सन्तान हैं। विश्वकर्मा के नाम की भी (१०-८१-८२) दो ऋचाएँ मिलती हैं, इस प्रकार मन्यु (Wrath), श्रद्धा (Faith), अनुमति (Favour) आरमति (Devotion), सूनृता, असुनीति, निर्ऋति, देवताओं की इक्की दुक्की ऋचायें मिलती हैं। अदिति (Liberation or freedom) देवता का ऋग्वेद में अधिक व्याख्यान है। दिति का केवल तीन बार उल्लेख मिलता है। अदिति आदित्यों की माता है। इनके अतिरिक्त वाक्, उषा और सरस्वती का वर्णन पूरे दो सूक्तों में मिलता है। पृथ्वी, रात्रि, अरण्यानी, अग्नायी, इन्द्राणी, वरुणानी इनका भी यत्रतत्र निर्देश पाया जाता है।

युगल देवता

मित्रावरुण, द्यावापृथिवी, इन्द्राग्नी युगल देवता है। वास्तोष्पति (Lord of dwelling), सीता (Furrow), क्षेत्रस्यपति आदि भी देवताओं में माने गये है। असुर, वृत्र, नमुचि, आदि दस्यु देवता हैं। मण्डूक आदि पार्थिव देवता है। इस प्रकार संक्षेप से यह देव परिचय है।

ऋग्वेद में धार्मिक भावना

भारतीय सभ्यता की परिचायिका कुछ ऋचाएँ है जैसे मृत्यु (Funeral) की ऋचाएँ। पुरुरवा और उर्वशी का संवाद भी ऋग्वेद में वाकोवाक्य के रूप में मिलता है। (९-११२) (१०-७१) (१०-११७) इन मन्त्रों में उपदेशात्मक (Didactic) भावना मिलती है। (८-२९) में ऐसे मन्त्र हैं जो पहेली या बुझौवल का रूप रखते हैं। ५२ पादों की एक ऋचा (१-१६४) पर मिलती है जिसमें १२ बारह अरों वाले एक पहिये का वर्णन है जिसका भाव सूर्य द्वारा एक वर्ष के १२ मासो के निर्माण से है।

वस्त्र और खाद्य पदार्थ

ऋण करने का कारण जुआ खेलना था, जिसका प्रचार ऋग्वेद-काल में भी था। वे अधोवस्त्र एवं उपवस्त्र नामक दो वस्त्र धारण करते थे। कञ्चुक परिधान का रिवाज बहुत कम था। खाद्य पदार्थों में मक्खन, घी, गेहूँ, जौ, चना, कन्द, मूल, शाक, फल आदि का विशेष प्रचार था। आभूषणों में कंगन, कड़ा (सोने का Bracelets), पाजेब, बिछुए, कर्णफूल, अंगूठी आदि व्यवहृत होती थीं। मांस केवल पशुयज्ञ में उपयुक्त होता था। सोमपान और मधुपान प्रचलित था। पैष्टा सुरा का भी प्रचार था।

आजीविका के साधन

पशुपालन आजीविका का मुख्य साधन था। भेड़ या गौओं के रेवड़ पालना घोसों का कार्य था। खेत हंसिये से या दरांती से काटे जाते थे। जंगली जानवरों को पालने का भी रिवाज था। कुत्ते शिकार का साधन थे। मैंढों या भैंसों की लड़ाइयां होती थीं। डौंगियाँ या बोट या नौकाएँ व्यापार के लिये काम में आती थीं। वस्तु परिवर्तन (Barter) से लेनदेन होता था, रुपया या पैसा व्यवहार का साधन न था। पशुओं का वाणिज्य होता था। बढ़ई, धोबी, लुहार, कुम्हार आदि अपने-अपने कार्यों से जीविकोपार्जन करते थे। स्त्रियाँ चटाई बुनती थीं जो घास या पटार की होती थीं। वे कपड़े सीना, रस्सी बंटना, खेत नलाना, कपड़े बुनना, चक्की चलाना, पानी भरना आदि गृहस्थी के कार्य करती थीं। वे वाद्यकर्म, नृत्यकला, संगीतकला, वीणावादन, गानविद्या, आलेख्य तथा ललित कलाओं में भी निष्णात होती थीं। केश प्रसाधन कर्म में भी वे बड़ी निपुण थीं।

ऋग्वेद में साहित्यिक तत्व

मंत्रों की रचना स्वाभाविक एवं सरल है। उनमें समस्त पदो का प्रयोग नहीं है। उनमें प्राचीनता, छन्दोबद्धता और भाषा-प्रावीण्य पर्याप्त है। छन्दों को बड़ी बुद्धिमत्ता के साथ प्रयोग में लाया गया है। यज्ञकर्म के देवता अग्नि और सोम के विषय में जब कुछ कहा जाता है तो वहाँ भाषा और भाव दोनों प्राञ्जल और उज्ज्वल हो उठते हैं। मार्मिक भाव-चित्रो का इस अवसर पर पूर्ण विकास दिखाई पड़ता है। रचना प्रत्येक दृष्टि से उत्कृष्ट हुई है। वृत्रासुर का युद्ध-वर्णन भाषा और भावों का एक सजीव चित्र है। उषा-वर्णन भी किसी खण्डकाव्य से कम आनन्द देने वाला नही है। (५-८३) वाली ऋचा अति वृष्टि की हानियों का मनोहर एवं रोमांचकारी वर्णन उपस्थित करती है। वरुण की स्तुति, रामराज्य के सुराज्य का दृश्य प्रस्तुत करती है। द्यूतकारी के कुकृत्य उसकी मृत्यु को चैलेंज देते हैं। द्यूतकारी से वचने का ऐसा मर्म-स्पर्शी उपदेश अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता। दैत्यों और सरमा का संवाद (१०-१०८) पौराणिक गाथाओ के उद्गम-स्रोत को प्रकाश में लाता है। Mythology का जन्म या नाराशंसी गाथाओं का प्रचार इसका ही अनुकरण मात्र है। यदि हृत्तन्त्री मुखरित करने वाला, दिल में चुभने वाला, गम्भीर और सुन्दर, सत्य और लाभप्रद संगीत सुनना है तो (१०-१८) वाला मन्त्र पढ़िए। सृष्टि रचना जैसा गहन विषय शास्त्रीय भाषा में, दार्शनिक परिभाषा में, एवं विचारों के उन्मुक्त आकाश में किस प्रकार विस्फुरण पाता है यह देखना हो तो (१०-१२९) वीं ऋचा का अवलोकन कीजिये। भावाकाश में बुद्धि किस प्रकार निश्छल, निष्प्रतिबन्ध विचरण कर सकती है, इस तत्व का इसमें अच्छा विस्फोटन हुआ है। इसी से ६-७ सहस्र वर्ष पूर्व की कविता कैसी होती थी इसका इससे बढ़ कर ज्वलन्त उदाहरण और क्या होगा ? ऋग्वेद के भाष्यों के विषय में अनेक धारणाएँ हैं। कहीं

कहीं टीकाएँ जिज्ञासु को उलझन में डाल देती हैं। यास्क ऋषि का 'नासत्यौ' पद का व्याख्यान हमारे जिज्ञासापूर्ण दृष्टिकोण को उद्‌घाटित करता है। स्वाध्याय करने से विदित होगा कि वेद अपना स्वयं व्याख्यान है।

तथा— "उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे" (वेद)

यह कथन अक्षरशः सत्य है।

यजुर्वेद का उपवेद और शाखाएँ

यजुर्वेद की दो शाखाएँ हैं कृष्ण व शुक्ल। शुक्ल की काण्व और माध्यन्दिनी शाखा है। कृष्ण की तैत्तिरीया, कठी, और मैत्रायणी तीन शाखाएँ उपलब्ध होती हैं। वैशम्पायन इसका प्रधान आचार्य है याज्ञवल्क्य आदि उसके शिष्य थे। याज्ञवल्क्य ने सूर्य से वेदाध्ययन किया तथा अपने वेद का नाम 'शुक्ल' तथा गुरु वैशम्पायन के वेद का नाम कृष्ण रक्खा। कृष्ण यजुर्वेद का प्रचार दक्षिण में है। कृष्ण यजुर्वेद के आपस्तम्ब, बोधायन, हिरण्यकेशी (सत्याषाढ़), भारद्वाज, वैखानस, वाधूल, मानव (मैत्रायणी शाखा) और बाराह ये ८ श्रौत-सूत्र मिलते हैं। शुल्व सूत्र जिसमें यज्ञ-कुण्ड-भूमिति का वर्णन है वह भी इन्हीं सूत्रों का एक प्रकरण है। यजुर्वेद के २६वें अध्याय से ३६वें अध्याय तक के १० अध्यायों को 'खिल' (परिशिष्ट) भी कहते हैं। शुक्ल यजुर्वेद का ब्राह्मण "शतपथ ब्राह्मण" है।

याज्ञवल्क्य और गुरु वैशम्पायन में झगड़ा क्यों हुआ ?

यह किंवदन्ती है कि एक बार वैशम्पायन मुनि के हाथ से ब्रह्म-हत्या हो गई। गुरु ने शिष्यों से कहा कि इसका प्रायश्चित करो। याज्ञवल्क्य ने कहा कि मैं अकेला ही प्रायश्चित करूँगा— अन्य मेरे

सतीर्थ्यों को जाने दीजिये। इस गर्वोक्ति को सुनकर गुरु जी रुष्ट हो गये और अपनी शिष्यता से उन्हें पृथक् कर दिया। इतना ही नहीं अपनी पढ़ाई विद्या भी उगलने की आज्ञा दी। उस उद्गीर्ण वेद का ऋषियों ने तित्तिरि रूप से भक्षण कर लिया। इस प्रकार तैत्तिरीय शाखा चली। तदनन्तर सूर्यदेव से महर्षि याज्ञवल्क्य ने वेदाध्ययन किया और उत्तराखण्ड में उसका प्रचार किया। वही शुक्ल यजुर्वेद के नाम से प्रसिद्ध हुआ। गुरु वैशम्पायन के लिये जिन शिष्यों ने प्रायश्चित का आचरण किया वे चरक या चरकाध्वर्यु कहलाये—क्योंकि उन्होंने गुरु की आज्ञा का आचरण किया या प्रायश्चित का चरक अनुष्ठान अध्वर (यज्ञ) द्वारा किया। शतपथ में चरक या चरकाध्वर्यु शब्द 'प्रतिपक्षी' 'विरोधी' के अर्थ में इसी लिये कहीं कहीं प्रयुक्त किया जाता है। यजुर्वेद का श्रौत-सूत्र कात्यायन मुनि ने रचा है तथा इसका एक गृह्य सूत्र है, जो कि पारस्कर गृह्य सूत्र के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें गृह्य तथा श्रौत दोनों ही सूत्रों का समावेश है। 'याज्ञवल्क्य शिक्षा' वेदों के उच्चारण पर बड़ा प्रकाश डालती है। शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिनी शाखा है। इसके अध्येता 'य' को 'ज', 'ष' को 'ख', 'व' को 'ब्व' बोलते हैं। स्वरों का निर्देश भी केवल हाथों को हिला कर ही देते हैं, उच्चारण से या गर्दन हिला कर नहीं। इसका उपवेद धनुर्वेद है जो एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है।

सामवेद और उसका उपवेद

सामवेद में ऋग्वेद के ही मन्त्र दुहराये गये हैं, केवल ७५ मन्त्र नवीन हैं। कुल ऋचाएँ १८२४ हैं। पुनरुक्ति छोड़ देने पर १५४९ हैं। ऋग्वेद के मन्त्रों के कारण ही सामवेद के दो भाग हैं— पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक। इसके उच्चारण विशेष को 'स्तोम' कहते हैं। इसकी गुर्जर प्रान्त में कौथुमी, कर्णाटक में जैमिनीया और महाराष्ट्र में

राणायनीया ये तीन शाखाएँ हैं। ताण्ड्य (पंचविंश), षड्विंश, मन्त्र, दैवत, आर्षेय, सामविधान, संहितोपनिषद् और वंश नाम के आठ-आठ ब्राह्मण हैं। पंचविंश, षड्विंश और छान्दोग्योपनिषद्—इन तीनो को महाब्राह्मण के नाम से भी पुकारते हैं— शेष अनुब्राह्मण हैं। षड्विंश के अन्तिम प्रकरण को "अद्भुत ब्राह्मण" भी कहते हैं। इस वेद के खादिर, लाट्यायन और द्राह्यायन नाम के तीन श्रौत-सूत्र हैं। खादिर, गोभिल और गौतम नाम के तीन गृह्यसूत्र हैं। 'नारदीय-शिक्षा' में इस वेद के उच्चारण करने का प्रकार बतलाया है। 'पुष्प सूत्र' इसका प्रातिशाख्य है। गन्धर्ववेद इसका उपवेद है— पर इस नाम का कोई खास ग्रन्थ उपलब्ध नहीं।

अथर्ववेद और उसका उपवेद

ऋषि अथर्वाङ्गिरस के नाम पर इस वेद का नाम पड़ा। ब्रह्मा का यही वेद है। इसकी पिप्पलाद और शौनक नाम की दो शाखाएँ मिलती हैं। इस वेद में लौकिक अभीष्ट प्राप्ति के उपाय प्रदर्शित किये गये हैं। 'कौशिक सूत्रों' में इन मन्त्रों के अनुष्ठान की पद्धति सविस्तार वर्णित है। इसमें २० काण्ड, ७५९ सूक्त, ५९७७ या ६००० मन्त्र हैं। मुण्डक, प्रश्न और माण्डूक्य इसकी ही उपनिषदें हैं। 'वैतान' नामक इसका श्रौत सूत्र है। 'कौशिक' नाम का गृह्य-सूत्र है जो अमेरिका में छपा है। इसकी शिक्षा 'अथर्व-शिक्षा' नाम की है। नक्षत्र कल्प, राङ्गि कल्प और आङ्गिरस कल्प—ये तीन इस वेद के कल्प सूत्र हैं। गोपथ ब्राह्मण (१–१०) के अनुसार सर्पवेद पिशाचवेद, असुरवेद, इतिहास-वेद आदि ५ उपवेद हैं। 'स्थापत्यवेद' भी इसका ही उपवेद माना जाता है। संक्षेप में इसका उपवेद 'अर्थवेद' कहा जाता है।

स्वर-संचार विचार

वेदों में संहिता-पाठ और पद-पाठ दो पाठ मिलते हैं। स्वर को केवल निम्नलिखित सात संहिता ग्रन्थों में लगाया गया है :—

१—ऋग्वेद, २—माध्यन्दिन यजुर्वेद, ३—काण्व यजुर्वेद, ४—तैत्तिरीय यजुर्वेद, ५—कौथुम सामवेद, ६—मैत्रायणीय यजुर्वेद तथा ७—शौनकीय अथर्ववेद।

ब्राह्मणों और आरण्यकों में केवल काण्व, माध्यन्दिन, शतपथ ब्राह्मण, तैत्तिरीय ब्राह्मण और तैत्तरीय आरण्यक में स्वर लगे मिलते हैं अन्यत्र कहीं नही।

—: ० :—

संहिता-पाठ और पद-पाठ से पहले कौन बना

संहिता पाठ में एक पद का प्रभाव निकटवर्ती पदान्तर पर पड़ता है पर पद पाठ में नही पड़ता क्योंकि तब प्रत्येक पद स्वतन्त्र होता है। हम कह चुके हैं कि शाकल्य ने पद पाठ चलाया है, संहिता पाठ ऋषि प्रणीत है। स्वर के अनुसार अर्थ भी बदल जाता है—जैसे 'अपस्' शब्द में यदि अकार उदात्त और स्वरितान्त है तो अपस् का अर्थ काम या कार्य होता है, तथा यदि अपस् का अकार उदात्त है तो काम करने वाला अर्थ होता है। इस प्रकार स्वरभेद से अर्थभेद हो जाया करता है। ऐतरेय ब्राह्मण के २६वें ब्राह्मण के द्वितीय प्रपाठक में लिखा है कि मंत्र चार भागों में विभक्त हैं— ऋचा (ऋक्), अर्धर्च, पद (यहाँ पद शब्द पादवाची है) और अक्षर। 'अर्धर्च' शब्द रूढ़ि है। ऋग्वेद के प्रत्येक सूक्त में जो ऋचाएँ होती हैं उन ऋचाओं में लौकिक अनुष्टुप् छन्द के समान यह नियम नहीं कि केवल चार ही चरण हों तथा प्रत्येक चरण में ८-८ ही अक्षर हों। वेद मे मात्रिक छन्दों का विशेष प्रयोग किया गया है तदनुसार मात्राओं वाले नियम हैं। प्रत्येक

ऋचा में कम से कम तीन पाद और अधिक से अधिक छः पाद होते हैं। पर प्रत्येक ऋचा में अर्धर्च दो ही होते हैं इसलिये 'अर्धर्च' एक पाद या एक से अधिक पादों का भी होता है जैसे 'स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा न स्वस्तये' (ऋक् १/१/६) इस मन्त्र का पहिला 'अर्धर्च' दो पादों का है अर्थात् 'भव' पर समाप्त होता है जबकि पहिला पाद 'सूनवे' तक समाप्त हुआ है। इसीलिये 'सूनवे' का स्वर 'अग्ने' के कारण बदल गया है। वेङ्कट माधव ने ऋग्वेद की टीका में लिखा है कि :—

शाकल्यः पाणिनिर्यास्क इत्यृगर्थपरास्त्रयः।
यथा शक्त्यनुधावन्ति न सर्वं कथयन्त्यमी॥

टीका ऋक् (८-१-७)

अर्थात् शाकल्य ऋषि, पाणिनि ऋषि और यास्क ऋषि तीनों ने ही ऋग्वेद का अर्थ (पद पाठ) करने का प्रयत्न किया है पर पूरी पूरी कोई भी व्याख्या न कर सका। संहिता और पद दोनों में संहिता मुख्य है क्योंकि दुर्गाचार्य ने निरुक्त की टीका करते हुए लिखा है कि :—

"संहितायाः प्रकृतित्वं ज्याय। मन्त्रो हि अभिव्यज्यमानः पूर्वं ऋषेर्मन्त्रदृशः संहितयैवाभिव्यज्यते न पदैः। अतः संहितामेव पूर्वमध्यापयन्त्यनूचानाः ब्राह्मणा अधीयते चाध्येतारः। अपिच याज्ञे कर्मणि संहितयैव विनियुज्यन्ते मन्त्राः न पदैः"।

अर्थात् पदपाठ और सहितापाठ में संहितापाठ श्रेष्ठ है क्योंकि ऋषियों के लिये मन्त्र का प्रकाश सहिता रूप में ही हुआ है अतएव वेद की पठन पाठन प्रणाली में संहिता का ही पठन पाठन होता है। यज्ञ कर्म में भी संहिता का ही विनियोग होता है पदों का नहीं। हमें इसके विपरीत दूसरा पक्ष यह भी मिलता है कि संहिता का निर्माण पदों से होता है। अतः पदों की सत्ता संहिता से पूर्व होनी चाहिये क्योंकि संहिता पद-संदर्भ स्वरूप ही है, किन्तु संहिता को प्राचीन मानने वालों

का सिद्धान्त यह है कि पद-पाठ संहिता का विश्लेषण मात्र है। अतः संहिता की ही प्राचीनता मानी जानी चाहिये। प्रो० टकर (Tucker) ने लिखा है कि पद या वाक्य केवल रूप में या Staccato के रूप में उच्चरित नहीं होते किन्तु वे जैसे लिखते समय अक्षर अक्षर से जुड़ता है वैसे ही एक पद ध्वनि दूसरी पद-ध्वनि से जुड़ती है परिणाम यह होता है कि दो पदों में सन्धि विकसित हो उठती है (१)। इस कथन से भी यही सिद्ध होता है कि संहिता-पाठ पद-पाठ की अपेक्षा प्राचीन है। यही कारण है कि प्रातिशाख्य के निर्माता आचार्य पाणिनि के मत में पद-पाठ को अनार्ष कहा जाता है देखिये :—

१—प्राक् चानार्षादितिकरणात् पदान्तास्तद्युक्तानाम्।
(ऋक् प्राति० १/५८)

२—परिग्रहे तु अनार्षान्तात् (ऋक्० ३/२३)

३—सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे (अष्टाध्यायी १/१/१६) इत्यादि।

आचार्य पाणिनि पदपाठ के पक्षपाती नहीं थे। पतञ्जलि ने लिखा भी है कि "न लक्षणेन पदकारा अनुवर्त्याः पदकारैस्तु लक्षणमनुवर्त्य-मिति।" अयमाशयः। संहितैव नित्या, पदविच्छेदस्तु पौरुषेयः। अत एवार्थनिश्चयाभावान्नावगृह्णन्ति, यथा हरिद्रव (ऋ० सं० १०/९४) इति। अत्र किं हरिशब्द इकारान्त उत हरिच्छब्दस्तकारान्त इति सन्देहः। किञ्च वने वायः (ऋ० सं० १०/२९/१) इति मन्त्रे "वेति च य इति च चकार शाकल्यः" इत्युपन्यस्य "उदात्तं ह्येवमाख्यातम भविष्यत्" इति अधायि शब्दे अद्स्वरप्रसंगेन दूषयित्वा 'वेरपत्यं वाय' इत्येकपद्येन सिद्धान्तं कुर्वन् यास्कः (नि० ६/२८) पदविभागस्य पौरुषे-यत्वं स्पष्टमेवाचष्टे। अपि च सति पदत्वेऽवग्रहः असति तु न इति मतद्वयमपि प्रायोवादमात्रम् सम्प्रदायानुरोधादुभयस्यापि बहुधा परित्यागो दृश्यत एव, गोभिर्मदाय (ऋ० सं० ३/४३/१) गोभ्योगातुम (ऋ० सं० ८/४५/३०) इत्यादाववग्रहाभावात् ईयिवांसमतिस्रिध. (ऋ० सं०

३/६/४) देवयन्तो यथा मतिम् (ऋ० सं० १/३/६) इत्यादावग्रहा-च्चेति दिक् । (शब्द कौतुभ ३/७/१०६)

तथा पदों में जो सन्धिकृत पदान्तर संयोग कृत परिवर्तन होता है वह पदपाठ में नहीं रहता । शाकल्याचार्य "स" की जगह "स:" लिखते हैं जैसा कि अवेस्ता और ग्रीक भाषा में भी माना गया है । प्रो० Rapson का भी यही मत है । अतः संहिता पाठ की प्राचीनता सिद्ध है ।

—:o:—

"पदपाठ की विशेषता"

पत्वरात्वे गत्वदत्वे ह्रस्वता दीर्घतां तथा ।
विसृज्य संहिताधर्मान् पठेत् पदानियत्नतः] ॥

अर्थात् पद पाठ में संहिता के धर्म हटा दिये जाते हैं । भिस्, भ्याम् भ्यस् और सुप् यदि शब्दों से अलग किये जाते हैं तो इनसे पूर्व पूर्वरूप अकार का चिन्ह दे दिया जाता है किन्तु देवेभि., स्वधाभिः, अक्षिभ्याम्, अग्निषु, नदीषु गोर्षु, पूर्षू इत्यादि में पूर्वरूप का चिन्ह नहीं दिया जाता है । इति शब्द का योग वहाँ किया जाता है जहाँ शब्दगत कोई विशेषता प्रदर्शित करनी होती है । र जातविसर्ग प्रगृह्य संज्ञक वर्णों के इति शब्द अवश्य लगाया जाता है ।

अर्थात् संहिता प्रधान है, पद गौण, क्योंकि ऋषियों को मन्त्र संहिता के रूप में प्रतिभासित हुआ है पदात्मक रूप में नहीं । यही कारण है कि संहिता का अध्ययन-अध्यापन होता है पद का नहीं । यज्ञों में भी संहिता से काम लिया जाता है पदों से नहीं । यह सब होने पर भी संहिता बिना पदों के नहीं बनती । इसलिये पदों का भी बड़ा महत्व है पाश्चात्य विद्वान् टकर (Tucker) ने लिखा है कि—"The sounds of speech are not pronounced singly and staccato. They link themselves together very much as writing links toge

ther the letters in a word. Just as the adopts the easiest or the most fluent method of running on letter into letter so the organs of articulation follow the following course of least effort in running on sounds." अर्थात् संहिता पदों के शीघ्र उच्चारण का फल है। यह संहिता पद-संयोग-जन्य है अतः वाक्य संहिता-पदों बिना और पद-संहिता अक्षरों बिना नहीं हो सकती, अतः पदों के संहिता के कारण न होने से उनकी गुरुभूतता कम महत्व नहीं रखती। हाँ यह दूसरी बात है कि संहिता व्यवहारोपयुक्त होने से लोक में मुख्य मानी जाती है। अतएव संहिता को आर्ष और पदों को अनार्ष कहते हैं जैसे, 'सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे" (अष्टाध्यायी १-१-१६) में पाणिनि ने पद को परिभावित किया है जैसे :—

सुप्तिङन्तंपदम् (१-४-१४)
स्वादिष्वसर्वनामस्थाने (१-४-१७)
नः क्ये (१-४-१५) इत्यादि।

महाभाष्यकार पतञ्जलि भी "न लक्षणेन पदकारा अनुवर्त्याः पदकारैर्नाम लक्षणमनुवर्त्यम्" यह कहते हुए यह बात स्पष्ट स्वीकार कर रहे हैं कि पद-पाठ मनुष्य कृत है तथा संहिता मन्त्रदृष्टकृत या अनादि है अतएव भट्टोजि दीक्षित ने शब्दकौस्तुभ में उक्त वाक्य की व्याख्या करते हुए लिखा है कि "संहितैव नित्या पदविच्छेदस्तु पौरुषेयः"। (३-१-१०९)

—: ० :—

पद-पाठ मे "इति" का प्रयोग

आचार्य शाकल्य ने पद-पाठ करते हुये किसी शब्द की सन्धिगत या अन्य सामासिकादि विशेषता दिखाने के लिये "इति" का कहीं कहीं प्रयोग किया है। जैसे मण्डूक सूक्त के सप्तम मन्त्र के पद-पाठ में

"ग्रहरिति" "द्यावा पृथिवी सूक्त" के चतुर्थ मन्त्र के पद-पाठ में "रोदसी इति"। इन स्थानों पर इति शब्द क्रमशः सन्धिगत तथा विभक्तिगत विशेषता की ओर ध्यान आकृष्ट करने के लिए लगा दिया गया है, पर यह कोई राजाज्ञा नहीं कि "इति" लगाना ही पड़ेगा अन्यथा जुर्माना किया जायगा। इसी प्रकार समस्त पद को दिखाने के लिये दो पदों के मध्य में (ऽ) इँगलिश के 'ऐस' जैसा या पूर्वरूप का चिन्ह लगा देते हैं। इसका भी लगाना अनिवार्य नहीं। अतएव यहाँ पद-पाठ में इन दोनों नियमों का घोर परिपालन नहीं किया गया है।

—: ० :—

पद-पाठ का स्वरूप

(१) पद-पाठ को वेद मन्त्रों का व्याख्यान कहा जा सकता है। इसके रचयिता शाकल्य की एक दृष्टि है जिसके अनुसार वे परिच्छेद करते है; इति और अवग्रह लगाते हैं। पदकार के अर्थों को जानना सम्भव नहीं है। वे अनुमान का विषय ही कहे जा सकते हैं। अतः पिछले भाष्यकारों ने अनेक बार शाकल्य के पदच्छेद को स्वीकार न करके अपना पदच्छेद किया है। अनेक बार "इति" और 'अवग्रह' के प्रयोग में नियमों की उपेक्षा की जाती है। ऐसे कतिपय स्थलों पर एक से अधिक पदच्छेद सम्भव हैं यथा चन्द्रमाः। शाकल्य के अतिरिक्त रावण और दयानन्द स्वामी के भी पद-पाठ मिलते हैं।

—: ० :—

पद-पाठ व अवग्रह

(१) संहिता पदों से बनती है। संहिता-पाठ में एक अर्धर्च में सब पद एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं। उनका एक दूसरे पर प्रभाव रहता है। किन्तु पद-पाठ में प्रत्येक पद पृथक पृथक रखे जाने के कारण यह

प्रभाव हट जाता है। प्रगृह्यों के आगे 'इति लगा' दी जाती है और समासों, प्रकृति, प्रत्यय और उपसर्गों और क्रियाओं आदि कतिपय स्थलों पर 'अवग्रह (ऽ) लगा दिया जाता है। द्विवचन के ई, ऊ और ए के पश्चात् इति' लगाई जाती है। जैसे क्रन्देसी इति'। ऊरू इति। उच्येते इति। उ निपात के आगे इति लगाई जाती है। उ को सानुनासिक और दीर्घ भी कर लिया जाता है। ओदन्त निपातों के आगे इति का प्रयोग किया जाता है। जिन पदों के अन्त में सप्तमी अर्थ में प्रयुक्त ई और ऊ आए हों उनके आगे भी इति लगाई जाती है। यथा सरसी इति। एकारान्त अस्मे, युष्मे आदि के आगे 'इति' लगाई जाती है—अस्मे इति'। ओकारान्त सम्बोधनों के आगे इति लगाई जाती है जैसे—इन्द्रो इति'। यदि संहिता में पद के अन्त के विसर्गों को सन्धि-नियम के कारण र् न हो सका हो तो पद-पाठ में विसर्गों के आगे इति लगाकर विसर्गो का र् कर दिया जाता है जैसे—अन्तरिति'।

द्वन्द्व समास को छोड़कर अन्य समस्त पदों के बीच में अवग्रह लगा दिया जाता है—भूरिऽभृङ्गाः। इव और उसके पूर्व आने वाले पदों के बीच अवग्रह लगाया जाता है। उपसर्गों के बाद आने वाले संज्ञा या कृदन्त पदों के पूर्व अवग्रह लगाया जाता है। जैसे अपऽधा। सुऽशिप्रः। किन्तु प्रधान वाक्य में उपसर्गों को क्रियाओं से पृथक् रक्खा जाता है। गौण वाक्य में यदि एक से अधिक उपसर्ग आ जावें तो प्रथम या अन्तिम उपसर्ग के बाद ही अवग्रह लगता है।

यदि प्रकृति में कोई विकार न हुआ हो तो सु, भ्याम्, भिस्, भ्यस्, क्वसु, त्व, तरप्, तमप्, मत् और वत् आदि प्रत्ययों के पूर्व अवग्रह लगाया जाता है-त्रिऽभि। पत्ऽभ्याम्।

जहाँ उपसर्ग और प्रत्यय दोनों में अवग्रह प्राप्त है वहाँ सामान्यतः प्रत्यय को ही अवगृहीत किया जाता है। यथा—आतस्थिऽवांसो। एक पद में एक से अधिक अवग्रह नहीं लगाया जाता।

संहिता पाठ से पदपाठ करते समय पहिले सन्धि तोड़ कर इति तथा अवग्रह लगा लेने चाहिएँ। इसके पश्चात् संहिता पाठ में जो उदात्त होता है वह पद-पाठ में भी सामान्यतः उदात्त ही रहता है तथा उसके आगे वाला वर्ण स्वरित व पीछे वाला वर्ण अनुदात्त हो जाता है। यदि अनुदात्त के बाद उदात्त या स्वरित अक्षर हो तो वह अनुदात्त ही बना रहता है। स्वरित के बाद अनुदात्तों पर कोई चिन्ह नहीं लगता। सुबन्त के आगे का तिङन्त सर्वानुदात्त हो जाता है। पद के बाद आया सम्बोधन पूरा अनुदात्त हो जाता है यदि वह पाद के आदि में न हो तो।

पुनः यदि पहिले पद मे उदात्त के कारण अगले पद का पूर्वाक्षर स्वरित हो गया हो तो पद-पाठ में अनुदात्त कर दिया जाता है। पहिले पद के स्वरित वर्ण के कारण यदि अगले अनुदात्त पर चिन्ह न लगाया गया हो तो उसे चिन्हित कर दिया जाता है। पहिले पद में उदात्त के पश्चात् आने वाला अनुदात्त यदि अगले पद के उदात्त के कारण स्वरित न होकर अनुदात्त ही हो तो पदपाठ में वह स्वरित हो जाता है।

दो उदात्त, अनुदात्त और स्वरितों की सन्धि में स्वर का परिवर्तन इस प्रकार होता है :—

उदात्त + उदात्त	= उदात्त।
सः इति'	= सेति'।
अनुदात्त + उदात्त	= उदात्त।
परि + अभूषत्	= प्रर्यभूषत्।
स्वरित + उदात्त	= उदात्त।
पदानि' + अक्षीयमाणा	= पदान्यक्षीयमाणा।
उदात्त + अनुदात्त	= स्वरित।
वि + अक्रामत्	= व्यक्रामत्।
उदात्त अ या आ + अनुदात्त स्वर	= उदात्त।

भेदा + उरु गाय:	=	भेदोरुगाय:
अनुदात्त + अनुदात्त	=	अनुदात्त
वास्तूनि + उश्मसि	=	वास्तून्युश्मसि
स्वरित + अनुदात्त	=	स्वरित
अस्तीति + एनम्	=	अस्तीत्येनम्

—: ० :—

पद-पाठ या अवग्रह कहाँ नहीं किया जाता ?

अवग्रह न करने के विषय में यह कारिका प्रसिद्ध है कि—

आदिमध्यान्तलुप्तानि,
समासान्यन्यायभाञ्जि च ।
नावगृह्णन्ति कवयः,
पदान्यागमवन्ति च ॥

अर्थात् जिन शब्दों का आद्यक्षर, मध्याक्षर या अन्तिमाक्षर लोप (Elision) को प्राप्त हो जाता है, या वे समस्त पद जो व्याकरणादि के नियमों के विरुद्ध समस्त बनाए गये हैं या वे पद जिनमें कोई आगम (Infix) लगा दिया गया है, अवग्रह या पद-पाठ के लिये निषिद्ध हैं ।

—:०:—

क्रिया आदि का अन्तिम स्वर कब दीर्घ होता है ?

छन्द: पूर्ति के लिए या प्रातिशाख्य के नियमानुसार क्रिया का अन्तिम अक्षर दीर्घ कर दिया जाता है—जैसे :—

सचस्वा (सचस्व) न: स्वस्तये । (१–१–९) ऋक् ।

निरंहस: पिपृता (पिपृत) निरवद्यात् । (१–११५–६) ऋक् ।

उग्रस्यचिन्मन्यवे ना (न) नमन्ते । (१०–१४–८)

यत्रा (यत्र) नः पूर्वे पितरः परेयुः। (१४–१४–२७) इत्यादि।

इन स्थलों पर "द्व्यचोऽतस्तिङः (६–३–१३५)", निपातस्य च (६–३–१३६). "ऋचि तुनुघमक्षुतङ् कुत्रोरुष्याणाम् (६–३–१३३)", "अन्येषामपि दृश्यते (६–३–१३७)" इत्यादि दीर्घविधायक पाणिनीय नियमों से दीर्घ हो जाता है। प्रायः ऐसा नियम नहीं जो पाणिनि की वैदिक प्रक्रिया या स्वर प्रक्रिया एवं प्रातिशाख्य के अन्दर न आ गया हो, अतः प्रत्येक पद सुव्यवस्थित प्रतीत होता है।

—.०:—

स्वराङ्कन की रीति

ऋग्वेद और तैत्तिरीय यजुर्वेद में उदात्त को मुख्य स्वर माना गया है। मुख्य स्वर स्वयं कोई चिन्ह नहीं रखता। इसे पूर्वगत अनुदात्त से (जिसका चिन्ह नीचे पड़ी पाई (—) का होता है) तथा स्वरित बनाये गये अनन्तर उत्तर भाग में प्रयुक्त वर्ण के ऊपर लगाये गये चिन्ह (।) से पहिचाना जाता है जैसे 'अग्नये' यहाँ ग्न उदात्त है। 'अ' अनुदात्त तथा 'ये' स्वरित है।

शौनकीय अथर्ववेद, माध्यन्दिन यजुर्वेद तथा काण्व यजुर्वेद में इस नियम का पालन नहीं किया जाता। कहीं "ऽ" तथा "कही "└" चिन्ह स्वरित के बतलाने के लिये लगाया जाता है।

सामवेद के स्वर

सामवेद के प्रातिशाख्य में संहिता को 'निर्भुज' और पद-पाठ को 'प्रतृण' कहते हैं। क्योंकि ऐतरेय आरण्यक में "यद्धि सन्धि विवर्तयति तन्निर्भुजस्य स्वरूपम्। अथ युच्छुद्धे अक्षरे अभिव्याहरति तत् प्रतृणस्य (३–१–३)", यह लेख आता है जो कि उक्त परिभाषा की पुष्टि कर रहा है। उदात्त अक्षर के ऊपर एक (१) का अंक देते हैं।

जहाँ अनेक उदात्त हों वहाँ पहिले उदात्त पर एक (१) का चिन्ह लगाया जाता है अन्यों पर नहीं। यदि उदात्त के बाद स्वरित अक्षर आता है तो उदात्त के चिन्ह (१) के बाद रेफ भी (१ र) इस तरह लगा देते हैं। यदि उदात्त के बाद फिर उदात्त आवे तो पहिले उदात्त के ऊपर दो (२) का चिन्ह लगा दिया जाता है। यही नियम, पद के अन्त में यदि उदात्त आवे तो वहाँ भी लागू किया जाता है। यदि उदात्त के बाद अनुदात्त अक्षर होता है तो उदात्त के चिन्ह के साथ (२ उ) इस प्रकार उकार का प्रयोग भी किया जाता है। स्वरित को भी (२ र) इस चिन्ह से निर्दिष्ट किया जाता है। प्रातिशाख्यकार "उदात्त स्वरितयोर्यण: स्वरितोऽनुदात्तस्य" (८/३/४) इस सूत्र से जो स्वरित किया जाता है उसे क्षैप्र कहते हैं। कही कही केवल यण् सन्धि को भी क्षैप्र कह दिया जाता है। स्वाभाविक, अपराश्रित, स्वतन्त्र को 'जात्य' कहते हैं। उदात्त और अनुदात्त को मिलाकर जो स्वरित होता है (जिसका 'स्वरितोवाऽनुदात्ते पदादौ' (८–२–६) इत्यादि सूत्र विधान करते हैं) वह 'प्रश्लेष' कहा जाता है। प्लुत का चिन्ह (३) है जो कि ह्रस्व तथा दीर्घ दोनों के साथ यथारुचि लिखा जाता है। अकार के आगे यदि प्लुत चिन्ह होता है तो उसे (अ ३) ऐसा न लिखकर (आ ३) ऐसा लिखते हैं जिससे अशुद्ध उच्चारण न हो। पद पाठ या 'प्रतृण' के स्वर इससे मिले होते हैं। उदात्त को स्वरित (स्वर सहित) भी कहते हैं।

—:o:—

ऋग्वेद में स्वर लगाने के नियम

टोन Tone, Pitch पिच इन दोनों शब्दों में विशेष अन्तर नहीं। वर्ण को Vowel, अक्षर को Syllable, सुर को भी पिच कहते हैं। स्वर परिवर्तन को Shifting of accent कहते हैं। एक शब्द में कहीं

न कहीं जोर अवश्य दिया जाता है जैसे 'जाओ' में 'ओ' पर, 'ब्राह्मण' में 'आ' पर। जहाँ जोर दिया जाता है उसे ही accent या स्वर कहते हैं। Conduct यदि संज्ञावाचक है तो Con (कान्) पर जोर होता है, क्रिया है तो 'डक्ट' पर। अतएव (कान्डक्ट) और 'कंडक्ट' यह उच्चारण सज्ञा और क्रिया होने पर क्रम से बोला जाता है। इस ही बात को तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुवाक २ में लिखा है "वर्णः स्वरः मात्रा बलम् इत्येतज्जिज्ञासितव्यम्" इति बल को Stress भी कहते हैं। धातु के अवान्तर विकार को Ablaut एब्लौट या एब्लाउत कहते हैं पर Umlaut अमलौट या अम्लाउत इससे भिन्न होता है। Ablaut को ही Vowel gradation कहते हैं। उदात्त को इंगलिश में Higher या Acute या Raised कहते हैं। अनुदात्त को Not-raised या Grove कहते हैं। स्वरित स्वतन्त्र और आश्रित दो प्रकार का होता है। स्वतत्र स्वरित को independent या enclitic और आश्रित को dependent या circumflex कहते हैं। स्वरित प्रायः यणादि सन्धि होने पर होता है। स्वरित के बाद आने वाले अनुदात्तों को 'प्रचय' 'प्रचित' या एकश्रुति नाम से पुकारते हैं क्योंकि शेर जब उछलता है तब पहिले सिकुड़ता है इसी प्रकार उदात्त से पूर्व अनुदात्त अवश्य होता है। जात्य, क्षैप्र, प्रशिलष्ट और अभिनिहित स्वतत्र स्वरित कहे जाते हैं। उदात्त के बाद स्वरित इसी लिये होता है क्योंकि जो चढ़ता है वह गिरता है यह संसार का नियम है।

स्वर लगाने के नियम

१—एक पद में एक उदात्त होता है शेष स्वर अनुदात्त हो जाते हैं चाहे आगे हों या पीछे। (अष्टाध्यायी ६—१—१५८)

२—उदात्त के पश्चात् अनुदात्त स्वरित (Circumflex) हो जाता है। (८—४—६६)

३–यदि अनुदात्त के बाद उदात्त या स्वरित अक्षर हो तो अनुदात्त ही बना रहता है। (१–२–४०)

४–स्वरित के बाद अनुदात्तों पर कोई चिह्न नहीं लगता है। वे प्रचय स्वर वाले, प्रचित एकश्रुति कहाते हैं। (१–२–३९)

५–उदात्त के बाद अनुदात्त स्वरित हो जाता है यदि अनुदात्त के बाद उदात्त न हो तो। (८–२–४)

६–सर्वप्रथम उदात्त ही ढूँढना चाहिए। उस पर कोई चिह्न नहीं होता यही उसकी निशानी है।

७–अतिङन्त (सुबन्त) परे तिङन्त सर्वानुदात्त हो जाता है। (८–१–२८)

८–पद के बाद आया सम्बोधन पूरा अनुदात्त हो जाता है यदि वह पाद के आदि में न हो तो। (८–१–१९)

९–कहीं-कही सम्बोधन पद का आदि अक्षर ही उदात्त होता है। (६–१–१९८)

१०–जहां दो अनुदात्तों को दीर्घादेश होता है वहाँ दोनों के स्थान में स्वरित हो जाता है जैसे अव+अधमानि जीवसे (अवाधमानि) में 'वा' स्वरित है। (देखो ऋक् १–२५–२१)

—:०:—

समासों का स्वर

आम्रेडित (पुनरुक्त) पदों के समासो में पूर्वपद में उदात्त स्वर होता है। जैसे — अहं रहः। यथा यथा। प्र। प्रं। इनको पद पाठ में अवगृहीत किया जाता है।

बहुव्रीहि समासों में पूर्वपद में उदात्त स्वर होता है। जैसे— विश्वतोमुखः। भूरिशृंगाः। (६)। युक्तग्रावणः, सुतसोमस्य (१२)।

बहुत से बहुव्रीहि समासों में उदात्त स्वर अन्तिम पद में होता है। विशेषतः जब पूर्वपद बहु, पुरु, नञ् (अ या अन्) और सु हो। जैसे-सुशिप्रः (१२)। उरुगायायं (३) उरुक्रमस्य (५) कुचरः (२)।

कर्मधारय में अन्तिम पद में उदात्त स्वर होता है। जैसे—प्रथमजा प्रातर्युज्। महाधन। परन्तु जब पूर्वपद नञ् में (अ+अन्) हो तो उदात्त पूर्वपद में होता है। जैसे—अनग्निदग्धाः। अनश्वदा।

तत्पुरुषों में उत्तर पद में अन्तिम स्वर उदात्त होता है। जैसे—गोत्रभिद्। भद्रवादिन्। उद्भेद। परन्तु षष्ठ्यन्त पूर्वपद वाले समासो में दोनों पदों में उदात्त स्वर रहता है। जैसे वृहस्पतिः। अपानपात् शुनः शेप।

द्वन्द्व समासों में समास करने पर बने प्रतिपदिक का अन्तिम स्वर उदात्त होता है। जैसे—अजावय (२१) यहाँ अजावि प्रतिपदिक है। साशनानने (२५)।

देवताद्वन्द्व समासों के दोनों पदों में उदात्त स्वर होता है। जैसे-इन्द्रावरुणा। द्यावापृथिवी (१३) इस पद में दोनो भागों को पृथक्-पृथक् प्रयुक्त किया गया है। इनके बीच में (चिदस्मै) पद भी आ गये हैं।

स्वतन्त्र स्वरित — कही २ पूर्व में उदात्त के विना भी अनुदात्त को स्वरित हो जाता है। जैसे— वीर्याणि, वीर्येण, राजन्य। इत्यादि।

साहित्य पाठ में सन्धि के कारण स्वरित दिखाई पड़ता है पर सन्धिच्छेद होने पर वह नही रहता, जैसे— ब्राह्मणोऽस्य=ब्राह्मण. अस्य। स्वतंत्र स्वरित के वाद यदि उदात्त आ जाय तो स्वतन्त्र स्वरित के ह्रस्व होने पर उसके आगे १ लिखकर उस अक के ऊपर स्वरित व नीचे अनुदात्त का चिह्न लगा देते हैं। जैसे:— व्य १ 'स्यत्, वर्प्म १' नभ।

सर्वनाम शब्द— इव–स्य, चित्, स्वित्, उ, ह घ, मे, ते, एन, ईय, सीम् त्व, सम आदि शब्द नित्य अनुदात्त होते हैं।

सम्बोधन पद का पहला वर्ण उदात्त और शेष वर्ण अनुदात्त होते हैं। यदि क्रिया वाक्य के आरम्भ में हो तो उसका आदि अक्षर प्राय. उदात्त होता है।

कम्पितस्वर—साधारण नियम के अनुसार उदात्त यदि अनुदात्त के बाद आता है तो स्वरित हो जाता है। (८—४—६८) इस स्वरित को अस्वतंत्र (परतंत्र) स्वरित कहते है। जो स्वरित यणादि संधि के बाद होता है जैसे— क्व स्व ! आदि शब्दों में, उन शब्दों को स्वतन्त्र स्वरित कहते हैं।

जब स्वतंत्र स्वरित के अनन्तर उदात्त अक्षर होता है या दूसरा स्वतंत्र स्वरित होता है तो उस स्वरित को ह्रस्व अक्षर के बाद १ लिखकर और दीर्घ अक्षर के बाद ३ लिखकर प्रकट करते हैं। यदि ह्रस्व स्वर के बाद १ का चिन्ह दिया जाता है तो १ संख्या के नीचे अनुदात्त का चिन्ह और ऊपर स्वरित का चिन्ह लगाते हैं तथा जिस स्वर में संधि अक्षर होने से स्वर लगना चाहि था उसमें नहीं लगाते जैसे — ऋक्वेद के छठे मण्डल के दूसरे सूक्त के दूसरे मन्त्र में—

यजस्व तन्व १' तव स्वाम्— इसमें १ संख्या के ऊपर नीचे स्वर लगाये गये हैं किन्तु स्व पर कोई चिन्ह नहीं लगाया गया है इसी प्रकार—

सुप्राव्ये ३' यज'मानाय (१०—१२५—२) में व्ये के नीचे अनुदात्त का चिन्ह है। तथा ३ संख्या के नीचे भी अनुदात्त का चिन्ह है इससे यह सिद्ध हुआ कि जहाँ दीर्घ स्वतन्त्र स्वरित होता है वहाँ दीर्घ अक्षर के नीचे भी अनुदात्त का चिन्ह लगता है इस स्वर को ही कम्प स्वरित या कम्प स्वर कहते हैं।

पदपाठ में रेफ के स्थान में होने वाला विसर्जनीय 'रजात'

कहलाता है तथा उस विसर्जनीय को इति शब्द जोड़कर प्रकट किया जाता है तथा इति शब्द का इकार उदात्त है अतः स्वर् शब्द का स्वः कम्प स्वर का उदाहरण बन जाता है।

किन्तु क्व ३ विश्वानि सौभगा (१—३८,४) इस संहिता पाठ में तथा (क्व ३ इति) इस पद पाठ में दोनों जगह पर कम्प स्वर हो जाता है क्योंकि पद-पाठ मे इति का इ उदात्त है जिस प्रकार संहिता पाठ में विश्वानि पद का वकारोत्तर इकार उदात्त है ऐसा ही एक उदाहरण ('स्व· सविता') (१२९—२) मे भी संहिता पाठ व पद पाठ का कम्प स्वर एक सा ही रहता है।

कम्प स्वर के विषय में 'ऋक् प्रातिशाख्य में लिखा है कि—

जात्योऽभिनिहितश्चैव क्षैप्रः प्रश्लिष्ट एव च।
एते स्वराः प्रकम्प्यन्ते यत्रोच्चस्वरितोदयाः॥

व्यंकट माधव ने (६—८—१४ वे) ऋग्वेद का भाष्य करते हुए लिखा है :—

पादे पादे सकाप्यन्ते प्रायेणार्था अवान्तराः।
'शाकल्यः पाणिनिर्यास्क इत्यृगर्थपरास्त्रयः।

पद-पाठ के ज्ञान के लिए ऋक्, अर्द्धर्च, पद और अक्षर का ज्ञान आवश्यक है पद और पाद शब्द पर्यायवाची हैं। पाणिनि "नः क्ये" इस नियम से जो पद संज्ञा का विधान करते हैं शाकल्य उसे नहीं मानता।

—: ० :—

चिह्न-पद्धति

	भारतीय (Indian)	विदेशी (Europeon)
उदात्त	(चिह्न रहित)	⊥
अनुदात्त	—	चिह्न रहित
स्वरित	।	-

— ० —

स्वर लगाने का जटिल मार्ग

यदि सूत्र याद नहीं, तथा व्याकरण नहीं आता तब तो ऊपर लिखे नियमों से काम चल जायगा पर यदि व्याकरण आता है तो यों समझिए कि—'अग्निमीडे' इस मन्त्र में स्वर लगाना है तो—'अग्निमीडे+पुरोहितम्' यहाँ पर अग्नि शब्द अव्युत्पत्तिपक्ष में 'फिषोऽन्त उदात्तः' इस फिट सूत्र से या 'घृतादीनां च' से अन्तोदात्त है। व्युत्पत्ति पक्ष में 'अङ्गेर्नलोपश्च' उणादि सूत्र ४६६ से निष्पन्न अन्तोदात्त है। 'अम्' प्रत्यय सुप् होने से "अनुदात्तौ सुप्पितौ" से अनुदात्त हुआ है पर 'अमि पूर्वः' से पूर्व रूप होने पर 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' से उदात्त हो गया है। इस प्रकार अग्नि शब्द में इकार उदात्त और अकार अनुदात्त हुआ। 'ईडे' यह सारा पद 'तिङ्ङतिङः' से अनुदात्त हुआ पर 'उदात्तानुदात्तस्य' स्वरितः से ईकार स्वरित (आश्रित) हो गया तथा 'डे' "स्वरितात् संहितायामनुदात्तानाम्" इस नियम के अनुसार प्रचय स्वर वाला एक श्रुति स्वर वाला बना तथा प्रचित स्वर पर कोई चिह्न नहीं लगता यह कहा जा चुका है। 'पुरस्' शब्द पूर्व शब्द से "पूर्वाधरावराणामसिपुरधवश्चैषाम्" (५-३-३९) इस सूत्र से बना है इसलिये अन्तोदात्त हुआ—प्रत्यय स्वर होने से। हित शब्द भी प्रत्यय स्वर से अन्तोदात्त ही हुआ—पुरस् और हित शब्द का गति समास होने पर समासान्तोदात्त प्राप्त हुआ, अव्यय पूर्व पद प्रकृति स्वर प्राप्त हुआ। तथा थाथादि स्वर प्राप्त हुआ तथा पूर्व-पूर्व का उत्तर-उत्तर स्वर से बाध होता चला गया तब 'गतिरनन्तरः' से पूर्व पद प्रकृति स्वर हो गया। पुरस् का ओकार अनुदात्ततर हो गया, क्योंकि 'हित' का 'हि' स्वरित है। यज्ञ शब्द में नङ् प्रत्ययस्वर होने से नकार उदात्त है। 'स्य' प्रत्यय अनुदात्त है पर बाद में वे स्वरित बन जाते हैं। देव अन्तोदात्त है। ऋत्विज शब्द अन्तोदात्त है। होतृ शब्द फिट् सूत्रों से अन्तोदात्त है। रत्न शब्द आद्युदात्त है। समास होने पर

अन्तोदात्त हो गया। 'तमप्' पित् है—अतएव इसे स्वरित प्रचय हो गये।

—: ० :—

"सुबन्त विभक्तियाँ"

पाणिनि के मत में भ्यां भिस् आदि विभक्तियाँ प्रातिपादिक से संयुक्त करने के बाद, किन्तु शाकल्य के मत में भ्यां भिस् से पूर्व पदत्व आता है। वह इन्हें अवग्रह से पृथक कर देता है।

—: ० :—

"समास"

वाजसनेयी प्रातिशाख्य के मत में प्रजा प्रजापति इत्यादि शब्दों को जहाँ अन्तिम पूर्वपद का योग होता है, वहाँ अकार के पूर्व जैसा ही अवग्रह का चिन्ह लगता है। जैसे :— 'प्रऽजा' यह पूर्वरूप का चिन्ह नञ् समास में नहीं लगता। 'इव' शब्द के साथ समास करने पर भी इसका योग होता है।

—: ० :—

" 'इति' का प्रयोग"

जहाँ कोई विशेषता बतलानी होती है, वहाँ शाकल्याचार्य के मत में इति जोड़ दी जाती है। र् जात में विशेषतया प्रयोग होता है। कहीं कहीं स् जात विसर्ग में भी। प्रगृह्य-संज्ञा के साथ भी इसका प्रयोग होता है।

—: ० :—

"छान्दसिक दीर्घों का ह्रस्वीकरण"

कुछ पदों में तो दीर्घ का विधान पाणिनि के नियमानुसार तथा कुछ पदों में केवल छन्दः पूर्ति के लिये ह्रस्व किया जाता है। कहीं-कहीं पर अभ्यास को दीर्घ किया जाता है। जैसे —

"सचस्वा न स्वस्तये।" १/१/६। "यमाय अहुताहवि." १०/१४/१३। "निरंहस पिपृता" १/११५/६। "न जानीमो नयता" १०/३४/४। "मित्र कृणुध्वं खलु मृडता न" १०/३४/१४। "यं स्मा पृच्छन्ति" २/१२/५। "अद्या देवा उदिता." १/११५/६। वृहस्पति ऋक्वभि वावृधान" १०/१४/३ इत्यादि पदों में जो दीर्घ हो रहा है, वह पद-पाठ में ह्रस्व कर दिया जाता है।

—: ० :—

"तद्धित प्रत्यय"

'तरप्' या 'तमप्' प्रत्यय अवग्रह से पृथक कर दिये जाते हैं। यदि 'दा' 'धा' 'सा' 'पा' 'भू' 'हू' धातुओं तथा गोपा शब्द के बाद जब 'तरप्' या 'तमप्' प्रत्यय किया जाता है तो इनसे पूर्व अवग्रह का चिन्ह दिया जाता है। इसी प्रकार 'मतुप्' और 'त्व' प्रत्यय से पूर्व भी अवग्रह का चिन्ह लगता है।

— ० —

"कृदन्त प्रत्यय"

'लिट्' के स्थान में जब 'क्वसु' प्रत्यय किया जाता है, तब उसका भी अवग्रह कर दिया जाता है। किन्तु 'वसु' प्रत्यय जब अकारान्त शब्दों से होता है तभी अवग्रह का चिन्ह लगता है। 'क्यच्' 'क्यङ्' और 'वयष्' से पूर्व में भी कभी-कभी अवग्रह लगा दिया जाता है।

—: ० :—

"स्वराघात" (Accent)

स्वराघात के द्वारा ग्रीक आदि भाषाओं मे भी एक ही शब्द का भिन्न-भिन्न अर्थ होता है। इसके विषय में महाभाष्यकार ने लिखा है कि यदि स्वर में भूल हो जाती है तो बड़ा अनर्थ हो जाता है। जैसे—यदि 'इन्द्र शत्रु' पद में प्रथम पद में स्वराघात किया जाता है तो इन्द्र रूपी 'शत्रुमारने वाला' यह अर्थ बहुव्रीहि समास के द्वारा या 'इन्द्र एव शत्रु' विग्रह करके अर्थ किया जाता है। 'शत्रु' शब्द शातयिता या हन्ता अर्थ में प्रयुक्त होता है। यदि 'शत्रु' पद पर स्वराघात किया जावे या इन्द्रस्य हन्ता यह तत्पुरुष समास किया जाय तो इन्द्र को मारने वाला (वृत्र) इत्यादि अर्थ होता है। इसी प्रकार 'ते' पद को यदि निघातयुक्त कर दिया जाता है तो इसका अर्थ 'वे' होता है और यदि निघात नहीं किया जाता तो 'तुम्हारा' अर्थ होता है। यह संस्कृत भाषा की ही गति नहीं, किन्तु इसी प्रकार ग्रीक भाषा भी यदि 'Lithobolos' शब्द में अन्तिम वर्ण को Penult स्वर युक्त किया जाता है तो इसका अर्थ 'पत्थर फैंकने वाला' होता है। यदि आदि पद पर स्वराघात किया जाता है तो दूसरा अर्थ 'पत्थरों से आहत' (आघात-युक्त व्यक्ति) अर्थ होता है। जर्मन भाषा में भी यदि 'Urergehen' शब्द में मुख्य स्वर अन्तिम स्वर पर लगाया जाता है तो इसका अर्थ Ourboron उपेक्षा होता है किन्तु यदि प्रथम स्वर पर आघात किया जावे तो 'पार करना' या ऊपर से जाना अर्थ होता है। फ्रैंच भाषा में भी 'Cote' शब्द में द्वितीय स्वर पर आघात करने से पेटीकोट (Petti-coat) अर्थ होता है तथा प्रथम स्वर पर आघात करने से, पसली (Rib) या 'किनारा' अर्थ होता है। अंग्रेजी में 'Conduct' आदि शब्दों में तो स्वराघात से क्रिया और सञ्ज्ञाओं का बनना प्रसिद्ध ही है।

—·०—

"संधियाँ तथा कारक"

इनके विषय में Vedic Grammar for Students by Macdonell का अध्ययन करना चाहिये। विस्तार भय से यहाँ नहीं लिखा जाता।

सूचना

अग्निसूक्त १/१/१ का ऋषि विश्वामित्र नहीं किन्तु 'मधुच्छन्दा-वैश्वामित्र है। अग्निसूक्त १/१/३ के विशेष में 'पोषम्' पद का अर्थ विस्तार या अभिवृद्धि है पुष्टिकारक नहीं क्योंकि इसकी व्याख्या Prosperity शब्द से की गई है। इस प्रकार विशेष को पढ़ना चाहिये। पहली टिप्पणी असंगत है।

स्वर विधायक नियम (सूत्र)

१–अनुदात्तं पदमेकवर्जम्।

२–अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोप. (अनुदात्तः उदात्त)।

३–चौ (पूर्वस्यान्तोदात्तः)।

४–आमन्त्रितस्य च (आदिरुदात्तः)।

५– ,, ,, (पदात्परस्यानुदातत्त्वम्)।

६–अनुदात्तं सर्वमपादादौ (वां, तौ, वः, नः, त्वा, मा, ते, मे)।

७–आमन्त्रित पूर्वमविद्यमानवत्।

८–उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य।

९–एकादेश उदात्तेनोदात्तः।

१०–उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः।

११–नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम् (उदात्तपरः स्वरित-पश्चानुदात्तो न स्वरितः)।

१२–स्वरितात्संहितायामनुदात्तानाम् (एकश्रुति)।

१३–अनुदात्तं च (द्विरुक्तस्य परं रूपम्) ।
१४–धातोः (अन्त उदात्तः) ।
१५–अभ्यस्तानामादिः (लसार्वधातुके, उदात्तः) ।
१६–अनुदात्ते च (अभ्यस्तानामादिरुदात्तः) ।
१७–लिति (प्रत्ययात्पूर्वमुदात्तः) ।
१८–कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः ।
१९–चतुरः शसि (अन्त उदात्तः) ।
२०–झल्युपोत्तमम् (षट्त्रिचतुर्भ्यः) पञ्चभिः ।
२१–ञ्नित्यादिर्नित्यम् (आदिरुदात्तः) ।
२२–अन्तश्च तवै युगपत् (तवैप्रत्ययान्तस्य आदिरंतश्चोदात्तौ) ।
२३–संज्ञायामुपमानम् (आद्युदात्तम्) ।
२४–निष्ठा च द्व्यजनात् (आदिरुदात्तः) ।
२५–अनुदात्तौ सुप्पितौ ।
२६–यतोऽनावः (यत्प्रत्ययान्तस्यादिरुदात्तः) ।
२७–मतोः पूर्वमात्संज्ञायां स्त्रियाम् (उदात्त) ।
२८–ईवत्याः (मतुपअन्त उदात्तः) ।
२९–फिषोऽन्त उदात्तः (फिट् प्रातपदिक) ।
३०–खान्तल्पाश्मादेः (अन्त उदात्तः) ।
३१–अर्यस्य स्वाम्याख्याचेत् (अन्त उदात्त.) ।
३२–ज्येष्ठ कनिष्ठयोर्वयसि (अन्त उदात्तः) ।
३३–ह्रस्वान्तस्य स्त्री विषयस्य (आदिरुदात्तः) ।
३४–तृणधान्यानाञ्च द्व्यषाम् (आदिरुदात्तः) ।
३५–नः संख्यायाः (नकारान्त रेफान्त संख्याया आदिरुदात्तः) ।
३६–स्वाङ्गशिटामदन्तानाम् (आदिरुदात्तः) ।
३७–वर्णानाम् तणतिनितान्तानाम् (आदिरुदात्त) ।
३८–ह्रस्वान्तस्य ह्रस्वमनृत्ताच्छील्ये (आदिरुदात्तः) ।
३९–इगान्तानां च द्व्यषाम् (आदिरुदात्तः) ।

४०–निपाता आद्युदात्ताः ।

४१–उपसर्गाश्चाभिवर्जम् ।

४२–एवादीनामन्त ।

४३–चादयोऽनुदात्ताः ।

४४–यथेति पादान्ते ।

४५–प्रकारादिद्विरुक्तौ परस्यान्त उदात्तः ।

४६–आद्युदात्तश्च (प्रत्ययः) ।

४७–चितः (अन्त उदात्त) ।

—: ० :—

समास स्वर विधायक सूत्र :–

१. समासस्य (अन्तउदात्तः) ।

२. बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम् ।

३. तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाऽव्ययद्वितीयाकृत्याः ।

४. संख्या (पूर्वपदं प्रकृत्या द्वन्द्वे) ।

५. गतिरनन्तरः (क्तान्ते प्रकृत्या) ।

६. तादौ च निति कृत्यतौ (अनन्तरोगतिः प्रकृत्या) ।

७. अणि नियुक्ते+संज्ञायां च (अणन्त आद्युदात्त) ।

८. नञो जरमरमित्रमृताः (आद्युदात्तः) ।

९. उभे वनस्पत्यादिषु युगपत् ।

१०. नञ् सुभ्याम् । अन्तोदात्तो भवति ।

११. तिङ्ङतिङः ।

१२. न लुट् ।

१३. निपातैर्यद् यदि हन्तकुविन्नेच्चेच्चण्कच्चिद्यत्रयुक्तम् ।

१४. यद्वृत्तान्नित्यम् ।

१५. हि च ।

१६. यावद्यथाभ्याम् ।

१७. तुपश्यपश्यताऽ हैः पूजायाम् । इत्यादि ।

इन सूत्रों पर ध्यान रखने से यदि स्वर संचार किया जायगा तो अवश्य स्वर का यथार्थ ज्ञान होगा। सन्धि सम्बन्धी नियम विस्तार के भय से छोड़ दिये हैं। ईश्वरेच्छा हुई तो अगले संस्करण में सन्धि नियमों पर प्रकाश डालेंगे।

— ० —

छन्दः प्रकरण

ब्राह्मण में यह वाक्य आते हैं कि "अनुष्टुभा ऋचा यजति, बृहत्या ऋचा यजति, गायत्र्या ऋचा स्तौति", इन वाक्यो में छन्दों का निर्देश किया गया है बिना छन्दोज्ञान के कौन सी अनुष्टुभी ऋचा है यह जानना असंभव है। अतएव महर्षि पाणिनि ने 'शिक्षा' में 'छन्दः पादौ तु वेदस्य" यह लिखा है इसी प्रकार "यो ह वा अविदितार्षेयच्छन्दो दैव विनियोगेन ब्राह्मणेन मन्त्रेण याजयति वाऽध्यापयति वा स स्थाणुं वर्च्छति, गर्तं वा पद्यते, प्रभीयते वा पापीयान् भवति, यातयामान्यस्य छन्दांसि भवन्ति"। (छन्दो ब्राह्मण ३–७–५)

अर्थात् बिना छन्दों का ज्ञान किये मन्त्रों का पढ़ना पढ़ाना या मंत्रों का स्वयं उच्चारण करना पाप का कारण बन जाता है। इतना ही नहीं ऐसे गुरु या याजक या अध्यापक को मरने पर वृक्षादि स्थाणु योनि प्राप्त होती है। बृहद्देवता में भी लिखा है :— किस मंत्र का किस छन्द में विनियोग है।

अविदित्वा ऋषिच्छन्दो दैवत योगमेव च ।
योऽध्यापयेज्जपेद्वापि पापीयान् जायते तु सः ॥ इति ॥

अन्यत्र भी लिखा है :—

मन्त्राणां देवतं छन्दो निरुक्तं ब्राह्मणानृषीन् ।
कृत्तद्धितादींश्चाज्ञात्वा यजन्तो यागकण्टकाः ॥
ऋषिश्छन्दो दैवतानि ब्राह्मणार्थं स्वराद्यपि ।
अविदित्वा प्रयुञ्जानो मन्त्रकण्टक उच्यते ॥

इसलिये छन्द: परिज्ञान बड़ा ही आवश्यक एवं अनिवार्य है। तदनुसार वैदिक छन्दोज्ञान के लिये पिंगल मुनि के बनाये हुये "पिंगल छन्दः सूत्र" से उपयोगी अंश उद्धृत कर दिया है।

—: ० :—

वेद में लौकिक छन्दों का प्रयोग

स्वरो वर्णोऽक्षरं मात्रा विनियोगोऽर्थ एव च ।
मन्त्रं जिज्ञासमानेन वेदितव्यं पदे पदे ॥

इस युक्ति के अनुसार महाकवि कालिदास ने सात वैदिक छन्दो में से "आर्या त्रिष्टुप्" का प्रयोग 'अभिज्ञान शाकुन्तल' के चतुर्थ अङ्क के सातवें श्लोक में शकुन्तला की विदाई के अवसर पर काश्यप (कण्व) ऋषि के द्वारा किया है जो निम्नलिखित है :—

अमी वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः,
समिद्वन्तः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः ।
अपघ्नन्तो दुरितं हव्यगन्धैः,
वैतानास्त्वां वह्नयः पावयन्तु ॥

कालिदास ने शाकुन्तल में काश्यप के बोलने से पहिले कोष्ठक में (ऋक्छन्दसाऽऽशास्ते) इस प्रकार का निर्देश भी किया है।

ऋग्वेद के चतुर्थमण्डल के ५१वें उषः सूक्त का प्रारम्भ भी इसी छन्द से होता है।

इस छन्द मे कुल ४४ वर्ण होते हैं। प्रत्येक चरण में ११ वर्ण पाये जाते हैं जैसे —

इदमुत्यत्पुरुतमं पुरस्ताज् ,
ज्योतिस्तमसोवयुनावदस्थात् ।
नूनं दिवोदुहितरो विभातीर् ,
गातुं कृणवन्नुषसो जनाय ॥ (ऋक० ४/५१/१)

ठीक इसी प्रकार वैदिक ऋषियो ने भी लौकिक छन्दों का प्रयोग भी कहो कहीं किया है। जैसे :—

स्तुहि श्रुतं गर्त सद युवानम्' (ऋक० २/३/१८)

यह "उपेन्द्रवज्रा" छन्द है। इस छन्द का लक्षण— "उपेन्द्र वज्रा यदि तौ जगौ ग:" है। तथा रथं न तुर्गात् वसवः सुदानवः, (ऋ० स० १–७–२४)

इस मंत्र में वशरथवृत्त है।

इस छन्द का लक्षण "जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ"

इसी प्रकार :—

'हृदिस्पृगस्तु शन्तम.' (ऋ० स० १–१–३१) प्रमाणिका छन्द।

'पूषण्ष्ते ते ते चक्रमा करस्भं' (ऋ० स० ३–३–१८) इन्द्रवज्रा-छन्द।

'अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृश्रे कुहचिद्दिवेषु,
(ऋ० सं० १–२–१४) 'उपजाति'

"इन्द्रासोमा दुष्कृते मा सुगं भूत्' (ऋ० सं० ५–७–६) 'शालिनी'

"ग्रादेवानामभव. केतुरग्ने' (ऋ० सं० २–८–१६) वातोर्मी'

'यूना ह सन्ता प्रथम विजज्ञतु (ऋ०. सं० ७–२–१९) 'इन्द्रवंशा'

'अथा न इन्द्र सोमया गिरामुपश्रुतिं चर' (ऋ० सं० १–१–१९)
'नराच'

—. ० :—

पिङ्गल से पूर्व के आचार्य

'पिङ्गल' के पूर्व भी 'क्रौष्टुकि' 'यास्क' 'तण्डि' 'सैतव' 'काश्यप' 'रात' तथा मांडव्य, प्रभृति छन्द शास्त्र के प्रणेता हुए। 'रात' और 'माण्डव्य' दोनों ने मिलकर ही छन्दोग्रन्थ निर्माण किया था। अथवा दोनो के नाम जुड़े हुए एक साथ प्राप्त होते हैं।

'पिङ्गल' मुनि कितने प्राचीन थे इसका प्रमाण यह है कि महाभाष्य 'नवाह्निक' में 'पैङ्गुल काण्व" (आह्नि० ६ सू० ७३) शब्द मिलता है तथा भाष्य से प्राचीन 'ऋक्सर्वानुक्रमणी' में भी 'छन्द शास्त्रीय सूत्रों का अनुवाद उपदर्शित है। किन्हीं व्यक्तियों का यह विचार है कि "महाभाष्यकार पतञ्जलि ही 'पिङ्गल' थे। परन्तु यह विचार इन प्रमाणों से निर्मूल हो जाता है।

वामनपुराण में— 'सनत्कुमार: सनक: सनन्दन:। सनातनोऽप्यासुरि पिङ्गलौ च"। तथा स्कन्द पुराण में :—(काशीखण्ड) "गणेन पिङ्गलाख्येन पिङ्गलेशाख्य संज्ञितम्। लिङ्गं प्रतिष्ठितं शम्भो: कपर्दीशादुदग्दिशि" इन उद्धरणों में 'पिङ्गल' नाम का ही वर्णन प्रतीत होता है।

पिङ्गल मुनि का निवास स्थान :— समुद्र के पश्चिम तट के निवासियों के लिए अपरान्त शब्द तथा वहाँ की स्त्रियों के लिए 'अपरान्तिका' शब्द रूढ़ है। 'अपरान्तिका' और 'वानवासिका' दो छन्द भी छन्द शास्त्र में मिलते हैं।

वात्स्यायन सूत्र की व्याख्या जयमङ्गला के अनुसार 'पश्चिम समुद्रसमीपं अपरान्तदेशः तत्र भवा:।' 'कोंकणविषमात् पूर्वेण वनवास विष्पद: तत्रभवा.'। अर्थात् पश्चिम समुद्र में 'पास अपरान्त देश है और कोंकण से पूर्व वनवास देश कहलाता है। वहाँ के होने वाले अपरान्तिक और वानवासिका कहलाते है।

तदनुसार पिङ्गल मुनि गुजरात के निकट समुद्र के किनारे के रहने वाले थे' यह अनुमान किया जा सकता है।

—:०—

मात्रा–विचार

वार्णिक और मात्रिक दो प्रकार के छन्द होते हैं। इनमें वार्णिक छन्दों का वेदों में अधिक प्रयोग है। मात्रिक छन्द भी प्रयुक्त हैं पर बहुत ही कम। इनमें मात्राओं के ज्ञान का यह क्रम है :—

एकमात्रो भवेद् ह्रस्व:' द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयः, व्यञ्जनं चार्धमात्रिकम्॥

चुटकी (छुटिका या छोटनी सं०) बजाने में जितना समय लगता है उतना ही एक मात्रा के बोलने मे लगता है। त्रैमात्रिक स्वर का उपयोग विशेषतया व्याकरण और संगीत शास्त्र में होता है। दीर्घ अक्षर की दो मात्राएं मानी जाती हैं। 'ए' या 'ओ' दीर्घ ही माने जाते है। व्यञ्जनों या हल वर्णों की आधी मात्रा मानी जाती है यह साम्प्रदायिक सिद्धान्त है। इसमें क्यों ? कैसे ? करना भूल है, तर्कान्धत्व है। अक्षरों की गणना में जितने अक्षर एक स्वर के साथ होंगे वह सब एक ही अक्षर या वर्ण माना जाता है।

—·०·—

गण–विचार

म्यरस्तजभ्नगै र्लान्तैरेभिर्दशभिरक्षरैः।
समस्तं वाङ्मयं व्याप्तं त्रैलोक्यमिव विष्णुना॥

(वृत्तरत्नाकर)

"मस्त्रिगुरुस्त्रिलघुश्च नकारो भादिगुरुः पुनरादिलघुर्यः।
जो गुरुमध्यगतो रलमध्यः सोन्त्यगुरुः कथितोन्त्यलघुस्तः॥
यमाताराजभानसलगाः॥"

इस प्रकार मगण, नगण, यगण, रगण, सगण, तगण, जगण, भगण इन गणों का निरूपण किया गया है। यमाता में जो गण है

उसके निर्देशक अक्षर से आगे के तीन अक्षर गिनेंगे तो उस गण के गुरु लघु अक्षरों का परिज्ञान हो जायगा। जैसे 'यमाता' में 'य' अक्षर सर्व प्रथम है तो यह समझा गया कि यगण में आदि का अक्षर लघु तथा शेष दो अक्षर गुरु होते हैं। क्योंकि प्रत्येक गण में तीन तीन अक्षर ही माने जाते हैं।

— ० —

पिङ्गलाचार्य

पिङ्गलाचार्य पाणिनि के छोटे भाई थे जैसा कि षड्गुरुशिष्य ने स्वरचित 'वेदार्थदीपिका' में लिखा है :—

"तथा च सूच्यते हि भगवता पिङ्गलेन पाणिन्यनुजेन क्वचिन्नवकाश्चत्वार:" ।। (पिङ्गल सूत्र ३/३३)" इति।

पाणिनि ने भी घोषादिगण (६–२–८५) में पिङ्गल नाम का उल्लेख किया है। पतञ्जलि ने भी "पिङ्गलकाण्वस्य छात्रा पैङ्गलकाण्वा." (१–१–७३) में ऐसा ही लिखा है। कुछ लोग पतञ्जलि को ही पिङ्गल नाग कहते हैं। किन्तु यदि ऐसा होता तो भाष्यकार पिंगल का नाम भाष्य में क्यों देते ? अतः पतञ्जलि पिंगल के परवर्ती हैं। पतञ्जलि ही पिंगल नहीं थे। कुछ लोग पिंगल को नाग जाति का ब्राह्मण मानते हैं जैसी कि किंवदन्ती है कि 'एक बार पिंगल मुनि भूलोक की यात्रा कर रहे थे, अकस्मात् गरुड़ से उनकी भेंट हो गई। गरुड़ उन्हें खाना चाहता था परन्तु पिंगल ने कहा कि मैं छन्दःशास्त्र तुम्हें सिखा देना चाहता हूँ। यदि मुझे अभी आपने खा लिया तो यह विद्या लुप्त हो जायगी। तदनुसार पिंगल ने यकार का चतुरक्षर प्रस्तार गरुड़ जी को समझाना आरम्भ किया तथा उसका विस्तार इतना बढ़ाया कि वह पृथ्वीरूपी स्लेट पर न समाया और पिंगल जी पीछे सरकते सरकते पश्चिम समुद्र के किनारे पहुँच गये। वहाँ जाते ही

उन्होंने गरुड़ को अंगूठा दिखाया और "चतुर्भिर्यकारैर्भुजङ्गप्रयातम्" यह कहते हुए समुद्र में डुबकी लगा ली। गरुड़ जी पछताते ही रह गये। अस्तु वात्स्यायन मुनि प्रणीत कामसूत्रों की 'जयमंगला' नाम की व्याख्या में वानवासिका एक स्त्री का नाम बताया गया है। वह लिखते हैं कि "कोङ्कण विषयात् पूर्वेण वनवासविषयः तत्रभवा" अर्थात् कोङ्कण देश के पूर्व भाग में वनवास नाम का देश है वहाँ जो रहे—उस स्त्री को वानवासिका कहते हैं। तदनुसार हो सकता है कि समुद्र के किनारे पिंगल रहते हों तथा उन्हें वहाँ किसी जंगली पक्षी से जो गरुड़ जैसा हो, उनकी भेंट हो गई हो तथा उन्होंने साँप की तरह टेढ़ा मेढ़ा भाग कर उससे अपनी जान बचाई हो। पर पिंगल का जन्म स्थान वनवास देश नहीं माना जा सकता। हाँ ये रामभक्त होने से वहीं जा बसे हों यह माना जा सकता है। क्योंकि पाणिनि तक्ष-शिला के आस पास के किसी ग्राम के थे, पिंगल भी वहीं के होंगे। पंचतन्त्रकार विष्णु शर्मा ने भी मित्र सम्प्राप्ति के ३६वें श्लोक में पिंगल की मृत्यु का वर्णन किया है—

सिंहो व्याकरणस्य कर्त्तुरहरत्प्राणान् प्रियान् पाणिनेः,
मीमांसाकृतमुन्ममाथ सहसा हस्ती मुनि जैमिनिम्।
छन्दोज्ञाननिधिं जघान मकरो वेलातटे पिङ्गलं,
अज्ञानावृतचेतसामतिरुषां कोऽर्थस्तिरश्चां गुणैः॥

इस प्रकार पिङ्गल मुनि विक्रम शताब्दी से पूर्व पंचम शताब्दी में विद्यमान थे इसमें कोई सन्देह नहीं।

—:०:—

पिङ्गल छन्दः सूत्र (वैदिक प्रकरण)

(द्वितीयोऽध्यायः)

छन्दः ॥ १ ॥

यह अधिकार सूत्र है ॥ १ ॥

गायत्री ॥ २ ॥

इस सूत्र का बारहवें सूत्र तक अधिकार जाता है ॥ २ ॥

दैव्येकम् ॥ ३ ॥

यह दैवी गायत्री का लक्षण है। एक अक्षर वाले छन्द को दैवी गायत्री कहते हैं ॥ ३ ॥

—.०.—

'आसुरी गायत्री का लक्षण'

आसुरी पञ्चदश ॥ ४ ॥

पन्द्रह अक्षर वाले छन्द को आसुरी गायत्री कहते हैं ॥ ४ ॥

प्राजापत्याष्टौ ॥ ५ ॥

आठ अक्षर वाले छन्द को प्राजाप्रत्या गायत्री कहते हैं ॥ ५ ॥

यजुषां षट् ॥ ६ ॥

छः अक्षर वाले छन्द याजुषी गायत्री कहलाते है ॥ ६ ॥

साम्नां द्विः ॥ ७ ॥

बारह अक्षर वाले छन्द को साम्नी गायत्री कहते है ॥ ७ ॥

ऋचां त्रिः ॥ ८ ॥

अठारह अक्षर वाले छन्द को 'आर्ची गायत्री' कहते है ॥ ८ ॥

द्वौ द्वौ साम्नां वर्धेत ॥ ९ ॥

साम गायत्री में उत्तरोत्तर क्रमशः दो दो अङ्क की वृद्धि होती है (जैसे—बारह अक्षर की साम गायत्री होती है उसमें दो अङ्क बढ़ा देने से वह सामोष्णिक छन्द हो जाता है। इसी प्रकार सामानुष्टुबादि में भी समझना चाहिए) ॥ ९ ॥

त्रींस्त्रीनृचाम् ॥ १० ॥

आर्ची गायत्री में उत्तरोत्तर क्रमशः तीन तीन अङ्को की वृद्धि होती है (जैसे—अठारह अक्षर की आर्ची गायत्री होती है उसमें तीन अङ्क बढ़ा देने से वह आर्च्युष्णिक छन्द हो जाता है। इसी प्रकार आर्च्यनुष्टुबादि में भी समझना चाहिए) ॥ १० ॥

चतुरश्चतुरः प्राजापत्यायाः ॥ ११ ॥

प्राजापत्या गायत्री में उत्तरोत्तर क्रमशः चार चार अङ्क की वृद्धि होती है ॥ ११ ॥

एकैकं शेषे ॥ १२ ॥

जिस गायत्री में अङ्क की संख्या वृद्धि नहीं कही गयी है उसमें उत्तरोत्तर क्रमशः एक एक संख्या की वृद्धि होती है ॥ १२ ॥

जह्यादासुरी ॥ १३ ॥

आसुरी गायत्री में उत्तरोत्तर क्रमशः एक एक संख्या का ह्रास (अल्प) करना चाहिए ॥ १३ ॥

तान्युष्णिगनुष्टुब्बृहती पङ्क्तित्रिष्टुब्जगत्यः ॥ १४ ॥

वैदिक सात छन्दों में से सूत्रकार ने सर्व प्रथम 'गायत्री' (पि० सू० २/२) इस सूत्र से केवल गायत्री छन्द का ही उल्लेख किया है ॥१४॥

तिस्रस्तिस्रः सनाम्न्य एकैका ब्राह्मः ॥१५॥

याजुषी गायत्री, साम्नी गायत्री और आर्ची गायत्री यह तीनो

एकत्रित होकर छत्तीस अक्षर की ब्राह्मी गायत्री होती है एवं याजुषी उष्णिक्, साम्नी उष्णिक् और आर्ची उष्णिक् यह तीनो एकत्रित होकर बयालीस अक्षर का ब्राह्मी उष्णिक् छन्द होता है। इसी प्रकार अनुष्टुबादि में समझना चाहिए॥ १५ ॥

प्राग्यजुषामार्ष्य इति ॥ १६ ॥

प्राजापत्या गायत्री, आसुरी गायत्री और दैवी गायत्री यह तीनों एकत्रित होकर चौबीस अक्षर की आर्षी गायत्री होती है एवं प्राजापत्या उष्णिक्, आसुरी उष्णिक् और दैवी उष्णिक् यह तीनो एकत्रित होकर अठ्ठाइस अक्षर का आर्षी उष्णिक् छन्द होता है। इस प्रकार अनुष्टुबादि में भी समझना चाहिए॥ १६ ॥

— ० —

(पिङ्गले तृतीयोऽध्यायः)

पादः ॥ १ ॥ यह अधिकार सूत्र है।

इयादिपूरणः ॥२ ॥

जिस छन्द में पाद के अक्षरों की संख्या पूर्ति न होती हो वहाँ पर 'इय्' या 'उव्' इत्यादि अक्षर लगा कर अक्षर पूर्ति करनी चाहिए। जैसे वरेण्यम्' में 'वरेणियम्' इस प्रकार 'इय्' लगा कर वर्ण पूर्ति करनी पड़ती है। कात्यायन ने भी लिखा है कि "पाद पूरणार्थन्तु क्षैप्रसंयोगैकाक्षरीभावान् व्यूहेत" अर्थात् पाद पूर्ति के लिये क्षैप्र (यण् सन्धि) जैसे 'वज्रिन्' का वजरिन। सवर्ण दीर्घ व्यूह जैसे 'अस्यास्ते' का अस्य आसते। गुणव्यूह जैसे 'उपेन्द्र' का उप इन्द्र। वृद्धिव्यूह जैसे 'ब्रह्मैतु' में 'ब्रह्मा एतु' यह भेद कर लिया जाता है। शौनकाचार्य ने भी लिखा है कि :—

व्यूहेदेकाक्षरीभावान् पादेपूनेषु सम्पदे।
क्षैप्रवर्णांश्च संयोगान् व्यवेयात् सदृशैः स्वरैः॥

"व्यूह" शब्द का अर्थ है पृथक् पृथक् करना ।

गायत्र्या वसवः ॥ ३ ॥

गायत्री के एक चरण में आठ आठ अक्षर होते हैं पर आठ आठ अक्षरों के चरण कुल तीन ही होते हैं क्योंकि इसमें कुल २४ ही अक्षर होते हैं ।

जगत्या आदित्याः ॥ ४ ॥

जगती छन्द में एक पाद बारह अक्षरों का होता है ।

विराजो दिशः ॥ ५ ॥

विराट् का एक पाद दस अक्षरों का होता है । अत. 'वैराज पाद' कहने से दस अक्षर लिये जाते हैं ।

त्रिष्टुपो रुद्राः ॥ ६ ॥

त्रिष्टुप् छन्द के एक पाद मे ग्यारह अक्षर होते हैं ।

आद्यं चतुष्पाद् ऋतुभिः ॥ ८ ॥

आद्य अर्थात् आर्षी गायत्री में चार चरण होते हैं तथा प्रत्येक चरण में छः छः अक्षर होते हैं ।

क्वचित् त्रिपाद् ऋषिभिः ॥ ९ ॥

ऋषि अर्थात् सात सात अक्षरों के तीन चरणों वाली भी गायत्री होती है । उसे 'पाद निचृत्' कहते हैं ।

उष्णिग् गायत्रौ जागतश्च ॥ १८ ॥

जिस छन्द के दो चरण ८–८ अक्षरों के हों और एक पाद बारह अक्षरों का हो उस तीन पद वाले छन्द को उष्णिक् कहते हैं ।

ककुम्मध्ये चेदन्त्यः ॥ १९ ॥

यदि मध्य का पाद बारह बारह अक्षर का हो और आदि तथा अन्त के चरण आठ आठ अक्षरों के हो तो उस 'उष्णिक्' को 'ककुप्' कहते हैं। इसी प्रकार पुर उष्णिक् और परोष्णिक् छन्द भी थोड़े ही भेद से बन जाते हैं।

चतुष्पाद् ऋषिभिः ॥ २२ ॥

सात सात अक्षरों वाले यदि चार चरण हों तो 'उष्णिक्' ही छन्द होता है।

अनुष्टुब्गायत्रैः ॥ २३ ॥

आठ आठ अक्षरों के यदि चार चरण हो तो 'अनुष्टुप्' छन्द होता है।

आठ अक्षर का एक पाद और बारह बारह अक्षरो के दो पाद हों तो वह भी एक प्रकार का अनुष्टुप् छन्द ही माना जाता है।

बृहतीजागतस्त्रयश्च गायत्राः ॥ २६ ॥

जिसके तीन पाद आठ आठ अक्षरों के तथा एक पाद बारह अक्षरो का हो तो वह बृहती छन्द कहलाता है।

पश्चा पूर्वश्चेतृतीयः ॥ २७ ॥

यदि तृतीय पाद बारह अक्षरों का, पहिला, दूसरा और चौथा पाद आठ आठ अक्षरों के हों तो 'पश्चा बृहती, छन्द होता है।

न्यङ्कुसारिणी द्वितीयः ॥ २८ ॥

यदि बारह अक्षरों का द्वितीय पाद हो, एक, तीन, चार पाद आठ आठ अक्षरों के हों तो 'न्यङ्कुसारिणी' छन्द होता है।

पंक्ति जागती गायत्रौ च ॥ ३७ ॥

यदि दो चरण बारह बारह अक्षरो के तथा दो आठ आठ अक्षरो के हों तो पंक्ति छन्द होता है।

प्रस्तारपंक्ति पुरस्तः ॥ ४० ॥

यदि शुरू से दो पाद बारह बारह के तथा शेष दो आठ आठ अक्षरों के हों तो 'प्रस्तारपंक्ति' छन्द होता है। इसी प्रकार थोड़े हेर फेर से 'आस्तारपंक्ति', विष्टारपंक्ति', संस्तारपंक्ति' आदि छन्द होते है।

एकेन त्रिष्टुब् ज्योतिष्मती ॥ ५० ॥

यदि ग्यारह अक्षरों का एक पाद हो तथा आठ आठ अक्षरों के चार पाद हों तो वह पाँच पाद वाला 'ज्योतिष्मती त्रिष्टुप्' नाम का छन्द होता है।

तथा जगती ॥ ५१ ॥

यदि बारह अक्षरों का एक चरण हो तथा ८–८ अक्षरों के चार चरण हों तो पाँच पादों वाला वह छन्द 'ज्योतिष्मती जगती' नामक कहा जाता है। इसके 'पुरस्ताज्ज्योतिः', 'मध्येज्योतिः', 'उपरिष्टाज्ज्योतिः' नामक अन्य भी भेद होते हैं।

(विशेष छन्द)

एकस्मिन्पञ्चके छन्दः शंकुमती ॥ ५५ ॥

जब ५ अक्षरों का एक चरण हो, तथा छः अक्षरों के शेष तीन चरण हो तो वह 'शंकुमती गायत्री' नामक छन्द होता है।

षट्के ककुद्मती ॥ ५६ ॥

यदि उन सारे लक्षणों के होने पर जो छन्द बन रहा हो उसमें एक छः अक्षरों वाला पाद और बढ़ा दिया जाय तो वे सारे ही 'ककुद्मती' नाम से पुकारे जाते हैं।

त्रिपादणिष्ठमध्या पिपीलकमध्या ॥ ५७ ॥

यदि तीन पाद के छन्द का मध्यम पाद कम अक्षरों का हो तथा आदि और अन्त्य का अधिक अक्षरों वाला हो तो वह छन्द 'पिपीलक

मध्या' नामक कहा जाता है तथा यदि आदि और अन्त्य के पाद क्रम से कम अक्षरों वाले हों और बीच का अधिक अक्षरों वाला हो तो 'यवमध्या' छन्द होता है।

—: ० :—

छन्दों के देवता

अग्निः सविता सोमो बृहस्पतिर्मित्रावरुणाविन्द्रो विश्वे देवा देवताः ॥ ६३ ॥

यदि छन्दः कौन सा है— यह पता न चल रहा हो, तो उस मन्त्र में अग्नि के देवता होने पर गायत्री छन्द मानना चाहिये। सविता के देवता होने पर उष्णिक् छन्द मानना चाहिए।

छन्दों के नाम और देवता निम्नलिखित प्रकार से समझने चाहिएँ :—

छन्दः संज्ञा	ऋषि	देवता	स्वर	वर्ण (रंग)
१—गायत्री	आग्निवेश्य	अग्नि	षड्ज (स)	सित
२—उष्णिक्	काश्यप	सविता	ऋषभ (रे)	सारङ्ग
३—अनुष्टुप्	गौतम	सोम	गान्धार (ग)	पिङ्ग
४—बृहती	आङ्गिरस	बृहस्पति	मध्यम (म)	कृष्ण
५—पंक्ति	भार्गव	मित्रावरुण	पञ्चम (प)	नील
६—त्रिष्टुप्	कौशिक	इन्द्र	धैवत (ध)	लोहित
७—जगती	वशिष्ठ	विश्वेदेव	निषाद 'अम्बष्ठ' (नि)	गौर

अर्थात् देवता के जान लेने पर उससे छन्द का अनुमान कर लेना चाहिये।

हमने इस तृतीय अध्याय में से अपने उपयोग की सभी बातें लेली हैं अतएव यहाँ छन्द-सूत्रों की क्रम संख्या में उलटपुलट प्रतीत होगी। क्योंकि हमने एक तरफ से सब सूत्र नहीं लिये हैं।

चतुर्थ अध्याय में एक सौ चार अक्षरों वाले छन्द को "उत्कृति"

कहते हैं ऐसी बातें व छन्दः संज्ञा-विचार ही मुख्यतया बतलाया गया है। इसी प्रकार 'अभिवृति', 'संकृति', 'यिकृति', 'आकृति' इत्यादि छन्द भी होते हैं।

—: ० .—

वैदिक छन्दोबोधक चित्र

	छन्द	गायत्री	उष्णिक्	अनुष्टुप्	बृहती	पंक्तिः	त्रिष्टुप्	जगती	क्रमशो वृद्धिह्रासौ
१	आर्षी	२४	२८	३२	३६	४०	४	४८	४ वृद्धिः
२	देवी	१	२	३	४	५	६	७	१ वृद्धिः
३	आसुरी	१५	१४	१३	१२	११	१०	९	१ ह्रासः
४	प्राजापत्य	८	१२	१६	२०	२४	२८	३२	४ वृद्धिः
५	याजुषी	६	७	८	९	१०	११	१२	१ वृद्धिः
६	साम्नी	१२	१४	१६	१८	२०	२२	२४	२ वृद्धिः
७	आर्ची	१८	२१	२४	२७	३०	३३	३६	३ वृद्धिः
८	ब्राह्मी	३६	४२	४८	५४	६०	६६	७२	६ वृद्धिः

—: ० :—

आभार प्रदर्शन

पुस्तक के लेखन में प्रिय शीलवती एम० ए०, एल० टी० तथा प्रिय श्री 'सुधाकर शुक्ल शास्त्री, एम० ए० ने जो सहयोग दिया है तदर्थ उन्हें धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता। पुस्तक के प्रकाशक श्री पण्डित रतिराम जी शास्त्री ने भी जो आर्थिक लाभ को ध्यान में न रखकर 'छात्रजनहिताय' इसका प्रकाशन किया है तदर्थ वे भूरि भूरि धन्यवाद के पात्र हैं।

अन्त मे यही निवेदन है कि—

यद्यस्ति वस्तु किमपीह तथानवद्यम्,
द्योतेत तत् स्वमुयदेष्यति चानुरागः।
नोचेत् कृतं कृतकवाग्भिरलं प्रपञ्चैः,
निर्दोहधेनुमहिमा नहि किङ्किणीभिः॥
हरिणा गुरुणा प्रयत्नभूम्ना,
विहितेयम् 'सरला' ऋगर्थवृत्तिः।
श्रमएव फलेग्रहिस्तदानीम्,
श्रमहानिर्यदि छात्रपण्डितानाम्॥ इति॥

—विद्वदाश्रवस्य लेखकस्य।

—:०:—

'द्वितीय संस्करण की भूमिका'

जैसी आशा थी, तदनुसार गुणग्राहक महानुभावों के सहयोग से प्रस्तुत संग्रह ने पर्याप्त प्रचार पाया। डा० श्री सुधीरकुमार गुप्त एम. ए. पी-एच. डी. ने कई सुझाव भी भेजे एवं छात्र वर्ग ने यह भी सुझाया कि इसमें संस्कृत व्याख्या और व्याकरण भी बढ़ा देना चाहिये। उन सब त्रुटियों की पूर्ति इस संस्करण में यथा-संभव करदी गई है। इसके लेखन में जो साहित्याचार्य प्रिय राममणि त्रिपाठी एम. ए. ने सहयोग दिया है वह चिरस्मरणीय रहेगा।

'बसन्त पञ्चमी'

१-२-६० हरिदत्त शास्त्री

❀ देवता-परिचय ❀

१—अग्नि

अग्नि ऋग्वेद के २०० मत्रों में वर्णित है और विस्तार की दृष्टि से दूसरे नम्बर का है। इसका सम्बन्ध विशेषतया यज्ञ की अग्नि से है, अतएव अग्नि को Butter backed घृतपृष्ठ, Flame haird शोचिष केश, touny beard रक्त श्मश्रु Sharp jaws तीक्ष्ण दंष्ट्र और golden teeth रुक्मदन्त पुरुष माना गया है। इसकी जिह्वा के द्वारा देवता हवि भक्षण करते हैं। दीप्यमान मूर्धा से, ज्वालाओं से यह सब दिशाओं में विचरण करता है। इसकी उपमा अनेक पशुओं से दी गई है। शब्द करते हुये (डकराते हुये) बैल से इसका अधिक सादृश्य बतलाया है। इसके सींग भी हैं जिनको यह तेज करता है। उत्पन्न हुआ अग्नि बालवत्स के समान है। यह अग्नि देवताओं के एक वाहन (घोड़े) के समान है जो यज्ञ को देवताओं तक पहुँचाता है। आकाश में उड़ने वाले गरुड़ या श्येन के सदृश तथा जल में रहने वाले हंस के समान भी इसे बतलाया गया है। यह लकड़ी को उसी प्रकार आक्रान्त करता है जैसे पक्षी विटंक पर बैठता है, लकड़ी या घी इसका भोजन है, पिघला हुआ मक्खन इसका पेय है, तथा यह दिन में तीन बार खाना खाता है। यह देवताओं का मुख है। इसकी लपटें चम्मच हैं। इससे हव्य को स्वयं भोजन करने के लिए प्रार्थना की जाती है। इसे सोमरस पान के लिए बुलाया जाता है। इसके ज्योतिष्मान् शरीर का अधिक वर्णन दिखाई पड़ता है। यह सूर्य के समान चमकता है। सूर्य की किरणों और बिजली के समान इसका प्रकाश है। यह रात्रि में दीप्त होता है और अन्धकार को भगा देता है। इसका रास्ता काला है। जब यह जगलों को जलाता है तो उन्हें दाढी को नाई की तरह साफ

कर देता है, इसकी लपटों की ध्वनि समुद्र की लहरों की गर्जन के समान है। इसका लाल रंग का धुआँ आकाश तक उठता है और ऐसा दिखाई पड़ता है जैसे आकाश को थामने के लिये खम्बा हो। इसे धूम-केतु या Smoke Bannered भी कहा गया है। इसका रथ सोने के समान चमकता हुआ दो या अधिक लाल घोड़ों के द्वारा खेंचा जाता है।

जिस रथ पर यह देवताओं को बैठा कर यज्ञभूमि में लाता है वह द्युपुत्र या द्यौष् पिता है (child of heaven)। यह जल-पुत्र (वड़वा-नल) भी कहा गया है। इन्द्र और अग्नि को जुड़वाँ भाई भी (twin-brother) बताया गया है। पौराणिक वर्णन के अनुसार अग्नि के अनेक रूप हैं और अनेक स्थान हैं। यह दो अरणियों (Kindling Sticks) से पैदा होता है जो उसके मातृ स्थानीय हैं। सूखी समिधाओं से, शुष्क काष्ठों से अग्नि का जन्म होता है और उत्पन्न होते ही यह अपने माता पिता का वध कर देता है। अग्नि का जन्म दश कन्याओं से माना जाता है अर्थात् वे दश कन्यायें प्रत्येक मनुष्य की दश अंगुलियाँ हैं। इसे "सहस् पुत्र" भी कहा जाता है क्योंकि जब अग्नि जलाई जाती है तब मनुष्य को जोर लगाना पड़ता है। प्रातःकाल के समय अग्नि का बालक रूप होता है। अग्नि जल का गर्भ रूप (ambrio) है जो जल में भी उत्पन्न होता है। जब वह आकाश में उत्पन्न हुआ तब मातरिश्वा (वायु) के द्वारा पृथ्वी पर आया। सूर्य भी अग्नि का ही एक रूप है। अग्नि के कहीं कहीं दो जन्म बताए गए हैं, द्युलोक और पृथ्वी लोक। अग्नि का सम्बन्ध मानवीय जीवन से अधिक है। इसीलिये अग्नि को गृहपति या अतिथि कहते हैं। यह प्रायः उपासकों के पिता, भाई और पुत्र के रूप में भी बताया गया है। वह देवताओं का दूत है और ऋत्विज भी कहलाता है। इसे पुरोहित, होता, अध्वर्यु (यज्ञ करने वाला) या ब्रह्मा भी माना जाता है। इसका ऋत्विजपन (priesthood) एक विशेष रूप है जिस प्रकार इन्द्र का योद्धा होना एक विशेष रूप है। यह यज्ञ के प्रत्येक रहस्य को जानता है अतएव

इसका नाम जातवेद भी है। इसके महत्त्व का वर्णन अन्य देवताओं से बढ़ कर है, इसकी सार्वभौम शक्तियाँ अनेक बार प्रशंसित की गई हैं। हव्य-वाहन (Who conveys the offering) नाम का अग्नि क्रव्याद नामक (Corps devouring) अग्नि से भिन्न है। अग्नि यह सन्ना इन्डोयोरोपियन है, लैटिन में इसे इग्नि और सालावोनिक में ओग्नि कहते हैं। सम्भव है कि यह शब्द agile फुर्तीला गुण रखने के कारण बना हो।

जिस प्रकार ऋतु और युद्ध कर्म इन्द्र के आधीन हैं उसी प्रकार आर्यों के सारे गृहकृत्य अग्नि के द्वारा होते हैं। इन्द्र जल का प्रदाता है और अग्नि तेज का। प्राकृतिक दृश्य स्पष्टतया अग्नि को पुरुषाकारता (Personification) प्रदान नहीं करता। अग्नि का हँसना मनुष्यों के समान वर्णित है। अग्नि को सहस्र शृंग, यविष्ठय (ever young) मेध्य (ever pure), कविशस्त (Praised by the Wise), दमुना (intiment house friend) भी कहते हैं। अग्नि काष्ठों से उत्पन्न होता है, जल से उत्पन्न होता है और द्युलोक में उत्पन्न होता है। इस प्रकार अग्नि के तीन जन्म माने जाते हैं। दूसरे जन्मके कारण ही अग्नि का नाम 'अपांनपात्' (Son of the water) पड़ा है। अवेस्ता में इसे 'अपांनेपो' कहते हैं। प्रातःकाल उषा के आते ही अग्नि का जन्म होता है और यह वैसे ही जमीन से उठता है जैसे पक्षी वृक्षों से। अग्नि घी के द्वारा हव्य भक्षण करता है अतएव घृतजिह्व कहलाता है। इसके लिए वेदी माता के वक्षःस्थल के समान है जहाँ यह बढ़ता है वहाँ यह हव्यवाहन बनता हुआ एक दूत अर्थात् messenger के समान है। यह अग्नि वैश्वानर और नाराशंस इन दो नामों वाला भी कहा जाता है। क्योंकि इसे सब मनुष्य चाहते हैं और सब ही इसकी स्तुति करते हैं। यह जहाँ उत्पन्न होता है वहीं नष्ट होता है। अतएव अग्नि को पितृहन्ता भी कहते हैं। इस प्रकार ऋग्वेद के २०० मंत्रों में अग्नि का भिन्न भिन्न प्रकार से वर्णन किया गया है।

2—Marutas. (मरुत्)

मरुत् देवताओं के एक समुदाय का नाम है जिनका इन्द्र, अग्नि और पूषा के साथ वर्णन किया गया है। इनका वर्णन सदैव बहुवचन में होता है। ये मरुत् रुद्र के पुत्र और पृश्नि के भी पुत्र रूप मे वर्णित है। पृश्नि एक गौ का नाम है। आगे चल कर मरुतों को वायु का पुत्र भी बतलाया गया है। वे मरुत् सब भाई हैं और उम्र में एक से है। एक ही जगह से उत्पन्न हुये और एक ही घर मे रहते हैं। ये पृथ्वी पर बढ़े और आकाश में पले। 'रोदसी' का वर्णन इनके सम्बन्ध में किया गया है। वह इनके रथ मे रहती है तथा इनकी पत्नी सी प्रतीत होती है। मरुतों की सूक्ष्म बुद्धि का वर्णन स्थान स्थान पर मिलता है। ये शरीर से सुनहरे या लाल हैं और अग्नि के समान दीप्तिशाली है। इनकी तलवारें बिजली की तरह चमकती हैं और इनके भाले lighting speared को 'ऋष्टि विद्युत्' विशेषण दिया जाता है। इनका सुनहला कुल्हाड़ा है। ये धनुष और बाण को भी उपयोग में लाते हैं पर विशेषतया धनुष बाण इनके पिता रुद्र का अस्त्र है। ये माला पहनते हैं, सुनहला चोगा, भूषण और टोप (helmets) पहनते हैं। केयूर और कड़े इनके आभूषण हैं। इनके रथ बिजली की तरह चमकते हैं जिनमें घोड़ियां जोती जाती हैं जो मटियाली और चितकबरी होती हैं। उन पर धूल नहीं जमती, वे बूढ़ी नहीं होती और शेरो जैसी भयंकर होती हैं। ये पहाड़ो को हिला देते हैं। द्युलोक और पृथ्वीलोक उनके भय से कॉपते हैं। जंगली हाथियों के समान ये पेड़ों को गिरा देते हैं और उनका विध्वंस कर देते हैं। इनका मुख्य कार्य बादल से वर्षा गिराना है। ये सूर्य को ढक देते है। ये पहाड़ से झरनों को प्रवाहित करते है। इनकी वर्षा दूध, घी या शहद की वर्षा है। ये गर्मी पसन्द नहीं करते और सूर्य के लिये मार्ग बनाते है। कहीं कहीं वे गायक रूप में भी वर्णित हैं। जब इन्द्र दैत्यों को मारता है तब ये इन्द्र की प्रशंसा में गान करते हैं और सोम रस निकालते है।

इनका बिजली की कड़क के साथ सम्बन्ध है। इनका इन्द्र के साथ भी सम्बन्ध है क्योंकि ये वृत्र के साथ युद्ध करने में उसकी सहायता करते हैं। कभी कभी वे स्वयं दैत्यों का हनन करते हैं और वृत्र को मार कर गौ का उद्धार करते हैं।

मरुतगण अपने भक्तों से ओले, वर्षा, बिजली का प्रहार दूर करते हैं और उनकी गौओं की रक्षा करते हैं। वे अपने उपासकों को रोग से मुक्त करते हैं। इनकी रोगनिवारक औषधी एकमात्र जल है। मरुत् कही आँधी तथा कही जलप्रलय का भी देवता है।

३—विष्णु देवता

ऋग्वेद के पहले मण्डल के १५४वें सूक्त में विष्णु देवता का वर्णन मिलता है। सर्वानुक्रमणी के अनुसार ६ ऋचायें विष्णु की स्तुति में प्रयुक्त हुई हैं। विष्णु की प्रसिद्धि 'त्रिविक्रम' के नाम से है। पुराणों मे 'वलिदैत्य' को छल से पराजित करने की कथा इस त्रिविक्रम के आधार पर ही कल्पित की गई है। तीन लोकों को व्याप्त करने वाला देवता ही 'विष्णु' कहलाता है। व्याकरण की रीति से 'विष्णु' शब्द इसी अर्थ का द्योतक है। वेद में 'विष्णु' शब्द सूर्य वाचक भी है। सूर्य अपनी किरणों को द्युलोक, पृथ्वी-लोक और अन्तरिक्ष-लोक में फैलाता है। यही उसका त्रिधा विक्रम है। सूर्य के उदित होते ही जरायुज, अण्डुज और उद्भिज तीनों प्रकार के प्राणि चहचहा उठते हैं। यही विष्णु का उरुगायत्र है। 'उरुगाय' शब्द का अर्थ है—जिसकी अनेक प्राणि स्तुति करे या जिसकी बड़ी विशाल कीर्ति हो, या जो अनेक देशो में गमन करे या जिसकी सामर्थ्य को देखकर भयभीत होते हुए शत्रु दल क्रन्दन कर उठे। 'उरुगाय' शब्द ऋग्वेद में १२१ बार आया है और विष्णु के लिये यह बहुधा प्रयुक्त होता है। यद्यपि प्राणियों मे एक "स्वेदज" भी भेद है—उसकी यहाँ गणना

नहीं की गई है—क्योंकि वह क्षुद्रतम है। विष्णु संसार का रक्षक प्रसिद्ध है और रक्षा करने के लिये शक्ति की बड़ी आवश्यकता होती है। पाशविक शक्ति की अपेक्षा बौद्धिक शक्ति प्रबल है। इसी-लिये विष्णु सब देवताओं में चतुरतम प्रसिद्ध है। शिव और ब्रह्मा पर जब आपत्ति आती है—वहां पर भी विष्णु रक्षा काम का करते है। कोष में 'विष्णु' को इन्द्र का छोटा भाई कहा गया है। इन्द्र का नाम वृषा और विष्णु का ही नामान्तर 'उपेन्द्र' है। आसुरी शक्तियां जब इन्द्र (आत्मा) को घेर लेती हैं, तब व्यापक परमात्मा अपनी शक्ति से इन्द्र की रक्षा करता है यही 'वृष्णेः' इस विशेषण का तत्व है। विष्णु के तीनों पदक्षेप (कदम) आत्मशक्ति से परिपूर्ण हैं। 'स्वधा' शब्द का अर्थ 'अपना स्थान' है, अर्थात् विष्णु 'आत्माराम' हैं, उसका पदक्षेप ही किसी अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति के लिये नहीं, किन्तु आत्मतृप्ति और आत्मरति के लिये है। अर्थात् उन तीन चरणो मे केवल आत्मानन्द है—और एक एक चरण में द्युलोक, अन्तरिक्ष-लोक और पृथ्वी-लोक समाये हुए है। विष्णु के सेवकों के लिये आनन्द का स्रोत प्रवाहित होता है। यज्ञ में यज्ञादि के द्वारा परोपकार मे निरत व्यक्ति उस आनन्द के स्रोत में गोता लगाते है। इस आनन्द के स्रोत का ही वर्णन अनेक सींगों वाली गायों के रूप में किया गया है। ये गायें इन्द्रियां है—उनके सींग वासनायें है। ये वासनायें जब अन्तर्मुख होती है—तब आनन्द का स्रोत उद्भिन्न हो जाता है। किसी किसी मन्त्र में विष्णु शब्द का अर्थ 'यम' और 'वायु' भी किया जाता है—जिसका स्पष्ट आशय है कि विष्णु शब्द यौगिक अर्थ को लेकर उन उन अर्थों में व्यवहृत हुआ है। विष्णु के महत्व प्रदर्शन के लिये हिरण्यकशिपु के पुत्र प्रह्लाद के द्वारा उपासना का वर्णन भागवत में आता है। वहां पर विष्णु के निवास-स्थान का नाम 'गोलोक' है। गोलोक और गोकुल दोनों पर्यायवाची हैं। तदनुसार 'स उ हि एव साधुकर्म कारयति यं उन्नि नीषते। स उ ही एव असाधुकर्म कारयति यं अधोनिनिषते"। इस

बृहदारण्यक उपनिषद् के वाक्य के अनुसार विष्णु वह शक्ति है—जो इन्द्रियों और आत्मा को उनके कर्मानुसार नियुक्त करती है। इस प्रकार विष्णु को हम शरीर का अधिष्ठातृ देव कह सकते हैं।

विष्णु शब्द सूर्य का भी वाचक है। विष्णु ने ऋग्वेद में मुख्य स्थान नहीं ग्रहण किया केवल पांच छः सूक्तों में ही इसका वर्णन मिलता है। (Anthropomorphic अन्तः पुमर्पित, अन्तः = अन्दर पुमान् के लिये अर्पित) अर्थात् मनुष्य के समान जो विष्णु के गुण हैं उनमे से एक यह है कि वह युवा है। पदन्यास करता है (वामन अवतार) और बालक से अधिक ऊंचाई वाला नही है। उसके लम्बे कदम Three Steps जिनके कारण उरुगाय या उरुक्रम कहलाता है, प्रसिद्ध है। उसके दो क्रम मनुष्यों द्वारा ज्ञात हो सकते हैं किन्तु तृतीय क्रम मानव-दृष्टि से अगम्य है। स्वर्ग या विष्णु-लोक उसका निवास स्थान था जहां पर सूर्यादि ग्रह गति करते हैं। उसके दस घोड़े हैं अर्थात् तीन महीने का एक ऋतु है और उनके चार हैं अर्थात् वर्ष मे चार मुख्य ऋतुएं होती हैं जो प्रत्येक तीन मास वा ९० दिन की होती है, उनके बनाने वाला सूर्य है, इस प्रकार विष्णु सूर्य की क्रियाओं का एकमूर्त रूप है। उसके तीन पैर १२ महीने के तीन तीन त्रिक को बताता है अर्थात् तीन त्रिक एक वर्ष को बनाता है। इस वर्ष भर को व्याप्त करने वाला विष्णु या सूर्य है, दूसरा विष्णु का गुण इन्द्र की मैत्री है जिसके साथ वह वृत्रासुर के बध मे सहयोग देता है। विष्णु के नाम से आने वाली ऋचाओं मे इन्द्र ही एकमात्र देवता है जो उससे सयुक्त है। केवल पहले मण्डल की ६ सूक्त की ६९वीं ऋचा ऐसी है जो दोनो देवताओ को अर्थात् विष्णु और इन्द्र को एक साथ सम्बोधित करती है। वृत्र-वध के कारण विष्णु का सम्बन्ध मरुत्-गण से भी होता है जैसाकि १–५–८७ में कहा गया है। विष्णु शब्द का अर्थ क्रियाशील है। यह क्रियाशीलता सूर्य आदि में प्रचुर मात्रा मे पाई जाती है अतः वही असली विष्णु है।

४—द्यावापृथिवी

द्युलोक और पृथ्वी लोक को एक युगल देवता के रूप में ऋग्वेद में बार २ कहा गया है। वेद में द्यौः नाम की अपेक्षा द्यावापृथिवी का नाम अधिक आता है। इसे 'रोदसी' के नाम से भी पुकारते हैं और यह शब्द ऋग्वेद में १०० बार आया है। द्यावापृथिवी सब प्राणियों के जनक और रक्षक हैं। अनेक मंत्रों में ये भिन्न भिन्न देवताओं के उत्पन्न करने वाले भी कहे गए हैं। ये एक महान् वृषभ और अनेक रंगों वाली एक गौ के उत्पादक हैं। ये कभी वृद्ध नहीं होते। ये विस्तृत और लम्बे चौड़े हैं। ये भोजन और धन देते हैं। ये यज्ञ और स्थान के देने वाले हैं। ये कभी कभी आचार के नियमों के पालन करने वाले भी कहे जाते हैं। ये बुद्धिमान् हैं और शरीर के पोषक तत्त्व को बढ़ाते हैं। माता पिता के समान वे भूमण्डल के रक्षक हैं। यह दोनों देवता प्रायः सम्बद्ध रहते हैं। दोनों का एक दूसरे पर समान अधिकार है। यह दोनों अन्य युगलो की अपेक्षा अधिक अधिकार रखते हैं

५—इन्द्र

इन्द्र एक प्रिय राष्ट्रीय देवता है। शारीरिक दृष्टि से अत्यधिक Anthropomorphic है। इन्द्र के विषय में काल्पनिक पौराणिक गाथायें अधिक कही गई हैं।

आरम्भ में वह विद्युत् का देवता माना जाता था। जो वर्षा के रोकने वाले दैत्यों का संहार करता था और अन्धकार को दूर करता था। इन्द्र को युद्ध का भी देवता कहा गया है। इन्द्र आर्यों की रक्षा करता है, जो उनके निर्सग शत्रु हैं उन्हें मारता है। उसके सोमपानादि कार्य ऐसे हैं जिनसे वह मनुष्य जैसा लगता है। उसके मनुष्य की तरह

दाढी और जबड़ा (jaws) भी है । सोमपान में उसके पेट की शक्ति बहुत बड़ी बताई गई हैं। उसकी भुजायें वज्र को घुमाने वाली और बिजली को गिराने वाली मानी गई हैं। इस वज्र को इन्द्र के लिये त्वष्टा ने बनाया था जो पक्के मकानो में रहता था। उसे अंकुशधारी भी कहा गया है। उसका सुनहला रथ है और उसके हरे घोड़े हैं। वह रथ पर चढ़ा हुआ ही लडता है। उसके रथ के बनाने वाले ऋभु हैं जो देवताओं के शिल्पी हैं। वह तीन सोम भरी झीलों को पी गया था ऐसा वर्णन दसवें मंडल के ११९वें सूक्त में आता है। इन्द्र का पिता द्यौ माना गया है। अग्नि उसका सगा भाई है, पूषा भी उसका भाई है। इन्द्राणी नाम की उसकी स्त्री है। मरुतगण उसके मुख्य सहायक हैं जो युद्ध मे उसकी सहायता करते हैं इसलिये इन्द्र का नाम मरुत्वान् है। इसी प्रकार शक्तिशाली होने के कारण उसे शक्र या शची-पति भी कहते हैं क्योंकि शची नाम शक्ति का है। कर्मों की शक्ति रखने के कारण ही उसे शतक्रतु कहा गया है। वह सोमपान से आनन्दित हो और मरुतगण की सहायता प्राप्त कर वृत्रासुर पर प्रहार करता है, जो वृत्रासुर वर्षा को रोकता है। जब इन्द्र और वृत्रासुर का युद्ध होता है तब द्युलोक और पृथ्वी लोक काँप उठता है। इन्द्र और वृत्र के युद्ध में पहाड़ नष्ट हो जाते हैं और जलों के झरने बह पड़ते है जो गौओं के समान बाड़े में बन्द थे। वेद में विद्युत् और मेघ गर्जन को वज्र शब्द दिया गया है, बादलों को पहाड बतलाया गया है और वर्षा को नदियों के बहने का रूप दिया गया है। बादल रूपी पहाड़ो में दैत्य निवास करते हैं जहाँ से इन्द्र उन्हें गिरा देता है। जलों का कहीं कही गौ के रूप में वर्णन किया गया है और कहीं झरना (Spring, उत्स), कहीं कबन्ध (cask) कहीं जल का बर्तन (pale), कोष, घड़ा के रूप में वर्णन किया गया है। बादल १०० की संख्या में दैत्यों के निवास स्थान बन कर इन्द्र पर हमला करने के लिये आते है

और इन्द्र उन्हें मार कर पुरभित् नाम धारण करता है। इन्द्र ने हिलते हुए पहाड़ को स्थिर करके रक्षा की और संसार की क्रियायें यथावत् चलाईं। उसी ने पृथ्वी को चटाई की तरह चौड़ा किया और अदृश्य पदार्थों को दृश्य रूप दिया। इन्द्र अपने उपासकों का रक्षक, सहायक और मित्र कहा गया है क्योंकि वह उन्हें धनधान्य से परिपूर्ण करता है इसलिये उसे मघवा कहा जाता है। इन्द्र को उषा के रथ को हिलाने वाला अर्थात् सूर्य को प्रेरणा देने वाला बतलाया गया है। वह सूर्य के घोड़ों को रोक लेता है और सोम को जीत लेता है। पौराणिक गाथाओं मे आता है कि इन्द्र को एक बार कैद किया गया था जिसमे सरमा (देवशुनी) की मदद ली गई थी जब कि पणियों ने गौओं को गुफाओं मे बन्द कर दिया था। इन्द्र का सुदास नाम के राजा से किये गये युद्ध का वर्णन भी मिलता है। सारांश यह है कि इन्द्र कार्य करने मे शक्तिशाली दुर्धष है और अथक लड़ने वाला है। मनुष्यों की भलाई करने, दान देने मे बड़ा ही उदार है। वह साथ ही साथ सोमपान करने में शराबखोरों से बढ़ कर और अपने त्वष्टा के मारने मे प्रसिद्ध है। इन्द्र उस वरुण की अपेक्षा अनेक दृष्टि से बढ़ कर है, जो वरुण ससार का एक बड़ा राजा है और संसार को एक नियम मे चलाता है तथा धर्म, चरित्र के आदर्शों को स्थापित करता है।

वैदिक गाथाओं में इन्द्र और वृत्र दोनों ही बड़े प्रबल शत्रु कहे गए हैं तथा इन्द्र का अन्य देवताओं के साथ सम्बन्ध किसी न किसी रूप मे वेद में भी पाया जाता है। यही कारण है कि १०२८ सूक्तों में इन्द्र ही वर्णित है। इसके अतिरिक्त कुछ विशेष गुणों का वर्णन करने के लिए देवताओं का भी स्वरूप वैसा ही विचित्र चित्रित किया जाता है। अतएव देवताओं को कुछ लोग पुरुषाकृति वाले मानते है तथा कुछ अपुरुषाकृति वाले। ऋग्वेद में इन्द्र की तीन विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। (१) उसकी सर्वतोमुखी प्रतिभा है। (२) वह युद्धप्रियों का नेता है। (३) वह दैत्यो या राक्षसों का स्वाभाविक शत्रु है। वृत्र और इन्द्र

के युद्ध का वर्णन तो पद पद पर दृष्टिगोचर होता है। ऐतिहासिक दृष्टि के अनुसार वृत्र एक असुर है, जो वृष्टि का अवरोधक है तथा जिसके मारने के लिये इन्द्र अपना वज्र तेज करता है जैसे, अमरूद या आम काटने के लिए चाकू पैना किया जाता है।

Hillie Brant नामक पाश्चात्य वैदिक विद्वान् ने यह सिद्ध किया है कि इन्द्र कोई वृष्टि देवता न था और यह भी ध्यान रखना चाहिये कि वर्षा काल के सम्बन्ध के मन्त्रों से तीन नामों का विशेष सम्बन्ध दिखाई देता है, त्रित, पर्जन्य और इन्द्र का। पर इन्द्र का वृष्टि का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है।

तैत्तरीय ब्राह्मण के अनुसार प्रजापति ने सारे देवता उत्पन्न किये, पर इन्द्र को नही किया। ऋग्वेद के १/५/२/३ मंत्र को देखने से स्पष्ट विदित होता है कि त्रित ही पहले जलावरोधक दैत्यो का संहार करता था परन्तु बाद में इन्द्र ने इस कार्य को अपने हाथ में ले लिया। वैदिक देवताओं में मनुष्य की आकृति और प्रकृति से इन्द्र अधिक मिलता जुलता है, उसका वर्णन ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल, सूक्त १६, मंत्र २ में, ८/८५/३ में व १/७/२ में मिलता है। वह हमारे समक्ष एक सुदृढ़, सुन्दर आर्य की आकृति उपस्थित करता है। उसकी उत्पत्ति माता के पार्श्वभाग से बताई गई है और उसने अपनी माता को विधवा बना दिया। इन्द्र को कन्या वर्ग का गीत सुनने का बड़ा शौक है तथा वह अविवाहित कन्याओं की भलाई में रुचि लेता है। 'मरुत्' इन्द्र के सहकारी हैं इसीलिये इन्द्र का नाम मरुत्वान् भी पड़ा है। 'इन्द्र ज्येष्ठ' पद से भी मरुतों का ही ग्रहण किया गया है। इन्द्र शक्ति का प्रतीक है अतः उसे 'महान् वृषभ' से उपमित किया जाता है। शक्र, शुष्मत्, वृषा, शचीवित्, शतक्रतु, मनुस्वान् इत्यादि शब्द उसकी उच्च गुणातिशयता को दिखाते है। जब इन्द्र विजय करता हुआ आगे बढ़ता जाता है, तब वरुण उसके विजित देशो मे नियम और व्यवस्था

करता चलता है। वरुण का यह नारा था कि इन्द्र जीतता चले और वह अधिकार, नियम और व्यवस्था करता चले।

इन्द्र का सम्बन्ध जहां वरुण के साथ अत्यधिक है, वहां बृहस्पति और ब्रह्मणस्पति के साथ भी अधिक दीखता है, किन्तु यह सारी धार्मिक जगत् की आलङ्कारिक कल्पना है। वस्तुतः ऋषि दयानन्द की दृष्टि से यह सब आलङ्कारि कल्पित सत्य है और वह इस प्रकार है कि उनके मतानुसार इन्द्र प्राण है, वरुण इन्द्रियाँ है असुर पराजय आसुरीभावों को पराजित करता है। ऋग्वेद में स्वर्ण, रजतादि चमकदार, कान्तियुक्त वस्तुओं को भी इन्द्र नाम से व्यहृत किया गया है। इसी लिये निरुक्तकार कहते हैं कि "या च का च बल कृतिः इन्द्र कर्मैव तत्" अर्थात् सब बलयुक्त दीप्तिशाली पदार्थ इन्द्र कहे जाते हैं, यही इन्द्र की व्यपाकता है।

६—रुद्र देवता

रुद्र का ऋग्वेद में विशेषता स्थान नहीं है। उसका वर्णन कुछ ऋचाओं मे ही मिलता है। एक ऋचा में तो सोम के साथ रुद्र का वर्णन गुणीभूत रूप मे मिलता है। उसके बाहु, शरीर तथा अवयवों की सत्ता का भी वर्णन है। उसके ओष्ठ सुन्दर हैं। वह पटियादार बाल रखता है। वह भूरे रङ्ग वाला है। उसकी आकृति कान्तियुक्त और मसृण है। वह मध्याह्न कालीन सूर्य के समान चमकता है और सोने के समान वर्ण वाला है। वह सोने के आभूषणों को धारण करता है। वह एक चमकदार हार गले मे पहने हुए है। वेद में निष्क शब्द हार का ही वाचक है। वह सर्वदा एक सवारी में चलता है। उसके अनेक प्रकार के शस्त्रों का प्रायः वर्णन मिलता है। वह वज्र धारण किये हुये है। उसके बिजली सी चमक वाले बाण ही एक मात्र

विशेष आयुध है। रुद्र का मरुत् गणों के साथ सम्बन्ध दिखाई पड़ता है। वह मरुतों का पिता है और उसने पृश्नि नाम की गौओं के teats या थनो से उन्हें उत्पन्न किया था। वह नाश करने मे एक भयकर जङ्गली जन्तु के समान है। वह जन्तु लाल रंग का स्वर्ग का शूकर है, उसे 'अरुष्' कहते हैं। वह शूकर विशालकाय है, रुद्र शक्तिशालियों से भी बढ़कर शक्तिशाली है। शीघ्रगामी, फुर्तीला और अदम्य है। शक्तिमत्ता में उसे कोई देवता भी अतिक्रमण नही कर सकता। वह युवा है, वह संसार का स्वामी (Lord) है, जगत् पिता है। वह मनुष्यों के पुण्य और पापो का निरीक्षण भी करता है। वह उदार (मीढवान्) है। वह आशुतोष और शिव है। ऋचाओं मे उसके भयंकर बाणो का वर्णन मिलता है। उसका क्रोध ससार का महत्त्व कम करने वाला अपरिवर्त्य, ऊधर्षणीय और वीभत्स है। शिव को एक द्रोह रखने वाला देवाधिदेव समझा जाता है। उसकी प्रार्थना की जाती है जिससे वह हमें न मारे और न हानि पहुँचावे।

उसके द्रोह को दूर करने के लिये एवं उसके गौ और मनुष्यों के मारने वाले वज्र से बचने के लिये अनेक तरह की प्रार्थनाएँ की गई हैं। वह राक्षसों के समान एक मात्र अपकारी नही है, वह केवल कष्टों से ही नहीं बचाता किन्तु दया का दान भी देता है। उसकी स्वास्थ्य देने वाली शक्तियाँ विशेषतया वर्णित हैं। उसके पास हजारों औषधियाँ हैं। इस अर्थ को व्यक्त करने के लिये जलाष (cooling) और जलाषभेषज (Possessing cooling remedies) यह दो भिन्न भिन्न अर्थों वाले विशेषण वेद मंत्रों में आते हैं। उसकी भौतिक शक्तियाँ स्पष्टतया नहीं गिनाई गई हैं, फिर भी प्राकृतिक वर्णन से यह समझा जाता है कि आँधी उठाना इसी का काम है। उसका दुःखपूर्ण स्वरूप नर-वृक्ष-पशुध्वस करने वाली बिजली के समान दिखाई

पड़ता है। उसके कठोर पर कोमलता पूर्ण विशेषणों से यह सिद्ध होता है कि वह वस्तुतः शिव ही है। रुद्र संज्ञा द्युलोक और पृथ्वी को अपनी शक्ति से रोदन कराने के कारण पड़ी है। रुद्राष्टाध्यायी या यजुर्वेद मे तो उसे शत्रु-प्रतिकार करने में अनुपम सामर्थ्ययुक्त कहा गया है। वह शान्ति का भी अग्रदूत है। इस प्रकार वैदिक रुद्र विरोधाभासों का एक मूर्त उदाहरण है।

७—मित्र

मित्र और वरुण का इतना अधिक साहचर्य है कि तीसरे मण्डल की ५९वीं ऋचा को छोड़ कर और कहीं भी मित्र का एकाकी रूप में वर्णन नहीं मिलता। उस मंत्र में वर्णित अर्थों के आधार पर मित्र का चरित्र अनिश्चित दिखाई पड़ता है। वह शब्दों द्वारा मनुष्यों को नियन्त्रित करता है। निर्निमेष आँखों से कृषकों को देखता है तथा मनुष्यों को कृषि आदि के लिये प्रेरणा देता है। सविता भी मित्र के जैसे ही गुण वाला है। अग्नि जो कि ऊषा के आगे आगे होता है, मित्र का जन्मदाता है। पूर्ण रूप से प्रदीप्त होने पर वही अग्नि "मित्र" संज्ञा धारण कर लेता है। अथर्ववेद के अन्दर मित्र और वरुण का भेद बताया गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों में मित्र दिन के साथ सम्बन्धित है और वरुण रात्रि के साथ। मित्र सूर्य का देवता है। वह Sue God कहाता है। कहीं कहीं मन्त्रों में वह प्रकाश का भी देवता है। मित्र शब्द का व्याकरण रीति से विश्लेषण करने पर वह सुहृदवाची मिद् धातु से बनता है, जैसा कि वेद में मित्र के स्वभाव का वर्णन मिलता है उससे प्रतीत होता है कि मित्र देवता बड़ा दयालु और शक्तिशाली है।

८—उषस्

उषा देवता का वर्णन ३२ मन्त्रों मे मिलता है। इसको Anthropomorphism मे वर्णित किया गया है। भौतिक दृश्यों का वर्णन कवि की कल्पना से प्रस्तुत किया गया है। उषा एक नर्तकी के समान सजी हुई, चमकीले वस्त्र पहने हुए पूर्व मे उदित होती है और अपने आकर्षक रूप को प्रकट करती है। वह प्रकाश में स्नान करती हुई अन्धकार को भगाती है और रात्रि-रूपी नायिका की काली पोशाक (वस्त्रों) को उतार कर फेंक देती है। वह युवती है और प्रतिदिन उत्पन्न होती है। वह एक प्रकार के रंग में चमकती है और मरणशील मनुष्यों के जीवन का उद्बोधन करती है। उसके निकलते ही आकाश का प्रत्येक कोना जगमगा जाता है और वह स्वर्ग का द्वार खोल देती है। उसकी किरणें पशुओं के झुण्ड के समान निकलती हैं। यह दुःस्वप्नों और हानिकारक भूत-प्रेत, पिशाचों को भगा देती है। वह प्रत्येक प्राणी को अपनी अपनी क्रिया प्रवृत्त करती है। चिड़ियाँ आकाश में उड़ने लगती हैं और मनुष्य कार्य मे व्यस्त हो जाता है। वह प्राकृतिक नियम का उल्लन नहीं करती, वह देवताओं के उपासकों को प्रातःकाल जगाती है और उनको भजन मे प्रवृत्त करती है, वह देवताओं को सोमपान में लगाती है। उसका रथ चमकदार है और उसमें लाल रंग के घोड़े जुतने है जिनसे वह खीची जाती है। यह लाल घोड़े सूर्य की किरणें ही हैं। उषा का सम्बन्ध सूर्य के साथ अधिक है। उसने सूर्य के यातायात के मार्ग को अनावृत कर दिया है। वह सूर्य की पत्नी के समान है, सूर्य उसका एक रसिक युवक के समान अनुगमन करता है। यह देवताओं से अनेक प्रकार के भावों को अपने लिये बलात् आदर पूर्ण वाक्यों मे निकलवाती है। कहीं कही उषा को सूर्य की माता भी बताया गया है और सूर्य उसका कान्तियुक्त पुत्र है। वह अपनी बड़ी

बहन रात्रि की छोटी बहन है. इसी कारण 'उषा सानक्त' और 'न क्तो षासा' यह दो शब्द साथ साथ वेद मे प्रस्तुत दिखाई देते हैं। वह आकाश में उत्पन्न होती है इसी लिये वह स्वर्ग की पुत्री है। उषा का सम्बन्ध अग्नि के साथ भी है जो कि उसका कामुक (lover) है। उषा अग्नि को जलाती है। अग्नि उषा से मिलने के लिये ऊपर को लपटें लेती है। उषा का वर्णन अश्विनी-कुमारों के साथ भी मिलता है। उषा अपने उपासकों को धन और पुत्र प्रदान करती है; वह अपने भक्तों को यश और महत्व भी देती है इसी कारण उसका नाम 'मघोनी' भी कहते हैं। व्याकरण की रीति से उषा........सज्ञा........वस्... ....धातु से बनी है। जिसमे ज्योतिष्मान् पदार्थ निवास करते हैं वही उषा है। उषा का नाम ऋग्वेद मे ३०० बार आया है। ऋषियों के द्वारा इसकी बहुधा स्तुति की गई है। उषा वैदिक काव्य का विशेष विषय रहा है, अनेक क्रियायें उषा के बिना अधूरी हैं। पौराणिक गाथायें और ऐतिहासिक सत्य इस बात को सिद्ध करते हैं कि उषा ब्राह्मण भाग मे और यज्ञों में विशेष स्थान रखती है। उषा अपनी शानदार चमक के लिये, त्रुटि रहित नियमों के लिये, अबाधित उन्नति के लिये, सुखदायक भौतिक परिणामों के लिये और प्रत्येक नवीन दिन के लिये प्रतीक रूप हैं। उषा का आगमन प्राचीन आर्यों को हर्षातिरेक से भर देता था। उषा का व्यक्तित्व, कार्य और देवत्व अन्य किसी भी देवता से कम नही। उषा लौकिक कार्यो के साथ बहुत सम्बद्ध है। उषा से बौद्धिक और आचार सम्बन्धी त्रुटियों को पूर्ण करने की प्रार्थना की गई है, इसीलिये उषा को 'रश्मिभिः व्यक्ता' यह विशेषण दिया गया है। उषा के कार्यो का वितरण ऋत (natural law) के द्वारा होता है। उषा की सवारी प्रकाश युक्त घोड़ियाँ हैं जो 'सुभगा' विशेषण वाली हैं। उषा वर्ष (साल) की स्त्री और ऋतुओं की स्वामिनी मानी जाती है। शतपथ ब्राह्मण में उषा के विषय में यह कथा आती है कि उसे एक

काले रंग के दैत्य ने गुफा में बन्द कर दिया था। सब देवता ढूंढते फिरते थे। अन्त में सूर्य ने उषा को दैत्य के पंजे से छुड़ाया। जिसका स्पष्ट अर्थ है कि सूर्य-किरणों का रात्रि संहार करती है और इन्द्र रूपी सूर्य उषा रूपी गौओं को बन्धन से मुक्त करता है। उषा को सूर्या भी कहते हैं जिसका अर्थ सूर्य की स्त्री अर्थात् Sun goddess है। इस प्रकार उषा का बहुविध वर्णन दृष्टिगोचर होता है।

६—पर्जन्य

पर्जन्य का वर्णन केवल ऋग्वेद के तीन सूक्तों में मिलता है। इसे मेघ का देवता भी कहा जाता है। बादल जल के रखने के लिए एक बड़ा बर्तन या मशक (दृति) है। पर्जन्य को एक वृषभ के समान बताया गया है जो कि अंकुरोत्पत्ति और पृथिवी के विस्तृत बनाने में विशेष निपुण है उसकी सवारी जल पूर्ण मेघ है। वह दिव्य जलों का पिता कहा जाता है और जल वर्षा करने में कभी कभी उसे वज्र अर्थात् गर्जन और बिजली के रूप में भी कहा गया है। पर्जन्य तृण और अंकुरों का जन्मदाता तथा पालक माना जाता है। पर्जन्य के कारण ही गौओं में, घोड़ियों मे और अन्य स्त्री जाति के प्राणियों में उत्पादन शक्ति का आविर्भाव होता है। उसे द्युलोक और पृथिवीलोक का पिता भी कहा जाता है। पृथिवी पर्जन्य की पत्नी रूप में मानी गई है। पर्जन्य को द्यौः (द्युलोक) का पुत्र भी कहा गया है। पर्जन्य शब्द का शाब्दिक अर्थ है जन्य—उत्पन्न होने वाले चराचर को पूर्ण करने वाला। अतएव "आपो वै प्रजापतिः" यह ब्राह्मण वाक्य इस अर्थ का ही समर्थक है और इस तरह ही इसकी संगति भी है।

१०—पूषन्

पूषा का वर्णन सोम के साथ आता है। पूषा की पुरुष रूपता (Anthropomorphic रूप) बहुत कम मिलती है। उसके पैर व दाहिने हाथ का वर्णन मिलता है। उसके पटियादार जुल्फों वाले बाल हैं और एक दाढ़ी भी है। उसकी सुनहरी तलवार है, उसके समीप एक मोचियों जैसी टाँकी (awl) तथा एक अंकुश (goad) भी रहता है। पूषा के रथ में घोडे के स्थान पर बकरे जोते जाते हैं। उसका भोजन दलिया या दही मिले सत्तू (करम्भक) हैं। वह प्रत्येक प्राणी को प्रेमपूर्ण दृष्टि से देखता है, वह अपनी माता का प्रेमी और अपनी बहिन उषा (dawn) का भी। वह सूर्य की पुत्री या पत्नी है। सूर्य को देवताओं ने पति बनाया है उसके विवाह की विधि का वर्णन १०वें मण्डल के ८५वे सूक्त में मिलता है। सुनहरी, दिव्य रथ में बैठ कर वह सूर्या का दूत बनता है। उसका निवास स्थान द्युलोक में है। वह प्राणियों का संरक्षक या साक्षी है। वह द्युलोक व पृथ्वीलोक में गति करता है। उसे मार्गो या सड़क का देवता भी माना जाता है। वह मार्गों के भयो को दूर कराता है। उसे त्यागियों का पुत्र "विमुचीनपात्" कहा गया है। वह पशुओं का पालन करने वाला और पशुओं को बिना हानि के घर पहुचाने वाला है। उसकी उदारता का वर्णन अधिक मिलता है। उसका विशेषण आघृणि (glowing) दिया गया है। वह धन और शरीर की उन्नति करता है। पूषा को सूर्य का अधि-देवता बताया गया है। पूषा ही मैदानो मे चरने वाले पशुओं का रक्षक है। इस प्रकार 'पूषा' चराचर का स्वामी है।

११—अपस्

जलों को चार मन्त्रों में सम्बोधित किया गया है तथा कुछ इधर

उधर प्राप्त होने वाले मन्त्र में भी जलों का वर्णन मिलता है। पुरुष-विधता (Anthromorphism) की दृष्टि से जल वह देवता है जिसका वर्णन कहीं माता, कहीं स्त्री और कही अधि देवता के रूप में मिलता है। वह यज्ञ कर्त्ताओं को वरदान है। वह देवताओ का अनुयायी है। वज्रधारी इन्द्र ने जलों के लिए एक मार्ग का खनन किया। जिस मार्ग से वह कभी नहीं हटता। जल के दिव्य और भौम नामक दो भेद हैं, दोनों का गन्तव्य स्थान समुद्र है। वे जल जहा देवता रहते हैं वहीं रहते हैं। मित्रा, वरुण और सूर्य उसके साथी हैं। वह मनुष्यों के पाप और पुण्यों पर दृष्टि रखता है। जल अग्नि की माता है और अग्नि का इसीलिए उत्पादक है। वे अपने तरल तत्व को ससार के लिये देते हैं, जितनी गति संसार में हो रही है वह सब जलों के कारण से है। जल गन्दगी को दूर करता और पवित्रता को देता है। वे आचार सम्बन्धी पापों को भी दूर करते हैं। बलात् किये गए शाप व आलस्य जल से ही दूर होते हैं। वे औषध हैं। स्वास्थ्य, धन, शक्ति व लम्बी आयु और अमरत्व जल से प्राप्त होता है। उनकी कृपा के लिए संसार प्रार्थना करता है। वे सोम नाम के पुरोहित को रस का दान करते हैं। जलों का सम्बन्ध मधु के साथ भी है। वे अपने दूध को शहद से मिलाते हैं और इन्द्र उस शहद का पान करता है जिससे इन्द्र को शक्ति और आनन्द प्राप्त होता है। शहद की लहरें इन्द्र को मादकता प्रदान करती हैं और आकाश तक ऊंची उठ जाती हैं। सोम इन्द्र को विशेष आनन्द देता है। जबकि जल, घी, दूध और शहद ले करके आते हैं तब सोम को इन्द्र के लिए प्रस्तुत करते हैं। सोम उनमें इसी प्रकार आनन्द प्राप्त करता है जिस प्रकार एक युवा पुरुष सुन्दर लड़कियो मे (VIII मण्डल ४८वां सूक्त), वह उनके पास उसी भांति पहुँचता है जैसे एक प्रेमी प्रेमिका के पास। वह ऐसी लड़कियां हैं जोकि युवको के सामने नत हो जाती हैं।

जलों का मानना वैदिक काल से पूर्व की घटना है क्योंकि अवेस्ता में भी उनको देवता मान कर व्यवहार किया गया है।

१२—अश्विन् (अश्विनी)

अश्विनी-कुमार नाम के दो देवता इन्द्र, अग्नि और सोम के बाद परिगणित होते हैं। अश्विन् का अर्थ सईस (ho:seman) है, वे देवताओं के लिए प्रकाश, प्राकृतिक आनन्द तथा अन्य अनेक प्रकार के कामपूर्ति के साधन उपस्थित करते हैं। वे जुड़वां भाई हैं। वेदमन्त्र जिस प्राकृतिक दृश्य को उपस्थित करते हैं वह दृश्य कोई वास्तविक नहीं तथा उसके उद्भव का अनुसंधान पूर्व वैदिक काल में करना चाहिये। २ या ३ मन्त्रों में उन्हें अलग अलग (जुड़वां नहीं) भाई बताया गया है। वे युवा हैं और प्राचीन हैं। वे चमकदार हैं और कान्ति के स्वामी हैं। सुनहरी चमक, सौन्दर्य और कमल की मालाओं से वे सदा भूषित रहते हैं। एकमात्र वे ही ऐसे देवता हैं जिनका स्वर्णमय (हिरण्यपवर्तनी) मार्ग है। वे दृढांग स्फूर्तिशाली तथा गरुड़ के समान वेगगामी हैं, उनकी बुद्धि निःसीम है और अदृश्य शक्तियां (occu t powers) उनमें विद्यमान हैं। उनकी संज्ञा 'दस्र' और 'नासत्य' भी है जोकि वेदों में बहुत अधिक व्यवहृत होती है। दस्र= आश्चर्यपूर्ण (wonder) और नासत्य का अर्थ सत्य युक्त (true) है। उनका सम्बन्ध मधु या शहद के साथ अधिक मिलता है। वे मधु प्रेमी हैं। उन्होंने चमड़े की सौ (१००) गोथियाँ (skins) शहद से भर कर रखी थीं और सौ घड़े शहद इकट्ठा किया था। उनका रथ शहद के अंकुश से हांका जाता है। वह शहद के रंग वाला है और शहद की तरह धीरे धीरे चलता है। वे मधु-मक्खियों को शहद देते हैं। सोम

रस के प्रति भी इनका अनुराग कम नही क्योंकि उषा और सूर्य के साथ वे सोम-पान के लिए बुलाये जाते हैं। उनके रथ की चमक सूर्य के समान है और रथ के अन्य अवयव भी स्वर्ण के हैं। उस रथ में तीन पहिये हैं, उसका वेग पवन से बढ़ कर है। इस रथ को ऋभु नामक तीन देवताओं ने बनाया था और इसमें पंखों वाले सुनहरी घोड़े जुते हैं। कभी २ उनके रथ में भैंसे और गदहे भी जोते जाते हैं, यह रथ पांच देशों को पार करता है। ये पाँच लोक आकाश, भूलोक, द्युलोक, सूर्यलोक और चन्द्र-लोक हैं। यह रथ आकाश के चारों ओर चलता है, भूलोक और द्युलोक मे गति करता है। सूर्य के भी चारों ओर इसकी गति निषिद्ध नहीं है। इनकी गति या वर्ति का वर्णन वेदो में विशेष मिलता है। वे अश्विनी-कुमार वायु-लोक, स्वर्ग-लोक और कभी समुद्र में निवास करते हैं पर निश्चित रूप में उनके निवास-स्थान का पता नहीं। उनके प्रकट होने का काल उषा के उदय होने के अनन्तर और सूर्योदय के मध्य में है जब कि रात्रि की कालिमा पाटल गौओं के समान लाल लाल बन जाती है। उषा अश्विनी-कुमारों को जगाती है, वे उसका अनुसरण करते हैं। वे अपने रथ मे बैठे हुए ही पृथिवी-लोक में आते हैं और भक्तों का उद्धार करते हैं। उनका आगमन केवल प्रातःकाल में ही नहीं किन्तु मध्याह्न और सायकाल में भी होता है, वे अन्धेरे और हानिकारक भूत-प्रेत आदि आत्माओं को भगा देते हैं। वे स्वर्ग के पुत्र हैं किन्तु उन्हें विवस्वान् का पुत्र और त्वष्टा की पुत्री सरण्यू का पुत्र भी कहा गया है। 'सरण्यु' शब्द का अर्थ सूर्य और उषा का उदयकाल है। अश्विनी-कुमारों का पुत्र पूषा बताया गया है और उषा उनकी बहन है। वे सूर्य के साथ भी सम्बद्ध हैं, पर यह सम्बन्धी सूर्य नहीं किन्तु सूर्या है जो कि सूर्य की पुत्री है। इस सूर्या के दोनों ही पति है जिनको सूर्या ने स्वयं वरण किया और वह उनके रथ पर स्वयं आरूढ़ हुई। इस प्रकार उनके

विवाह-सूचक मंत्र में उन्हें सूर्या के घर आने की प्रेरणा दी जाती है और वे उसे (सूर्या को) प्रजनन शक्ति प्रदान करते हैं। ये दोनों देवता सहायक देवता हैं जिनकी उपासना से दुःखों से छुटकारा जल्दी मिलता है। वे शान्तिपूर्ण और दयापूर्ण हैं, अपने प्रभाव से भक्तों की रक्षा करते हैं किन्तु युद्ध के खतरों से नहीं बचाते। ये स्वर्ग के वैद्य हैं। नवीन आंखें, नवीन हाथ आदि अंग प्रदान करना और बीमारियां दूर करना उनका कार्य है। ऐसी अनेक गाथायें हैं जिनमें उन्होंने देवताओं को युवत्व प्रदान किया है एव देवताओं की शारीरिक अशक्ति दूर की है। 'भुज्यु' नाम के राजा को उन्होंने समुद्र मे डूबते हुये बचाया था। यास्क ऋषि से वं विद्वानों को अश्विन् शब्द का यथार्थ अर्थ जानना एक समस्या थी। अतएव यास्क ने अश्विन् शब्द के अनेक अर्थ किये है। अश्विन् शब्द का अर्थ महा-काल है, जब कुछ अन्धेरा व कुछ प्रकाश (फूट-पुटा प्रकाश) हो। इसीलिए प्रातःकाल और सायंकाल के समय उदित होने वाले तारों को अश्विन् कहते है। वे द्यौः के पुत्र हैं। द्यौ. अंग्रेजी का (Zeus) प्रतीत होता है जो कि हेलीना (Helena) के भाई हैं जो दोनों अपने घोडो पर सवार होकर सूर्य की पुत्री से प्रेम करना आरम्भ करते हैं। Lattic गाथा के अनुसार प्रातःकाल का तारा सूर्य की पुत्री को देखने के लिए आता है। वे दोनों तारे सूर्या (उषा) से विवाह करते हैं और वे उसे समुद्र मे डूबने से बचाते हैं। इस प्रकार अश्विन् का सम्बन्ध Bible की उक्त घटना के साथ भी जोडा जा सकता है।

अश्विनी-कुमारों के 'निचेतास', 'मधुयुवा', 'स्यूमगभस्ति' आदि विशेषण मिलते हैं। अश्विनी-कुमारों का मनुष्यों के प्रति मित्रता पूर्ण दृष्टिकोण है। उनका रक्षकत्व और उदार-व्यवहार मनुष्यों को आकृष्ट करता है। जितना भी दान दिया जाता है उनके देवता अश्विनी-कुमार हैं। (दान देने की भावना अश्विनी-कुमारों के कारण ही उत्पन्न

हुई है)। यास्क ने अश्विनी-कुमारों को न सुलझने वाली पहेली लिखा है। वस्तुतः ये दो तारे है जिनमें से एक प्रातःकाल उदित होता है और दूसरा सायंकाल। इस प्रकार की व्याख्या करने मे यद्यपि कुछ कठिनता है क्योंकि वे तारे दो नहीं सख्या मे तो एक ही हैं। किन्तु यह शीघ्रतया विश्वास किया जा सकता है कि ज्योतिष-शास्त्र में इन तारो का विशेष स्थान है, वेद के अनुसार भी ये दोनो तारे साथ ही रहने चाहिए। Lattic Song के अनुसार सूर्य प्रातःकाल के तारे के साथ विवाह करता है और सायंकाल के समय सायकाल के तारे के साथ विवाह करता है। अर्थात् एक सूर्या की दो अश्विनी-कुमारों के साथ शादी होती है यही कारण है कि इन तारों को Pair of twins कहा जाता है। ज्योतिष-शास्त्र मे अश्विनी-कुमार तारों का समुदाय है जो मनुष्यो के शुभ व अशुभ का द्रष्टा है। इनका रथ शूद्र जातीय रासभों से खींचा जाता है और ये दोनों अपनी सामाजिक मर्यादा को इन्द्र की अपेक्षा प्रौढ़ बनाये हुये हैं। हठयोग के अनुसार वाम एव दक्षिण नासापुटों को अश्विनी-कुमार कहते हैं। इनका ही दूसरा नाम इन्द्रा व पिङ्गला है। शीघ्र गमन करने के कारण वायु को 'अश्विन्' कहते हैं। इनकी रासभवाहनता यौगिक अर्थ को लेकर है क्योंकि जब हवा चलती है तब झांय झांय या सांय सांय यही "भ=आकाश का 'रास' शब्द युक्त या शब्द पूर्ण करना कहता है"।

१३—वरुण सूक्त

इन्द्र के बाद व्यापकता की दृष्टि से वरुण दूसरे नम्बर का देवता है। यद्यपि उन मंत्रो की संख्या केवल १२ है जिनमें कि वरुण का वर्णन मिलता है। उसका मुख, आंखें, भुजायें, हाथ और पैरो का वेदो मे वर्णन किया गया है। उसकी आंखें सूर्य हैं जिसके द्वारा वह मनुष्यो को देखता है। वह दूरदर्शी और सहस्र नेत्र है, वह दुष्कर्मियों को कुचल

डालता है, कुशा पर बैठता है, सुनहरा चोगा पहनता है, उसका रथ भी सूर्य के समान दीप्तियुक्त होता है जिसमें घोड़े जुते हुये हैं। वरुण अपने प्रासाद में बैठ कर अपने कर्त्तव्यों पर ध्यान रखता है। पूर्वज लोग उसे स्वर्ग में उत्तम आसन पर बैठा हुआ पाते हैं। वरुण के गुप्तचर भी ससार मे घूमते हैं। वे वरुण के चारों ओर उसे घेर कर बैठते हैं और उसकी स्तुति करते हैं। वरुण का एक सुनहरे पखो वाला जो दूत माना गया है वह सूर्य ही है। वरुण को एक राजा बताया गया है, वस्तुतः वह ब्रह्माण्ड का सम्राट् है। वरुण को शारीरिक और चारित्रिक नियमों के पलवाने का अधिकार दिया गया है, उसने स्वर्ग और भूलोक को अपनी शक्ति से धारण किया हुआ है और वही सूर्य को बनाने वाला, अग्नि और जल का निर्माता तथा सोम वल्ली को पर्वतों में उत्पन्न करने वाला है। वायु जो ध्वनि करती है वह वरुण के कारण ही करती है। चन्द्रमा जो रात्रि को प्रकाश करता है वह वरुण की आज्ञा में चलता है। तारे भी वरुण का आदेश पालते हैं, इस प्रकार वरुण रात्रि और दिन का अधिष्ठाता है। वह जलो का भी नियमन करता है। नदियां उसकी आज्ञा से बहती हैं, समुद्र उसके नियमों में अपनी वेला का अतिक्रमण नही करता और मेघ जल की वर्षा करके पृथिवी को उसकी आज्ञा से ही सींचते हैं। वरुण का 'धृतव्रत' विशेषण है जिसका अर्थ है संसार को नियम में चलाने वाला। वह द्युलोक और पृथिवीलोक को व्याप्त करके स्थित है। उसका सर्वज्ञ होना एक विशिष्ट गुण है। वह आकाश मे उड़ने वाले पक्षियों की गति को पहिचानता है। समुद्र में चलने वाले जहाजों को जानता है। कोई भी प्राणी उसकी निगाह से ओझल नहीं हो सकता। वरुण अन्य देवताओं से बढ़ कर है। पाप कर्म को देखते ही वह क्रुद्ध हो उठता है और नियम भंग करने वाले को दण्ड देता है। वेद में वरुण के पाशों का वर्णन अधिकतया मिलता है। वरुण पश्चात्ताप करने वालों के

लिए दयालु भी है, वह उनके पाशों को ढीला कर देता है। जो लोग भूल से कोई गलती करते हैं या उसके नियमों को भंग करने के बाद आत्म-समर्पण करते हैं उन्हें वह क्षमा प्रदान करता है। वरुणसूक्त में ऐसा कोई मंत्र नहीं जिसमें अपने किये गए पापों के लिए प्रार्थना न की गई हो। आदिकाल में यह धारणा थी कि वरुण आकाश को व्याप्त करने वाला देवता है किन्तु यह धारणा अब नष्ट हो चुकी है। अवेस्ता के 'अहुरामजदा' (Wise spirit) की असुर वरुण के साथ समता दिखाई गई है और वरुण का व्यापक महत्व सिद्ध किया है। ऐसी अवस्था में असुर शब्द का अर्थ असु = प्राण, र = देने वाला, अर्थात् प्राणियों में प्राण शक्ति का संचार करने वाला देवता ही वरुण है। कहीं २ वरुण और यम की एकरूपता भी परिलक्षित होती है, पर बहुत कम। वरुण से सुख देने की प्रार्थना स्थान स्थान पर की गई है।

१४—मण्डूकसूक्त

मण्डूकसूक्त की ऋचाएं वर्षा लाने में, अनावृष्टि दूर करने में एक अद्भुत शक्ति रखती हैं ऐसा योगिकों का विश्वास है। इस सूक्त में मेढ़कों की स्तुति की गई है जो कि अनावृष्टि काल में एक गर्म पतीली के समान माने गये हैं। उच्च ध्वनि करने वाले मेंढ़क वेद पढ़ने वाले विद्यार्थियों के समान बतलाये गये हैं। विचार करने से यह प्रतीत होता है कि मण्डूक शब्द योगिक है तथा ब्रह्मचारियों के लिये प्रयुक्त हुआ है। क्योंकि उसके 'व्रतचारिण' इत्यादि विशेषण दिये गये हैं इसलिये 'मडिभूष अलङ्कारे' इस धातु से बना है तथा उन नियम-धारी, वेदपाठी ब्रह्मचारियों की ओर संकेत करता है जो कि वर्षा करवाने के लिये वेदों की ऋचाओं के अध्ययन एवं स्वाहाकार मे व्यस्त

हैं तथा कारीरीइष्टि के आरम्भ करने को उद्यत हैं। 'शाक्तस्य इव शिक्षमाणाः' इस क्षेत्र में आया हुआ यह पद उन वेदज्ञों को निर्दिष्ट करता है जो कि वेद के उच्चारण करने में अपनी ध्वनि गौ बकरा या चितकबरे हरिण के समान बोलते हैं अर्थात् वेद का उच्चारण गोस्वर में, अजस्वर मे या हरिण की सी ध्वनि मे किया जा सकता है जो कि ध्वनियां उदात्त, अनुदात्त, स्वरित या उच्च, नीच, व एकश्रुति स्वर में बोली जाती हैं, जिसके उच्चारण से वृष्टि के प्रयोजक मन्त्र गान-विद्या के अनुसार ऐसा वातावरण उत्पन्न करते हैं कि उस वायु-मण्डल में मेघों का उदय हो जाता है। "तप्ताघर्मा अश्नुवते विसर्गम्" इस वाक्य के अनुसार मेघ को ज्योतिःप्रभव बताया है जैसा कि 'धूम ज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातं क्व मेघः' इस मेघदूत के वाक्य में भी यही तत्व निर्दिष्ट किया गया है। मण्डूक सूर्योपासक देवगण हैं, सोम याज्ञी ब्राह्मण हैं या पंचाग्नि तपने वाले अध्वर्यु हैं। इस प्रकार भिन्न-भिन्न रूप के व्रतियों को मण्डूक रूप में वर्णित किया गया है। इतना ही नहीं इन मण्डूकों का सादृश्य सूर्य के विशेषणों के साथ भी दिया गया है, जैसे उदीयमान सूर्य अपनी किरणों का प्रकाश करता हुआ आकाश में बढ़ जाता है वैसे ही प्रातःकाल के समय मन्त्रों का शनैः शनैः उच्चारण करते हुये बटुकगण भी अपनी ध्वनि का आरोह, अवरोह के साथ विस्तार करते हैं। इस सूक्त में गन्धर्व विद्या का, बीज तथा अनावृष्टि-निवारक मन्त्रों का, विचारों का वर्णन किया गया है।

१५—यमसूक्त या "Funeral Hymns",

यम विवस्वान् का पुत्र है और सरण्यु या सरण्यू उसकी माता है जो कि त्वष्टा की पुत्री है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल के दसम् सूक्त के

द्वितीय मन्त्र में यम और यमी पति और पत्नी बताये गए है, जो कि प्राणों के देवता हैं। यम वह व्यक्ति है जिसने मनुष्यों के लिये मरने के बाद सबसे पहले जीवगति का मार्ग प्रदर्शित किया है। वह मनुष्यों को एक स्थान पर एकत्रित करता है। एक मन्त्र में उन संघीभूत जीवों के एक घने पत्तों से घिरे हुये पेड के समान बतलाया है, उसी वृक्ष के नीचे यम भी बैठा हुआ बताया गया है (यस्मिन् वृक्षे सुपलाशे देवैः संपिबते यमः)। यम पुण्यात्माओं को प्रकाश वाले स्थानो पर भेजता है। वहाँ पर यम की आज्ञा से पितृगणो की पुत्रो के द्वारा सेवा की जाती है। इन पितरों की कई श्रेणियाँ हैं, जैसे अंगिरा, विरूप, नवग्वा, अथर्वा, भृगु, वसिष्ठ इत्यादि। पितृगण कव्य-भक्षण के लिये बड़े उत्सुक रहते हैं और उन्हें यम के साथ आमन्त्रित करते हैं। शरीर के पाँच भूतों में मिल जाने के बाद जीवात्मा भिन्न भिन्न लोको में भ्रमण-विचरण करता है। यम शब्द द्वित्व या युगल अर्थ का वाचक है जिससे सिद्ध हुआ कि यम और यमी दोनों जुडवां उत्पन्न हुये थे या यम और यमी दोनों नित्य सहचर होने से यम यमी कहे जाते हैं इसीलिये यम और यमी भाई बहन हैं या पति पत्नी यह एक विवादास्पद विषय है। यम के शब्द की व्युत्पत्ति से यह प्रतीत होता है कि यम नाम उस शक्ति का है जो मनुष्यों के जीवन और मरण को नियन्त्रित करती है, तदनुसार (यच्छति उपरमयति जीवितात् सर्वं भूतग्रामम् इति यमः) इस पद की व्युत्पत्ति या निर्वाचन हुआ। इन मन्त्रो से यह भी प्रतीत होता है कि शव का दाहसंस्कार ही प्राचीन कालों में होता था। अग्नि मृतक शरीर को लोकान्तर मे पहुंचाता है। उस अग्नि से यह प्रार्थना की गई है कि तू इस शव की रक्षा कर तथा इसके स्थान पर किसी अज को भस्म कर। दाह संस्कार के समय अग्नि और सोम से प्रार्थना की जाती है कि वे इस शरीर को पशुओं से, पक्षियों से, चींटियों से और सर्पों से बचावें। मृत व्यक्ति के शरीर के समीप और

चिता के समीप उसकी पत्नी लेट जाती है और अपने हाथ में धनुष लिये उठती है। इस वर्णन से यह प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में मृतक की पत्नी और उसके अस्त्रों को भी मृतक के साथ ही जला दिया जाता था। इस प्रकार मृतक की दो गति कही गई है—पहली पितृयाण और दूसरी देवयान। इनमें से पितृयाण गति देवयान गति से अधम है। इन दोनो मार्गों में यम ही मृतक की रक्षा करता है, अर्थात् मृतात्मा को स्वर्ग तक पहुंचाता है। जिसका भाव स्पष्ट है मृतक जीव-वाचक देह धारण कर लोक-लोकान्तरों में कर्मानुसार जाता है। यम नाम प्राण वायु का है, जिसके निरोध को प्राणायाम कहते हैं जो कि हठयोग का बीज है। राजयोग में प्राणायाम मानो निरोध का साधन नहीं माना जाता। जीव की गति के विषय में यदि सविस्तार विवरण देखना हो तो मेरी बनाई हुई "अन्त्येष्टि कर्म-पद्धति" पढ़िए। यहां प्रसंगवश यह भी जान लेना उचित होगा कि आर्य समाज यम और यमी को पति पत्नी तथा सनातन-धर्म भाई बहन मानता है इस विवाद के स्पष्टीकरण का यह अवसर नही।

१५–अक्षसूक्त जूएबाज "Gambler" अक्ष सेवी या जुआरी

इस अक्षसूक्त में मनुष्यों को यह उपदेश दिया गया है जिससे कि चरित्र या जीवन का निर्माण होता है। इस सूक्त में हारे हुए जुआरी के पश्चात्ताप का वर्णन है जो कि द्यूत में अधिक आसक्ति के कारण अपने मन को रोक नहीं सकता। वह 'नाल' पर जूए खेलने के स्थान पर वार २ जाता है और अपनी भूलों व नुकसान के लिये पश्चात्ताप करता है। द्यूत-साधन इन पाशों या अक्षों का निर्माण विभीतक वृक्ष के पेड़ के फलों से होता है यह माना जाता है। इस सूक्त से यह भी पता चलता है कि वैदिक काल में मनोरञ्जन के लिये द्यूत-क्रीड़ा और

अश्व-क्रीड़ा दो प्रधान क्रीड़ाएं थी। ये यहाँ तक बढ़ीं कि लोगों को इनका व्यसन पड़ गया। इस अक्ष वर्णन से महाभारत के 'नलोपाख्यान' का स्मरण हो आता है जिसमे द्यूत-क्रीड़ा की बुराइयों का वर्णन है। अक्षसूक्त के विषय मे कई मत-भेद हैं। Schroeder के मत मे यह एक नाटक का भाग है किन्तु Oldenbery के मत में यह अक्षसूक्त दान में प्रवृत्ति कराने वाली ऋचाओं का एक समुदाय है। Winternitz के मत मे यह एक स्वगत कथन Soliloquy है जिसे कि द्यूत-क्रीड़ा करने वाला अपने आप गाता है। यह सूक्त उसके गान का Ballad की तरह का एक अंश है। अक्ष संज्ञा विभक्ति के फलो की हैं इसीलिए इनका "बभ्रु" यह विशेषण दिया गया है। द्यूत के इन पाशों की संख्या कुल ५३ मानी गई है। जब पाशों के फेंकने पर उनकी सम सख्या दो या चार आती है तब द्यूत की "कृत" संज्ञा होती है और जबकि तीन संख्या के पासे अनुकूल पड़ते हैं या तीन फैंक (दाव) अनुकूल होते हैं तब उनकी सख्या "त्रेता" कहलाती है, इस प्रकार से दो के अनुकूल पड़ने पर "द्वापर" और एक के पड़ने पर "कलि" संज्ञा पड़ती है। यह भी प्रतीत होता है कि प्राचीनकाल मे यह जूआ किसी कपड़े या लकड़ी के बने Board पर नहीं खेला जाता था, इस अर्थ को "अधिदेवता" शब्द प्रकट कर रहा है। 'मूजवत्' या "मौंजवत्" यह एक पहाड़ की दो संज्ञाएं हैं जिस पहाड़ पर अक्षों के पेड़ अधिकतया उगते थे। कुछ विद्वान 'मुंजवान्' शब्द का अर्थ सोम करते हैं। सोम का वर्णन, चिकित्सा-स्थान सुश्रुत में किया गया है। वहाँ लिखा है कि :—

सर्वेषामेव सोमानां पत्राणि दश पच च।
तानि शुक्ले च कृष्णे च जायन्ते निपतन्ति च ॥
एकैकं जायते पत्रं सोमस्याहरहस्तदा।
शुक्लस्य पौर्णमास्यां तु भवेत् पंचदशच्छदः ॥
शीर्यंते पत्रमेकैकं दिवसे दिवसे पुनः।
कृष्णपक्षये चापि लता भवति केवला ॥ इत्यादि।

इस वर्णन से यह सिद्ध है कि सोमलता के फलों द्वारा जुआ खेलने का प्रचार था—सोमवल्ली आस-पास दृष्टिगोचर नहीं होती, अतः मुञ्जवत्' शब्द का सोमवल्ली अर्थ करना एक जबरदस्ती है। द्यूत-कर्म से होने वाली भयंकर हानियों का, दुर्दशा का इस सूक्त में नग्न चित्र अङ्कित है, जिससे लोग इसके दुष्परिणाम को जानकर इससे बचते रहें। अस्तुः द्यूत-क्रीड़ा भी एक वीरों का, क्षत्रियों का पवित्र कर्म माना जाता था, पर वास्तविकता ऐसी नहीं है, क्योंकि सारे ही सूक्त में द्यूत-क्रीड़ा की घोर निन्दा की गई है।

१७—पुरुष सूक्त या विराट् पुरुष

जन्तु जगत् की उत्पत्ति के सम्बन्ध में ऋग्वेद में केवल यही एक सूक्त है जिसका नाम पुरुष सूक्त है। मनुष्य परमात्मा का एक साधन है जिसके द्वारा वह सृष्टि बनाता है। यहां पर सृष्टि-निर्माण को एक यज्ञ बतलाया गया है, जिस यज्ञ में पुरुष की बलि दी जाती है। उस पुरुष के अंग सारे संसार के अंग बन जाते हैं, जिसके द्वारा वह सृष्टि का निर्माण करता है। उसकी रचना यह सिद्ध कर रही है कि ऋग्वेद का यह सूक्त सब मंत्रों के अन्त में बना। इस सूक्त में ब्राह्मणादि चार वर्णों का वर्णन मिलता है और एक देवतावाद की भी सिद्धि की गई है। पुरुष को भूत और भव्य का स्वामी बताया है। उस विराट् पुरुष के संसार में व्याप्त होने के बाद भी तीन हिस्से बच जाते हैं। उस पुरुष से वसन्तादि ऋतुयें उत्पन्न हुईं तथा ऋषियों के द्वारा इस पुरुष यज्ञ का विस्तार व प्रचार किया गया। उस पुरुष से ही ऋग्, साम, अथर्व और यजुर्वेद उत्पन्न हुये। विराट् पुरुष का वर्णन १२वें मंत्र में किया गया है जहां वर्णों को अंग-स्थानीय, सूर्य को चक्षुःस्थानीय, वायु को प्राण-स्थानीय और अग्नि को मुख-स्थानीय बतलाया गया है। स्वर्ग की

प्राप्ति या नरक की प्राप्ति भी इस कर्म रूप यज्ञ के द्वारा ही होती है। इस कर्म में निरत रहना ही मनुष्य के लिए परम कर्त्तव्य है। पुरुषसूक्त का वर्णन गीता के योग विभूति वर्णन का स्मरण दिला देता है। पुरुष या परमात्मा निमित्त कारण बनकर किस प्रकार सृष्टि निर्माण करता है इसका इस सूक्त मे निरूपण है। जिस प्रकार बालक के जन्म से पूर्व माता के स्तनों मे दूध उतर आता है उस ही तरह परमात्मा वृक्ष, पशु तृण, सूर्य, चन्द्रादि की उत्पत्ति मनुष्य से पूर्व कर देता है—अर्थात् भूत, भौतिक जगत् पुरुष सृष्टि से पूर्व हुआ है। पुरुषों के कर्मानुसार चार भेद हैं जिन्हे शरीर के अवयवो द्वारा वर्णित किया गया है, जैसे यह शरीर किसी एक भी अवयव के बिना अधूरा है, अपूर्ण है वैसे ही मनुष्य समाज का शरीर भी एक भी वर्ण के बिना अधूरा है, चारों वर्णो की ही सत्ता कर्म-व्यवस्था के लिये व लोक-व्यवस्था के लिये आवश्यक है। मनुष्यमात्र को आत्म-ज्ञान के द्वारा जीवन सफल बनाना चाहिए, यही पुरुष सूक्त का निगूढ़ रहस्य है।

१८—सृष्ट्युत्पत्ति या
Hymn of Creation (नासदीयसूक्त)

सृष्टि विचार सम्बन्धी इस नासदीयसूक्त मे सृष्टि का विकास सत् तत्व से हुआ है, यह कहा गया है। असत् से सृष्टि का निर्माण कभी नहीं हो सकता। जल सब से प्रथम प्रकट हुआ और इससे ही बुद्धितत्व का सृजन किया गया। यह बुद्धितत्व आग्नेय है या अग्नितत्व रूप है, अतएव उपनिषदों में "अग्ने रापः" यह वाक्य आता है, इस सूक्त में सांख्य सिद्धान्त को लेकर जगत्-निर्माण की चर्चा की गई है। आभु और तुच्छ यह दो विशेषण अव्याकृत स्वरूप की अवस्था को तमस् शब्द से सम्बोधित करते हैं, मानसिक सृष्टि सर्व प्रथम बनाई गई इस

बात का संकेत "मनोरेतः प्रथमं यत् आसीत्" इस वाक्य में किया गया है। सृष्टि की दुर्विज्ञेयता अथवा कारणवाद की गम्भीरता ऐसी है कि जिससे यह जानना कठिन है कि सृष्टि परमाणुओ से उत्पन्न हुई या सत्व, रज, तम नामक तीन तत्वों से बनी या माया से सम्भूत हुई। यह एक गुत्थी है जिसका निर्णय अभी तक नहीं हो सका है।

सृष्टि नियम को प्रवाहरूप से अनादि बतलाने के लिये "स्वधा" और "प्रयति" यह दो विशेषण दिये हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि ऋत और सत्य सृष्टि के बनाने वाले हैं, इन दो नियमों में ही सारा संसार व्याप्त है जिसका कि अध्यक्ष 'परमे व्योमन्' आकाश में या आकाश की तरह व्यापक रूप मे रहता है। इस प्रकार सृष्टि का "अज्ञेयवाद" इन मंत्रों से सिद्ध किया गया है और इस गूढ़ तत्व को जानना ही मनुष्य-जीवन का ध्येय है। तम से प्रकाश मे आना और उस प्रकाश की सदा उपासना करते रहना ही मनुष्यता है तम या संसार पर्यायवाची शब्द हैं। प्रकाश या परमात्म-साक्षात्कार भी इसी प्रकार पर्यायवाची शब्द हैं। आत्मा का साक्षात्कार परमात्म-तत्व के साक्षात्कार से व्यतिरिक्त नहीं है, परमात्मा ही जगत् की गुत्थी को सुलझा सकता है—उसकी कृपा से इसकी जानकारी होने पर जीव सहसा कह उठता है कि—

"त्रिगुणाऽलौकिकीरज्जु,
मयादृष्टा जहातु माम्" इति।

सृष्टि की वास्तविकता दुर्बोधतम है यही इस सूक्त का तत्व है।

ऋक्सूक्तसंग्रहः

(१-१) अग्निसूक्तम्

संहिता-पाठः

१. अग्निमीळे पुरोहितं, यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ॥

पद-पाठः

अग्निम् । ईळे । पुरःऽहितम् । यज्ञस्य । देवम् । ऋत्विजम् ।
होतारम् । रत्नऽधातमम् ॥

परिचय—इस सूक्त का विश्वामित्र ऋषि है, अग्नि देवता और गायत्री छन्द है ।

१. सस्कृत व्याख्या:—यज्ञस्य=क्रियमाणदेवताद्याराधनकर्मणः पुरोहितम्—पुरोहितवदभीष्टसंपादकम् । यद्वा यज्ञस्य पूर्वभागे आहवनीयरूपेण संस्थितम् । अग्निर्वै देवानां होता—इतिश्रुतेः । देवं दानादिगुणयुक्तम् । होतारम्—होतृनामकमाह्वातारं वा देवानाम् । ऋत्विजम्=देवानामृत्विग्भूतम् । रत्नधातमम्=यागफलरूपाणां रत्नानां अतिशयेन धारयितारं पोषयितारं वा । अग्निम्=तन्नामकं देवम् । ईडे=स्तौमि । यद्वा—यज्ञस्येति पदं 'देव' मित्यनेनान्वेति—यज्ञस्य प्रकाशकमित्यर्थः ।

व्याकरणम्—ईडे=ईड स्तुतौ, लटि उत्तमपुरुषैकवचने रूपम् । उकारस्य ळकारो बह्वृचाध्येतृसम्प्रदायप्राप्तः । तदुक्तम्—

अज्मध्यस्थडकारस्य ळकारं बह्वृचाः जगुः ।
अज्मध्यस्थढकारस्य ळ्हकारं च यथाक्रमम् ॥ इति,

अग्निम्=एतिधातोरुत्पन्नादयनशब्दादकारमादाय, दहतेर्दग्धशब्दाद् गकारं गृहीत्वा यद्वा अनक्तिधातोः ककारं गकारे परिवर्त्य, नयतेर्नीः ह्रस्वो भूत्वा परो भवति। इत्थं धातुत्रयेण निष्पद्यतेऽग्निशब्दः। यद्वा—अगि धातोर्नि प्रत्यये न लोपेऽग्निशब्दः सिध्यति।

पुरोहितम्=पुर उपपदाद् दधातेः क्तप्रत्यये कृते धातो हिरादेशः।

रत्नधातमम्=रत्नोपपदधाधातोः क्विपि निष्पन्नाद् रत्नधा शब्दात्तमप् प्रत्यय.।

यज्ञस्येत्यत्र यजधातोर्नङ् प्रत्यये षष्ठ्यन्तं रूपम्।

अग्निम्=मैं (विश्वामित्र) अग्नि नाम के देवता की ईळे=स्तुति करता हूँ। जो अग्नि यज्ञस्य=यज्ञ का, पुरोहितम्=पुरोहित है, (अर्थात—जैसे राजा का पुरोहित राजा के अभीष्ट की पूर्ति करता है वैसे ही अग्नि यज्ञ के द्वारा यजमान की कमनाओं की पूर्ति करता है) तथा, देवम्=वह अग्नि दानादि गुणयुक्त है, एवं, होतारम्=जो अग्नि देवताओ का होता है, क्योकि लिखा है (अग्निर्वै देवाना होता इति) तथा रत्नधातमम्=यज्ञ, के फलस्वरूप रत्नो का अत्यधिक धारण करने वाला, देने वाला या पोषण करने वाला है।

विशेष:—मैक्डानल के मत मे "ईळे" का अर्थ 'महत्व गान करता हूँ' (magnify) है, यास्क के मत में "ईळे" का अर्थ "प्रार्थना करता हूँ" है।

संहिता-पाठः

२. अ॒ग्निः पूर्वे॑भि॒र्ऋषि॑भि॒र्, ईड्यो॒ नूत॑नैरु॒त।
स दे॒वाँ एह व॑क्षति॥

पद-पाठः

अ॒ग्निः। पूर्वे॑भि.। ऋषि॑ऽभिः। ईड्यः॑। नूत॑नैः। उ॒त।
स। दे॒वान्। आ। इ॒ह। व॒क्ष॒ति॒॥

२. संस्कृत व्याख्या:—(अयम्) अग्निः, पूर्वेभिः=पुरातनैर्भृग्वङ्गिरःप्रभृतिभिः, ऋषिभिः, ईड्यः=स्तुत्यः, नूतनैः उत=इदानीन्तनैरस्माभिरपि (स्तुत्य इत्यर्थः), सः=अग्निः (स्तुतः सन्), इह=अत्र (यज्ञे), देवान्=हविर्भुजः, आवक्षति=आवहतु ।

उतशब्दो यद्यपि विकल्पार्थे प्रसिद्धस्तथापि निपातत्वेनानेकार्थत्वादौचित्येनात्र समुच्चयार्थः ।

व्याकरणम् :—पूर्वेभिः=पूर्वशब्दाद्भिसि, बहुलंछन्दसीत्यनेनैसादेशाभावः ।

वक्षति=वहधातोर्लोडर्थे छान्दसो लट्, तस्य स्य प्रत्ययगतस्य यकारस्य लोपः । यद्वा—लेटि 'सिब्बहुलम्' इत्यनेन सिप् प्रत्ययेऽडागमे निष्पन्नम् ।

ईड्यः=ईड् स्तुतौ धातोर्यत् प्रत्यये निष्पन्नः ।

अग्निः=यह अग्नि, पूर्वेभिः=प्राचीन भृगु, अङ्गिरा आदि ऋषियो के द्वारा ईड्यः=स्तुति किया गया है, उत= और, नूतनैः=नवीन, विश्वामित्र आदि ऋषियो से भी स्तुति किया जाता है । सः=वही अग्नि, देवान= देवताओ को इह=इस यज्ञ मे, आवक्षति=प्राप्त करावे । 'वक्षति' यह लेट् लकार का प्रयोग है ।

संहिता-पाठः

३. अग्निना रयिमश्नवत्, पोषमेव दिवेदिवे ।
यशसं वीरवत्तमम् ॥

पद-पाठः

अग्निना । रयिम् । अश्नवत् । पोषम् । एव । दिवेऽदिवे ।
यशसम् । वीरवत्ऽतमम् ॥

३. सस्कृत व्याख्या.—(योऽयं स्तुत्योऽग्निस्तेन) अग्निना=

निमित्तभूतेन, (यजमानः) रयिम्=धनम्, अश्नवत्=प्राप्नोति। (यच्च धनम्) दिवे दिवे=प्रतिदिनम्, पोषम्=पुष्यमाणतया वर्धमानम् (न तु कदाचित् क्षीयमाणम्), यशसम्=दानादिना यशोयुक्तम्, वीरवत्तमम्=अतिशयेन पुत्रभृत्यादिवीरपुरुषोपेतम्। तुष्टोऽग्निरुक्तरूपं धनं ददातीत्यर्थः।

व्याकरणम्:—अश्नवत्=अश्नोतेर्लेटि, व्यत्ययेन तिपि, इकारलोपे, अडागमे निष्पत्तिः।

दिवे-दिवे=दिवशब्दात् सप्तम्याः 'सुपां सुलुगित्यादिना' 'शे'भावे नित्यवीप्सयोरिति द्वित्वे निष्पन्नम्।

यशसम्=यशोऽस्यास्तीति विग्रहे यशः शब्दात् मत्वर्थीयः अच्प्रत्ययः।

जो अग्नि होता के द्वारा स्तुति किया गया है उस अग्निना=अग्नि से, दिवेदिवे=प्रतिदिन, पोषमेव=बढ़ते हुए ही (कभी क्षीण न होने वाले), यशसम्=यशस्वी, वीरवत्तमम्=पुत्र, भृत्य आदि वीर पुरुषों से अत्यधिक युक्त, रयिम्=धन को, अश्नवत्=प्राप्त करता रहूं।

विशेष:—मैक्डानल के मत में "पोषम्" पद का अर्थ "कीर्ति-कारक" या प्रकाशकारक है, पुष्टि कारक नहीं, क्योंकि इसकी व्याख्या (glorious) शब्द के द्वारा की गई है।

संहिता-पाठः

४. अग्ने यं यज्ञमध्वरं, विश्वतः परिभूरसि।
स इद्देवेषु गच्छति।

पद-पाठः

अग्ने। यम्। यज्ञम्। अध्वरम्। विश्वतः। परिऽभूः। असि।
सः। इत्। देवेषु। गच्छति॥

४. संस्कृत व्याख्या:—(हे) अग्ने? (त्वम्) अध्वरम्=हिंसा-

रहितम्, अध्वरम्=हिंसारहितम्, यज्ञम्, विश्वतः=सर्वासु दिक्षु, परिभूः=परितः प्राप्तवान्, असि, स इत्=स एव यज्ञः, देवेषु (तृप्तिं प्रणेतुं स्वर्गे) गच्छति। प्राच्यादि-चतुर्दिक्षु यज्ञेऽऽहवनीयमार्जालीयगार्हपत्याग्नीध्रीयस्थानेषु वह्निः स्थाप्यते।

व्याकरणम्=अध्वरम्=न विद्यते ध्वरोऽस्येति। विश्वतः=विश्वशब्दात् सप्तम्यर्थे तसिल् प्रत्ययः।

हे अग्ने तू, यम्=जिस, अध्वरम्=हिंसारहित (क्योंकि अग्नि के द्वारा रक्षित यज्ञ को राक्षसादि हिंसित नही कर सकते) यज्ञम्=यज्ञ को, विश्वतः=सब दिशाओंमें, परिभूरसि=प्राप्त हो रहा है। स इत्=वही यज्ञ, देवेषु गच्छति=देवताओं की तृप्ति करने के लिए प्राप्त होता है अर्थात् यह अग्नि प्राची दिशा में आहवनीय अग्नि के द्वारा, प्रतीची में गार्हपत्य के द्वारा और दक्षिण में मार्जालीय अग्नि के द्वारा और उत्तर में आग्नीध्रीय नामक अग्नियों के द्वारा देवताओं को तृप्त करता है।

विशेष—मैक्डानल के मत मे यज्ञ का अर्थ (worship) और अध्वरम् का (sacrifice) है।

संहिता-पाठः

५. अग्निर्होता कविक्रतुः, सत्यश्चित्रश्रवस्तमः।
देवो देवेभिरागमत्॥

पद-पाठः

अग्निः। होता। कविऽक्रतुः। सत्यः। चित्रश्रवःऽतमः।
देवः। देवेभिः। आ। गमत्॥

५. संस्कृत व्याख्या:—(अयम्) देवः=देवस्वरूपः, होता=होमनिष्पादकः, कविक्रतुः=क्रान्तप्रज्ञः क्रान्तकर्मा वा, सत्यः=अनृतरहितः (अवश्यंफलदाता), चित्रश्रवस्तमः=अतिशयेन विविधकीर्तियुक्तः, देवेभिः=हविर्भोजिभिरन्यैर्देवैः सह, आगमत्=अस्मिन् यज्ञे समागच्छतु।

व्याकरणम्:—चित्रश्रवस्तमः=श्रूयत इति श्रवः कीर्तिः। चित्रोपपदात् श्रवस् शब्दात् तमप्।

आ+गमत्=आगच्छत्वित्यर्थे लोडन्तस्य गमे छन्दस्यभावः। उकार लोपश्छान्दसः, एवं च आ गमदिति रूपं लोटि प्रथमपुरुषैकवचने। सत्यः=सत्सु साधुः सत्यः। सत्यादशपथे ५।४।६६ इति सूत्रेण निपातनात्।

यह अग्निः=अग्नि देवता जो, होता=होम को निष्पन्न करने वाला कविक्रतुः=अतीत अनागत यज्ञादि कर्मों का जानने वाला, सत्यः=मिथ्या से शून्य अर्थात् निश्चय रूप से फल देने वाला, चित्रश्रवस्तमः—विचित्र अनेक प्रकार की कीर्तिवाला, देवः=स्वयं प्रकाशमान् या प्रकाशशील, होता हुआ, देवेभिः=हवि के भोक्ता देवगणों के साथ, आगमत्=इस यज्ञ मे पधारे। 'लोट्' लकार का प्रयोग है।

विशेष—मैक्डानल के मत मे 'होता' शब्द का अर्थ आह्वान करने वाला (invoker) है।

संहिता-पाठः

६. यदङ्ग दाशुषे त्वम्, अग्ने भद्रं करिष्यसि।
तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः॥

पद-पाठः

यत्। अङ्ग। दाशुषे। त्वम्। अग्ने। भद्रम्। करिष्यसि।
तव। इत्। तत्। सत्यम् अङ्गिरः॥

६. संस्कृत व्याख्याः—अङ्ग, इत्यभिमुखीकरणार्थे, हे अग्ने, त्वम् (पूर्वोक्तगुणविशिष्ट, दाशुषे=हविर्दत्तवते यजमानाय, यद् भद्रम्=कल्याणम् (वित्तगृहप्रजापशुरूपम्) करिष्यसि, तत् (भद्रम्) तव इत्=तवैव। हे अङ्गिरः, एतत् सत्यम् (नत्वत्र कश्चिद् विसंवादोऽस्ति)

व्याकरणम्—दाशुषे=दाशृ (दाने) धातोः 'दाश्वानित्यादिना' ६।१।१२। क्वसु प्रत्ययः। भद्रम्=भदि (कल्याणे) धातोर्निपातनाद् र प्रत्ययः।

अङ्गिरः—'अङ्गिरा अङ्गारा' 'इति यास्कः' येऽङ्गारा आसंस्तेऽङ्गिरसोऽभवन्निति (ऐतरेय ब्रा०) तस्मादङ्गिरो नामकमुनिकारणत्वादङ्गाररूपस्याग्नेऽरङ्गिरस्त्वम्। गत्यर्थकादगिधातोरौणादिकः इरच् प्रत्ययः।

अङ्ग=हे अग्ने=अग्नि देवता, त्वम्=तू, दाशुषे=हवि का दान करने वाले (यजमान के लिए), यत्=जो, भद्रं=धन, गृह, प्रजा पशु आदि रूप कल्याण, करिष्यसि=करेगा, तत्=वह कल्याण,तव=तेरे, इत्=ही (सुख का कारण है। क्योंकि यजमान धनयुक्त होकर बडे-बडे यज्ञो को करके अग्नि की ही पूजा या प्रसन्नता करता है) अतः हे अङ्गिरः=अङ्गार रूपी अग्निदेवता अथवा अङ्गिरा नामक मुनि के जन्म देने वाले अग्नि! यह सब सत्यम्=सच ही है, इसमे कोई भी सन्देह नही है।

संहिता-पाठः

७. उप॑ त्वाग्ने दि॒वेदि॑वे॒, दोषा॑वस्तर्धि॒या व॒यम्।
नमो॒ भर॑न्त॒ एम॑सि ॥

पद-पाठः

उप॑। त्वा॒। अ॒ग्ने॒। दि॒वेऽदि॑वे। दोषा॑ऽवस्तः। धि॒या। व॒यम्।
नम॑ः भर॑न्तः। आ। इ॒म॒सि॒ ॥

७. संस्कृत व्याख्या :—हे! अग्ने, वयम्=अनुष्ठातारः, दिवेदिवे=प्रतिदिनम्, दोषावस्तः=रात्रिन्दिवम्, धिया=बुद्धया, नमः=नमस्कारम् भरन्तः=सम्पादयन्तः, उप त्वा=तव समीपम्, एमसि=आगच्छामः।

व्याकरणम्—दोषावस्तः=दोषा (रात्रिः) वस्तर् (दिनम्), दोषा च वस्तश्चेत्यनयोः समाहारः दोषावस्तः।

भरन्तः=भृ, धातोः शपि, शतृप्रत्यये निष्पत्तिः । एमसि='इदन्तोमसि' इति मसः इकारोऽन्ते उपसृष्टः ।

हे अग्ने=हे अग्नि देवता, वयम्=हम यज्ञ करने वाले, दिवेदिवे=प्रतिदिन, दोषावस्तः=रात और दिन, धिया=एकाग्र बुद्धि से, नमोभरन्तः=नमस्कार करते हुए, त्वा=तुझ को, उप एमसि=प्राप्त करें, अर्थात् तेरी शरण मे जायें ।

विशेषः—मैक्डानल के मत मे "दोषावस्तः" पद सम्बोधन है । सायण के समान सप्तम्यन्त पद नही, तथा इसका अर्थ अन्धकार के दूर करने वाले या निराशा के हटाने वाले (O ! illuminer of gloom) है ।

संहिता-पाठः

८. राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् ।
वर्धमानं स्वे दमे ॥

पद-पाठः

राजन्तम् । अध्वराणाम् । गोपाम् । ऋतस्य । दीदिविम् ।
वर्धमानम् । स्वे । दमे ॥

८. संस्कृत व्याख्याः—पूर्वमन्त्रे 'उप त्वा एमसि' इति यदुक्तं तत्र 'त्वा' इत्यस्य विशेषणमन्यद् वक्ति । कीदृशं त्वाम्—राजन्तम्=देदीप्यमानम्, अध्वराणाम्=हिंसारहितानां यज्ञानाम्, गोपाम्=रक्षकम्, ऋतस्य=सत्यस्य (कर्मफलस्य), दीदिविम्=पौनः पुन्येन द्योतकम्, स्वे दमे=स्वकीये गृहे (यज्ञशालायाम्) वर्धमानम् (हविर्भिरितिशेषः)

व्याकरणम् :—दीदिविम्=दिव् धातोर्यङ्लुङन्तात् किप्रत्यये दीदिविम् इति रूपम् ।

(पूर्व मन्त्र मे अग्नि को प्राप्त करे यह कहा गया है। इस मन्त्र मे प्राप्तव्य अग्नि के स्वरूप का वर्णन किया जा रहा है) हे अग्ने तू राजन्तम्=प्रकाशमान है, अध्वराणाम्=यज्ञो का, गोपाम्=रक्षक है, ऋतस्य=अवश्य भोगे जाने वाले कर्मफलो का, दीदिविम्=अत्यधिक प्रकाशक है, क्योंकि अग्नि में दी जाने वाली आहुति को देखकर शास्त्रो मे सिद्ध किये गए कर्मों का फल याद आ जाता है, तथा तू स्वे, दमे=अपने स्थानो पर, वर्धमानम्=बढ़ रहा है या लपटे ले रहा है। अग्नि का यह स्थान एकमात्र यज्ञवेदी ही है। इन द्वितीयान्त पदो का पूर्व-मन्त्रगत 'एमसि' के साथ अन्वय होता है।

विशेष:—मैक्डानल ने 'अध्वराणाम्' पद का सम्बन्ध सायण की तरह 'गोपाम्' के साथ नही किया, किन्तु 'राजन्तम्' के साथ किया है तथा यज्ञों का शासन करने वाला (ruling over sacrifice) यह अर्थ किया है।

संहिता-पाठः

९. स नः पितेव सूनवे, ऽग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये॥

पद-पाठः

सः। नः। पिताऽइव। सूनवे। अग्ने। सुऽउपायनः। भव।
सचस्व। नः स्वस्तये॥

९. संस्कृत व्याख्या.—हे अग्ने, सः=पूर्वोक्तगुणयुक्तस्त्वम्, नः=अस्मदर्थम्, सूपायनः=शोभनप्राप्तियुक्तः, भव। (तथा) नः=अस्माकम्, स्वस्तये=विनाशराहित्यार्थम्, सचस्व=समवेतो भव। (तत्रोभयत्र दृष्टान्तं ददाति) पितेवेति, यथा पुत्रार्थं पिता सुप्रापः प्रायेण समवेतो भवति—तद्वत्।

व्याकरणम् —सचस्वा = षच् धातोर्लोटि रूपम् । ऋचि तु नु —इति दीर्घः ।

हे अग्ने तू नः=हमारे लिए, सूपायन=शुभागमन वाला भव=बन तथा नः=हमारे, स्वस्तये=हानि को दूर करने के लिए, सचस्व=हमारे साथ संगति कर, जिस प्रकार सूनवे=पुत्र के लिए, पिताइव= पिता शुभ कामना करने वाला और कल्याण करने वाला होता है वैसे तू भी हमारे लिए हमारा हितकारी बन।

विशेषः—मैकडानल के मत में 'सचस्व' का अर्थ साथ रहना (abide-with) है।

अग्निसूक्त समाप्तः

(१-८५) मरुत्

संहिता-पाठः

१. प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयो
यामन्नुद्रस्य सूनवः सुदंससः ।
रोदसी हि मरुतश्चक्रिरे वृधे
मदन्ति वीरा विदथेषु घृष्वयः ॥

पद-पाठः

प्र । ये । शुम्भन्ते । जनयः । न । सप्तयः ।
यामन् । रुद्रस्य । सूनवः । सुऽदंससः ।
रोदसी इति । हि । मरुतः । चक्रिरे । वृधे ।
मदन्ति । वीराः । विदथेषु । घृष्वयः ॥

परिचय—इस सूक्त का गौतम ऋषि है, मरुत् देवता है पाचवे और बारहवे मन्त्र मे त्रिष्टुप् छन्द है, शेष मन्त्रो में जगती छन्द है।

१. संस्कृत व्याख्या:—ये मरुतः=मरुद्गणाः, यामन्=यामनि गमने निमित्तभूते सति, प्रशुम्भन्ते=प्रकर्षेण स्वीयान्यङ्गानि-अलङ्कुर्वन्ति। (तदलङ्करणम्) जनयो न=जाया इव (यथा योषितः स्वकीयान्यङ्गान्य-लङ्कुर्वन्ति तद्वत्)। 'पुनस्ते' सप्तयः=सर्पणशीलाः, रुद्रस्य सूनवः=परमेश्वरस्य पुत्राः, सुदंससः=शोभनकर्माणः (सन्ति), हि=यस्मात् (मरुतः), रोदसी=द्यावापृथिव्यौ, वृधे=वर्धनाय (वृष्टिप्रदानादिना), चक्रिरे=कृतवन्तः, 'पुनस्ते' वीराः=विशेषेण शत्रुक्षेपणशीलाः, घृष्वयः=घर्षणशीलाः, विदथेषु=यज्ञेषु, मदन्ति=सोमपानेन हृष्यन्ति।

व्याकरणम्—शुम्भन्ते=भौवादिकदीप्त्यर्थकात् शुम्भधातोर्लटि।

जनयः=जायन्ते आस्वपत्यानीति जनयो जाया। इन् सर्वधातुभ्यः इति इन्प्रत्ययः। यामन्=या प्रापणे। बाहुलकात् मनिन् प्रत्ययः। सप्तम्याः लुक्। घृष्वयः=घृषु संघर्षे। विन् प्रत्ययान्तो निपातितः।

ये मरुतः=जो मरुत् देवता, यामन्=जाते समय, प्र शुम्भन्ते=अपने अंगो को अच्छी तरह सजाते हैं। उसी प्रकार सजाते हैं न=(तरह) जिस प्रकार जनयः=स्त्रियाँ सजाती हैं। तथा ये मरुत् नामक देवता, सप्तयः=चलने वाले हैं, रुद्रस्य=परमेश्वर के, सूनवः=पुत्र हैं, सुदंससः=अच्छे कर्मवाले हैं, हि=क्योकि, मरुतः=मरुत् देवताओ ने, रोदसी=द्युलोक और पृथ्वीलोक को, वृधे=वृष्टि प्रदान के द्वारा बढाने के लिए, चक्रिरे=बनाया है। यही उसका सुदंसत्व है। तथा वे मरुत् वीराः=शत्रुओ को इधर उधर फैक देने वाले, या विशेषतया

प्रेरणा देने वाले और वृषयः=रगड़ने वाले, अर्थात् अपनी टक्कर से पहाड़ और पेड़ो को गिरा देने वाले हैं। अतः इस प्रकार के गुणों वाले मरुद्गण विदथेषु=यज्ञों मे, मदन्ति=सोमपान के द्वारा प्रसन्न होते हैं।

विशेषः—मैकड़ानल के मत में 'सुदंससः' का अर्थ आश्चर्य युक्त कार्यो को करने के कारण आश्चर्य वाले (wondrous) है।

संहिता-पाठः

२. त उक्षितासो महिमानमाशत
दिवि रुद्रासो अधि चक्रिरे सदः।
अर्चन्तो अर्कं जनयन्त इन्द्रियम्
अधि श्रियो दधिरे पृश्निमातरः॥

पद-पाठः

ते। उक्षितासः। महिमानम्। आशत।
दिवि। रुद्रासः। अधि। चक्रिरे। सदः।
अर्चन्तः। अर्कम्। जनयन्तः। इन्द्रियम्।
अधि। श्रियः। दधिरे। पृश्निऽमातरः।

२. संस्कृत व्याख्या.—(पूर्वोक्ताः) ते=मरुतः, उक्षितासः=अभिषिक्ताः सन्तः, महिमानम्=महत्वम्, आशत=प्राप्नुवन्। रुद्रासः=रुद्रपुत्राः ते, दिवि=द्योतमाने नभसि, सदः=सदनम्, अधिचक्रिरे=सर्वोत्कृष्टं कृतवन्तः, अर्कम्=अर्चनीयमिन्द्रम्, अर्चन्तः=पूजयन्तः, इन्द्रियम्=इन्द्रस्य वीर्यम्, जनयन्तः=(प्रहर भगवो जहि वीरयस्व' इति वाक्येन) उत्पादयन्तः, पृश्निमातरः=भूमेः पुत्राः (पृश्निर्नानारूपा भूमिः) ते मरुतः, श्रियः ऐश्वर्याणि, अधि दधिरे=आधिक्येनाधारयन्।

व्याकरणम्—उक्षितासः=उक्षसेचने, कर्मणि क्तः, असुक्।

पृश्निमातरः=प्राश्नुते सर्वाणि रूपाणि, इति पृश्निर्भूमिः सा माता येषां ते, 'ऋतश्छन्दसि' इति कपो निषेधः।

उक्त गुणोंवाले ते=वे मरुद्गण, उक्षितासः=देवताओं द्वारा अभिषिक्त होते हुए, महिमानम्=महत्त्व को, आशत=प्राप्त हो चुके हैं, वे रुद्रासः=रुद्र के पुत्र हैं। (यहा पुत्र के लिये पितृवाचक शब्द का प्रयोग किया गया है) दिवि=प्रकाशमान आकाश मे, सदः=स्थान को अधिचक्रिरे=अधिक या सर्वोत्कृष्ट बनाने मे समर्थ हुये हैं। इन्द्रियम्=इन्द्र के चिह्नभूत पराक्रम को जनयन्तः=उत्पन्न करते हुये और अर्कम्=पूजनीय इन्द्र को, अर्चन्तः=पूजते हुये, पृश्निमातरः=नाना रूपवाली भूमि ही है माता जिन की अर्थात् भूमि के पुत्र वे मरुद्गण, श्रियः=ऐश्वर्यों को अधिदधिरे=अधिकतया धारण करने वाले हो चुके हैं। (यहा पर इन्द्र को पराक्रमी बनाने के लिये 'प्रहर भगवः, जहि वीरयस्व, इत्यादि वाक्यों को मरुद् गण बोलते हैं।)

विशेष—मैक्डानल के मत में 'उक्षितासः' का अर्थ वीरो की वीरता को भगा देने वाले (having waxed strong) है तथा 'अर्कम् अर्चन्तः' का अर्थ अपना गाना गाते हुये (singing their songs) है।

संहिता-पाठः

३. गोमा॑तरो॒ यच्छु॒भय॑न्ते अ॒ञ्जिभि॑स्
तनू॒षु॑ शु॒भ्रा द॑धिरे वि॒रुक्म॑तः ।
बाध॑न्ते॒ विश्व॑मभिमा॒तिन॒मप॒
वर्त्मा॑न्येषा॒मनु॑ रीयते घृ॒तम् ॥

पद-पाठः

गोऽमा॑तरः । यत् । शु॒भय॑न्ते । अ॒ञ्जिऽभिः॑ ।
त॒नूषु॑ । शु॒भ्राः । द॒धि॒रे॒ । वि॒रुक्म॑तः ।

बाधन्ते विश्वम् । अभिऽमातिनम् । अप ।
वर्त्मानि एषाम् । अनु । रीयते । घृतम् ॥

३. संस्कृतव्याख्या—गोमातरः=गोरूपा पृथ्वीमाता येषां ते (मरुतः), अञ्जिभिः=रूपाभिव्यञ्जकैराभरणैः, यत्=यदा, शुभयन्ते=स्वकीयान्यङ्गानि शोभायुक्तानि कुर्वन्ति, (तदा) शुभ्राः=दीप्ता (मरुतः), तनुषु=स्वशरीरेषु, विरुक्मतः=विशेषेण रोचमानानलंकारान्, दधिरे=धारयन्ति । (अपि च), विश्वं=सर्वम्, अभिमातिनम्=शत्रुम्, अपबाधन्ते=हिंसन्ति । एषाम= मरुताम्, वर्त्मानि=मार्गान् (अनुसृत्य) घृतम्=क्षरणशीलमुदकम् रीयते= स्रवति । (यत्र मरुतो गच्छन्ति तदनुसारेण वृष्ट्युदकमपि तत्र गच्छतीत्यर्थः) ।

व्याकरणम्—=अञ्जिभिः=अन्ज् धातुः 'खनिकशि' इत्यौणादिक-सूत्रेण 'इ' प्रत्ययः ।

विरुक्मतः=विशिष्टा रुक विरुक्, तद्वन्तो, मतुप्, झल्वाद्=जश्त्वाभावः । अयस्मयादित्वेन पदत्वात्कुत्वम् ।

रीयते=रीङ् स्रवणे, श्यन् ।

शुभ्राः=शुभ 'दीप्तौ' इति धातोः स्फायितञ्चीति रक् प्रत्ययः ।

अभिमातिनम्='मीञ्' हिंसायाम् । भावे क्तः । अभिमात शब्दादिनिः, अभिमुखीभूय हिनस्ति इति अभिमाती शत्रुः ।

गोमातरः—गौ है माता जिनकी ऐसे मरुत् देवता, अञ्जिभिः—रूप को चमका देने वाले आभूषणों से, यच्छुभयन्ते—जब अपने अङ्गों को शोभित बनाते हैं, तब शुभ्राः—चमकदार वे देवता, तनूषु—अपने शरीरो पर, विरुक्मतः—चमकने वाले आभूषणो को, दधिरे—धारण करते हैं और विश्वम्—सम्पूर्ण, अभिमातिनम्—शत्रुओ को; अपबाधन्ते—मार डालते हैं, एषा—इन मरुत् देवताओ के, वर्त्मानि—मार्गों का, अनु—अनुसरण करके, घृतम्—टपकने वाला जल, रीयते—बहता है। जहा-जहॉ पर वायु

जाता है वृष्टि का जल भी मेघों के द्वारा वहीं-वहीं उड़-उड़ कर पहुँच जाता है।

विशेष—मैकडानल के मत में 'विरुक्मत' का अर्थ चमचमाते शस्त्रों को धारण करने वालों (they put on their bodies brilliant weapons) तथा 'घृतम्' का अर्थ चिकनाहट (fatness) है।

संहिता-पाठः

४. वि ये भ्राजन्ते सुमखास ऋष्टिभिः
प्रच्यावयन्तो अच्युता चिदोजसा।
मनोजुवो यन्मरुतो रथेष्वा
वृषव्रातासः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥

पद-पाठः

वि। ये। भ्राजन्ते। सुऽमखासः। ऋष्टिऽभिः।
प्रऽच्यावयन्तः। अच्युता। चित्। ओजसा।
मनःऽजुवः। यत्। मरुतः। रथेषु। आ।
वृषऽव्रातासः। पृषतीः। अयुग्ध्वम् ॥

४. संस्कृत व्याख्या—सुमखासः=शोभनयज्ञाः ये=मरुतः, ऋष्टिभिः= आयुधैः, वि भ्राजन्ते=विशेषेण दीप्यन्ते, (ते मरुतः) अच्युताः चित्= च्यावितुमशक्यानि दृढानि (पर्वतादीन्यपि), ओजसा=बलेन प्रच्यावयन्तः,= प्रकर्षेण च्यावयितारो भवन्ति। (तथाभूताः) हे, मरुतः मनोजुवः=मनोवेग-गतयः वृषव्रातासः=वृष्ट्युदकसेचनसमर्थसङ्घसंघात्मकाः (यूयम्) रथेषु= आत्मीयेषु। पृषतीः=पृषत्यः (मरुद्वाहनानां संज्ञा) (श्वेतबिन्दुयुक्ताः मृगीः) यत्=यदा, आ अयुग्ध्वम्=आभिमुख्येन नियुक्ता अकुरुध्वम्।

व्याकरणम्—मनोजुवः=क्विवाचीत्यादिना 'जु' धातोः क्विप्-दीर्घौ।

अयुग्ध्वम्='युजिर् योगे' लुङ् 'धि च' इति ८।२।२५ सलोपः।

सुमखासः=अच्छे यज्ञ करने वाले, जो मरुद्गण, ऋष्टिभिः=शस्त्रों से, विभ्राजन्ते=शोभायमान होते हैं, वे अच्युताः चित्=जो गिराये नहीं जा सकते ऐसे पर्वतादि को भी, ओजसा=अपने बल से प्रच्यावयन्तः= गिरा देने वाले, हे मरुतः=मरुद् गणो, मनोजुवः=मन के समान तेज गति वाले, वृषव्रातासः=वृष्टि के जल को गिराने में समर्थ सात वायुओं के संघर्ष स्वरूप तुम, रथेषु=अपने रथों मे, पृषतीः=सफेद बिन्दु वाली मृगियों को, यत्=जो आ अयुग्ध्वम् =जोड़ चुकते हो तब तुम्हारे रथ की गति से पर्वतादि गिर पड़ते हैं।

विशेषः—मैक्डानल के मत मे 'सुमखासः' का अर्थ=अच्छे योद्धा (great warriours) 'वृषव्रातासः' का अर्थ=शक्तिशाली सेना (strong hosts) है।

संहिता-पाठः

५. प्र यद्रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं
वाजे अद्रिं मरुतो रंहयन्तः।
उतारुषस्य विष्यन्ति धाराश्
चर्मेवोदभिर्व्युन्दन्ति भूम ॥

पद-पाठः

प्र । यत् । रथेषु । पृषतीः । अयुग्ध्वम् ।
वाजे । अद्रिम् । मरुतः । रंहयन्तः ।
उत । अरुषस्य । वि । स्यन्ति । धाराः ।
चर्मऽइव । उदऽभिः । वि । उन्दन्ति । भूम ॥

५. संस्कृतव्याख्या:—हे, मरुतः=मरुद्गणाः वाजे=अन्ने, अद्रिम्=मेघम् । रंहयन्तः=वर्षणार्थं प्रेरयन्तः, पृषतीः=पृषत्यो वाहनभूताः ताः, यत्=यदा, रथेषु'प्र' अयुग्ध्वम्=रथेषु प्रायूयुजत । उत=तदानीम्, अरुपस्य=आरोचमानस्य (सूर्यस्य वैद्युताग्नेर्वा सकाशात् वृष्ट्युदकधाराः) विष्यन्ति=विमुञ्चन्ति (ताः) धाराः=जलपरम्पराः, उदभिः=उदकैः, चर्मेव=चर्म यथा अप्रयानेन क्लेद्यते तथा, भूम=सर्वां भूमिम्, व्युन्दन्ति=विशेषेणार्द्रां कुर्वन्ति (भवन्तः)

व्याकरणम्:—रंहयन्तः='रहि' गतौ णिच् शता च। वि+ष्यन्ति='षो' ऽन्तकर्मणि दिवादित्वात् श्यन्, 'ओतः श्यनी' त्यनेनौकारलोपः। उपसर्गात्सुनोति, षत्वम् । व्युन्दन्ति='उन्दी' क्लेदने, भूम=भूमिशब्दात् सुपां सुलुगित्यादिना द्वितीयैकवचनस्य डादेशः। छान्दसं आकारस्य ह्रस्वत्वम् ।

हे मरुतः=हे मरुद्गणो, यत्=जब, पृषतीः=अपने हरिणीरूप वाहनो को, रथेषु=रथो मे, प्र अयुग्ध्वम्=जोड़ देते हो, वाजे=अन्न की उत्पत्ति के लिए, अद्रिम्=मेघ को, रंहयन्तः=वर्षा करने के लिए प्रेरणा देते हो, उत=उस समय, अरुषस्य=न चमकने वाले सूर्य की या बिजली की शक्ति से गिरने वाली, धाराः=जल की धाराएँ, विस्यन्ति=टपकने लगती हैं, वे धाराये उदभिः=जलो से, चर्मेव=चमड़े की तरह, भूम=सारी पृथिवी को, वि उन्दन्ति=गीला कर देती हैं।

विशेष:—मैक्डानल के मत मे 'वाजे' का अर्थ=तेज़ चलने वाली (हरिणी) (speeding) है, अन्न अर्थ नही है। अद्रिम् का अर्थ=युद्ध में पत्थर के समान दृढ़ (the stone in the conflict) है, मेघ अर्थ नहीं है। अरुषस्य=चमकदार [ruddy (steed)] (वाहनो की) धाराएँ पंक्तियाँ अर्थात् मृगी रूपी घोड़ो की पंक्तियाँ यह अर्थ है। इसका यह भाव है कि वे अपने शत्रु पर अपने वाहनो को चढ़ा देते हैं। 'चर्म' का अर्थ=त्वचा (skin) है।

संहिता-पाठः

६. आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो
रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः ।
सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं
मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः ॥

पद-पाठः

आ । वः । वहन्तु । सप्तयः । रघुऽस्यदः ।
रघुऽपत्वानः । प्र । जिगात । बाहुऽभिः ।
सीदत । आ । बर्हिः । उरु । वः । सदः । कृतम् ।
मादयध्वम् । मरुतः । मध्वः । अन्धसः ।

६.संस्कृतव्याख्या :—हे, मरुतः, वः=युष्मान् , रघुष्यदः=लघु-स्यन्दमानाः वेगेन गच्छन्त इत्यर्थः । सप्तयः=सर्पणशीला अश्वाः, आ वहन्तु= अस्मद्यज्ञं प्रापयन्तु । रघुपत्वानः=शीघ्रं पतन्तः (यूयम्) बाहुभिः= स्वहस्तैः । (अस्मभ्यं दातव्यं धनमाहृत्य) प्रजिगात=प्रकर्षेण गच्छत । वः= युष्माकम्, सदः=सदनम् (वेदिलक्षणं गृहम् स्थानम्) उरु=विस्तीर्णम् , कृतम्=तत्रास्तीर्णम्, (यत्) बर्हिः=कुशा, तत् आ सीदत=तस्मिन्नुपविशत । (उपविश्य च) मध्वः=मधुरस्य, अन्धसः=सोमलक्षणस्यान्नस्य (पानेन), मादयध्वम्=तृप्ता भवत ।

व्याकरणम् :—रघुस्यदः='स्यन्दू' प्रस्रवणे 'क्विप् चे'ति क्विप्, नलोपः । रघुपत्वानः='पतॢ' गतौ, 'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते' इति वनिप् । मादयध्वम्='मद' तृप्तियोगे, चुरादिः आत्मनेपदम् । जिगात='गा' स्तुतौ, जुहोत्यादिगणस्य लोण्मध्यमबहुवचने रूपम् । 'तप्तनप्तनथाश्च' इति तबादेशः,तस्य पित्वेन क्त्विाभावात् , ई हल्यघोः, इति ईत्वाभावः ।

हे मरुतः=हे मरुद् गणो, आपको, रघुष्यद्ः=तेज गति वाले, सप्तयः=

घोड़े, आवहन्तु=हमारे यज्ञ मे ले आवें। तथा, रघुपत्वानः=शीघ्र गमनशील आप, बाहुभिः= अपने हाथो से हमारे लिए (दातव्य धन लाकर) प्रजिगात=शीघ्र चले जाओ। हे मरुतः=मरुद्‌गणो! वह तुम्हारा, सदः=वेदिरूपी स्थान, उरु=विस्तृत, कृतम्=बना दिया गया है। वहाँ पर बिछाये हुए बर्हिः=कुशा के ऊपर, आसीदत=बैठिए, और बैठ कर मध्वः=मीठे, अन्धसः=सोमरूपी अन्न के पानविशेष के पीने से, मादयध्वम्=तृप्त हूजिए।

मैकडानल के मत में 'मादयध्वम्' सोम रस का आनन्द लेना (Rejoice) है, तृप्त करना नहीं।

संहिता-पाठः

७. तेऽवर्धन्त स्वतवसो महित्वना
नाकं तस्थुरुरु चक्रिरे सदः।
विष्णुर्यद्धावद्वृषणं मदच्युतं
वयो न सीदन्नधि बर्हिषि प्रिये॥

पद-पाठः

ते। अवर्धन्त। स्वऽतवसः। महिऽत्वना।
आ। नाकम्। तस्थुः। उरु। चक्रिरे। सदः।
विष्णुः। यत्। ह। आवत्। वृषणम्। मदऽच्युतम्।
वयः। न। सीदन्। अधि। बर्हिषि। प्रिये॥

७. संस्कृतव्याख्या :—ते=मरुतः, स्वतवसः=स्वाश्रयबलाः, अवर्धन्त=वृद्धिं गताः, (ततः), महित्वना=महत्त्वेन, नाकम्=स्वर्गम्, आ तस्थुः=आस्थितवन्तः। सदः=सदनम् (नभोलक्षणं स्थानम्), उरु=विस्तीर्णम्, चक्रिरे=कृतवन्तः। यत्=यदर्थम् येभ्यः मरुद्भ्यः, विष्णुः=विष्णुरेवागत्य, वृषणम्=कामाभिवर्षकम्, मदच्युतम्=हर्षस्यआसेक्तारम् (यज्ञम्),

ह आवत्='आगत्य'रक्षति ।(ते=मरुतः)वयो न=पक्षिण इव (शीघ्रमागत्य), बर्हिषि कुशायाम्, अधि=उपरि, प्रिये=प्रीतिकरे (नो यज्ञे), सीदन्=उपविशन्तु ।

व्याकरणम् :—मदच्युतम्=मदं च्योतति 'इति' 'च्युतिर्' आसेचने, क्विप् । सीदन् लिङर्थे लेटि, अडागमः । यत्=येभ्यः इत्यर्थः, सुपां सुलुगिति चतुर्थ्याः लुक् । आवत्=वर्तमाने छन्दसो लङ् । महित्वना=महित्वशब्दात् उत्तरस्य आङः व्यत्ययेन नाभावः, यद्वा आच् आदेशः, सुपां सुलुगिति नकारोपजनश्च ।

ते=वे मरुद् गण, स्वतवसः=अपने बल के आश्रित हुए(अर्थात् किसी अन्य के बल की अपेक्षा न रखने वाले) अवर्धन्न=वृद्धि को प्राप्त हुए हैं । और महित्वना=अपने महत्त्व से, नाकम्=स्वर्ग को, आतस्थुः=अधिकार मे कर चुके हैं । तथा सदः=आकाश रूपी स्थान को अपने रहने के लिये, उरु=विस्तीर्ण, चक्रिरे=बना चुके हैं । यत्=जिन मरुतों के लिये, वृषणम्=इच्छाओ की पूर्ति करने वाले, मदच्युतम्=हर्ष को देने वाले यज्ञ को, विष्णुः=भगवान् स्वयं, ह=प्रसिद्ध है कि, आवत् = रक्षा करता है, तथा जो मरुद्गण वयः=पक्षियो की, न=तरह, शीघ्रता से आते हैं, वे इस प्रिये=प्रीति देने वाले, बर्हिषि=यज्ञ मे, अधिसीदन्=आकर बैठें ।

मैक्डानल के मत में "मदच्युतम् वृषणम्" का अर्थ मस्त हुआ बैल (the bull reeling with intoxication) है, उसकी रक्षा विष्णु भगवान् स्वयं करते हैं ।

संहिता-पाठः

८. शूरा इवेद्युयुधयो न जग्मयः
श्रवस्यवो न पृतनासु येतिरे ।
भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्भ्यो
राजान इव त्वेषसंदृशो नरः ॥

पद-पाठः

शूराः ऽइव । इत् । युयुधयः । न । जग्मयः ।
श्रवस्यवः । न । पृतनासु । येतिरे ।
भयन्ते । विश्वा । भुवना । मरुत् ऽभ्यः ।
राजानः ऽइव । त्वेषऽसंदृशः । नरः ।

८. संस्कृतव्याख्या :—शूरा इव=शौर्योपेता युयुत्सवः पुरुषा इव, इत् इत्येतत्समुच्चये, युयुधयः=शत्रुभिर्युध्यमानाः, जग्मयः=शीघ्रं गच्छन्तः (मरुतः), श्रवस्यवो न=श्रवोऽन्नमात्मन इच्छन्तः पुरुषा इव, पृतनासु=संग्रामेषु, येतिरे=प्रयतन्ते । (तादृशेभ्यः) मरुद्भ्यः, विश्वा=सर्वाणि, भुवना=भूतजातानि, भयन्ते=बिभ्यति । (ये), नरः=नेतारः (मरुतः), राजान इव=नृपतय इव, त्वेषसंदृशः=दीप्तदर्शनाः (द्रष्टुमशक्याः) भवन्ति ।

व्याकरणम् :—युयुधयः=युधसंप्रहारे, 'उत्सर्गश्छन्दसि' इति वचनात् क्विन् प्रत्ययः, लिड्वद्भावाद् द्विर्भावादि । कित्वाद्गुणाभावः । जग्मयः= क्विन् प्रत्ययः, गमहनेत्युपधालोपः, द्विर्भावादि । श्रवस्यवः=श्रव इच्छति श्रवस्यति । "क्याच्छन्दसि" उ प्रत्ययः । भयन्ते='जिभी' भये, 'बहुलं छन्दसि' इति शपः श्लोरभावः । त्वेषसंदृशः='त्विष्' दीप्तौ, पचाद्यच्, 'दृशिर्' प्रेक्षणे, संपूर्वादस्मात् संपदादित्वात्, भावे क्विप्, बहुव्रीहिः ।

शूरा इव=शौर्य वाले पुरुषों की तरह योद्धाओं की तरह, युयुधयः= युद्ध की इच्छा करने वाले पुरुषों की, न=तरह, इत=और, वे जग्मयः= शीघ्र जाने वाले मरुद्गण, श्रवस्यवः=अपने लिए अन्न की या कीर्ति की इच्छा करने वाले, न=पुरुषों की तरह, पृतनासु=संग्राम मे, येतिरे= वृक्ष आदि के साथ युद्ध के लिए भिड जाते हैं। इस प्रकार मरुद्भयः= मरुद्गणों से, विश्वा भुवना=सारे प्राणी, भयन्ते=डरते हैं, जो नरः=वृष्टि आदि के ले जाने वाले मरुद्गण, राजानः इव=प्रकाशशील राजाओं की तरह, त्वेषसंदृशः=चमकदार अग्निपिण्ड के समान दमदमाते हुए

अर्थात् देखने वाले की आँखों को चकाचौंध करने वाले बन जाते हैं (उन मरुद्गणों से दुनिया डरती है।)

विशेषः— मैक्डानल के मत मे 'अवस्यवः' का अर्थ=यश चाहने वाले (fame-seeking) हैं, अन्न चाहने वाले नही। 'येतिरे' का अर्थ व्यूह रूप मे खड़ा करना (have arrayed) है, लड़ाई करना नहीं। त्वेष-संदृशः का अर्थ—भयानक आकृति वाले (terrible aspect) है, देदीप्यमान नहीं॥

संहिता-पाठः

९. त्वष्टा यद्वज्रं सुकृतं हिरण्ययं
सहस्रभृष्टिं स्वपा अवर्तयत्।
धत्त इन्द्रो नर्यपांसि कर्तवे-
ऽहन्वृत्रं निरपामौब्जदर्णवम्॥

पद-पाठः

त्वष्टा। यत्। वज्रम्। सुऽकृतम्। हिरण्ययम्।
सहस्रऽभृष्टिम्। सुऽअपाः। अवर्तयत्।
धत्ते। इन्द्रः। नरि। अपांसि। कर्तवे।
अहन्। वृत्रम्। निः। अपाम्। औब्जत्। अर्णवम्॥

९. संस्कृतव्याख्या :—स्वपाः=शोभनकर्मा, त्वष्टा=विश्वनिर्माता, यत्=यद्रूपम्, सुकृतम्=सम्यङ्निष्पादितम्, हिरण्ययम्=सुवर्णमयम्, सहस्रभृष्टिम्=अनेकधारायुक्तम्, वज्रम्=तन्नामकं शस्त्रम्, अवर्तयत्=इन्द्रं प्रत्यगमयत् दत्तवानित्यर्थः। तद्वज्रम्, इन्द्रः। नरि=संग्रामे, अपांसि=शत्रुहननादिलक्षणानि कर्माणि, कर्तवे=कर्तुम्, धत्ते=धारयति। (तेन वज्रेण) वृत्रम्=वृष्ट्युदकस्यावरकम्, अर्णवम्=मेघम्, अहन्=अवधीत्। अपाम्=अपः, निरौब्जत्=निःशेषेणाधोमुखमपातयत्।

व्याकरणम् :—हिरण्ययम् = हिरण्यशब्दान्मयट् ऋत्व्येत्यादिना

निपातनात् मकारलोपः। कर्तवे=कृ धातोः'तुमर्थे सेसेन' इति तवेन्प्रत्ययः। अपाम्=क्रियाग्रहणं कर्तव्यमित्यनेन कर्मणः सम्प्रदानत्वात् चतुर्थ्यर्थे षष्ठी। औब्जत्='उब्ज' आर्जवे, लङि रूपम्। अर्णवम्=अर्णसः मत्वर्थीयो वः सलोपश्च।

स्वपाः=सुन्दर कर्मों वाला, त्वष्टा=विश्व का बनाने वाला, यत्=जो, वज्रम्=वज्र को, अवर्तयत्=इन्द्र के लिए दे रहा था उस, सुकृतम्=अच्छे प्रकार बनाये गये, हिरण्ययम्=सोने के, सहस्रभृष्टिम्=हजारों धारा वाले वज्र को, इन्द्रः=इन्द्र, धत्ते=धारण करता है, जिससे वह नरि=युद्ध में, अपासि=शत्रुहनन आदि कर्मों को, कर्तवे=करने के लिए समर्थ हो सके। इस प्रकार वज्र को धारण कर उस वज्र से, वृत्रम्=वृष्टि जल को रोकने वाले, अर्णवम्=जल से भरे हुए मेघ को, अहन्=मारा और अपाम्=उसके द्वारा रोके गये जलों को, निरौब्जत्=नीचे गिरा दिया, अर्थात् बरसा दिया।

मैक्डानल के मत मे 'नरि' का अर्थ नरोचित, वीरतापूर्ण (manly) है। 'अपासि' का अर्थ कर्म (deeds) है, सायण की तरह संग्राम और शत्रु-हनन अर्थ नहीं है।

संहिता-पाठः

१०. ऊर्ध्वं नुनुद्रेऽवतं त ओजसा
दादृहाणं चिद्बिभिदुर्वि पर्वतम्।
धमन्तो वाणं मरुतः सुदानवो
मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे॥

पद-पाठः

ऊर्ध्वम्। नुनुद्रे। अवतम्। ते। ओजसा।
दादृहाणम्। चित्। बिभिदुः। वि। पर्वतम्।
धमन्तः। वाणम्। मरुतः। सुऽदानवः।
मदे। सोमस्य। रण्यानि। चक्रिरे॥

१०. संस्कृतव्याख्या :—अत्राख्यायिका, पिपासया पीडितो गोतमो मरुत उदकं ययाचे। ततो मरुतोऽदूरस्थं कूपमुद्धृत्य ऋषिसमीप अवस्थाप्य तत्र गर्तं कृत्वा गर्ते कूपमुत्सिच्य ऋषिं तर्पयांचक्रुः ॥इति॥ ते मरुतः, अवतम्=कूपम्, ऊर्ध्वम्=उपरि यथा स्यात्तथा, ओजसा=स्वबलेन, नुनुद्रे=प्रेरितवन्तः। (कूपमृषेराश्रमं प्रति नयन्तः मरुतो मार्गमध्ये) दादृहाणम्=प्रवृद्धं गतिनिरोधकम्, पर्वतम् चित्=पर्वतवन्तं शिलोच्चयम्, विबिभिदुः=विशेषेण बभञ्जुः। सुदानवः=शोभनदानाः ते मरुतः, वाणम्=शतसंख्याभिः तन्त्रीभिर्युक्तं वीणाविशेषम्, धमयन्तः=वादयन्तः, सोमस्य मदे=सोमपानेन हर्षे सति, रण्यानि=रमणीयानि धनानि, चक्रिरे=स्तोतृभ्यः कुर्वन्ति।

व्याकरणम् :—दादृहाणम्='दृह' 'दृहि' वृद्धौ लिटः कानच्। रण्यानि=रणतेर्भावे, वार्शरण्योरुपसंख्यानम् इत्यप्, भवेच्छन्दसि, इति यत्। धमन्तः=ध्मा धातोः शतृप्रत्ययः। वाणम्=वण् धातोः कर्मणि घञ्। यद्वा वा धातोर्ल्युटि छान्दसं णत्वम्।

विशेष :—(इस विषय में यह कहानी प्रसिद्ध है कि एक बार गौतम ऋषि प्यास से व्याकुल हुए और उन्होंने मरुद्गणों से पानी मागा, मरुद्-गणों ने पास ही एक कुआँ खोदा और जहाँ गौतम ऋषि बैठा था वहीं पर उस कुएँ को ले जाकर और उन्हीं के समीप एक चौबच्चा बना उसमें पानी भर ऋषि को जल पिला कर तृप्त किया। यही अर्थ इस ऋचा के द्वारा कहा गया है)।

ते मरुतः=उन मरुद् गणों ने अव=नीचे है, त=तल जिसका, इस अवतम्=अर्थात् कुएँ को, ऊर्ध्वम्=ऊपर तक पानी जिस प्रकार भर जावे इस प्रकार से, ओजसा=अपने बल से, नुनुद्रे=प्रेरणा की अर्थात् खोदा। इस प्रकार कुएँ को खोदकर उस ऋषि के आश्रम की ओर उस कुएँ को ले जाते हुए मरुद्गणों ने मार्ग में, दादृहाणम्=बढ़े हुये मार्ग को रोकने वाले, पर्वतम्=पर्व वाले पहाड़ को, चित्=भी, विबिभिदुः=तोड़ डाला,

सुदानवः=अच्छा दान देने वाले, मरुतः=मरुद्गणों ने, वाणम्=सौ तार वाली एक खास वीणा को, धमन्तः=बजाते हुए, सोमस्य=सोम-पान के बाद, मदे=हर्ष के होने पर, रण्यानि=स्तुति योग्य रमणीय धन को, चक्रिरे=स्तोताओं के लिए दान दिया या उत्पन्न किया।

मैक्डानल के मत में 'रण्यानि' का अर्थ=यशस्वी कर्म (glorious deeds) है।

संहिता-पाठः

११. जि॒ह्मं नु॑नुद्रेऽव॒तं तया॑ दि॒शा-
असि॑ञ्चन्नु॒त्सं गोत॑माय तृ॒ष्णजे॑ ।
आ ग॑च्छन्ती॒मव॑सा चि॒त्रभा॑नवः
कामं॒ विप्र॑स्य तर्पयन्त॒ धाम॑भिः ॥

पद-पाठः

जि॒ह्मम् । नु॒नु॒द्रे॒ । अ॒व॒तम् । तया॑ । दि॒शा ।
असि॑ञ्चन् । उत्स॑म् । गोत॑माय । तृ॒ष्णऽजे॑ ।
आ । ग॒च्छ॒न्ति॒ । ई॑म् । अव॑सा । चि॒त्रऽभा॑नवः ।
काम॑म् । विप्र॑स्य । त॒र्प॒य॒न्त॒ । धाम॑ऽभिः ॥

११. संस्कृतव्याख्या:—मरुतः, अवतम्=पूर्वोक्तमुद्धृतं कूपम्, तया दिशा=ऋषेर्दिशा, जिह्मम्=वक्रम्, नुनुद्रे=प्रेरितवन्तः, (ततः) तृष्णजे=तृषिताय, गोतमाय=तन्नाम्ने ऋषये, उत्सम्=जलप्रवाहम् असिञ्चन्=अवानयन्, 'ईम् पादपूरणार्थः' एनम्=ऋषिम्, चित्रभानवः=विचित्रदीप्तयः, (ते मरुतः) अवसा=रक्षणेन, आ गच्छन्ति=तत्समीपं प्राप्नुवन्ति। विप्रस्य=मेधाविनो गोतमस्य, कामम्=अभिलाषम्, धामभिः=आयुषो धारकैरुदकैः। तर्पयन्त=अतर्पयन् ॥

व्याकरणम् :— तृष्णजे='ञितृषा' पिपासायाम्, 'स्वपितृषोर्नजिङ्'

अथवा जनेर्डप्रत्ययः। आकारस्य ह्रस्वत्वम् संज्ञात्वात्। धाम='धा' धातोर्मनिन्।

मरुद्गणों ने खोदे हुए अवतम्=उस कुएँ को, जिह्मम् नुनुद्रे=टेढ़े रूप में बनाया। इस प्रकार के उस कुएँ को ऋषि के आश्रम में रख कर, तृष्णजे=प्यासे, गोतमाय=गौतम ऋषि के लिए, उत्सम्=जल प्रवाह को, तया दिशा=जिस ओर ऋषि बैठा था उस ओर, असिञ्चन्=पहुँचाया, अर्थात् नाली से चौबच्चे (water reservoir) में पानी भरा, ऐसा करने के बाद इस स्तुति करने वाले ऋषि के निकट, चित्रभानवः=विचित्र कान्ति वाले मरुद्गण, अवसा=रक्षा करते हुए, आगच्छन्ति=आते हैं, अर्थात् आकर बैठ गये। तथा धामभिः=आयु को धारण करने वाले जलों से, विप्रस्य=मेधावी गौतम ऋषि के, कामम्=इच्छाओं को, तर्पयन्त=तृप्त किया। यहाँ 'ईम्'=शब्द निरर्थक है, केवल पादपूर्ति के लिये प्रयुक्त हुआ है।

मैक्डानल के मत में 'विप्रस्य' का अर्थ=ऋषि (sage) है। 'धामभिः' का अर्थ शक्तियाँ (powers) है।

संहिता-पाठः

१२. या वः शर्म शशमानाय सन्ति
त्रिधातूनि दाशुषे यच्छताधि।
अस्मभ्यं तानि मरुतो वि यन्त
रयिं नो धत्त वृषणः सुवीरम्॥

पद-पाठः

या। वः। शर्म। शशमानाय। सन्ति।
त्रिऽधातूनि। दाशुषे। यच्छत। अधि।
अस्मभ्यम्। तानि। मरुतः। वि। यन्त।
रयिम्। नः। धत्त। वृषणः। सुऽवीरम्॥

१२. संस्कृतव्याख्या :—हे मरुतः, वः=युष्माकम्, या=यानि, शर्म=शर्माणि सुखानि गृहाणि वा, त्रिधातूनि=पृथिव्यादिषु त्रिषु स्थानेष्ववस्थितानि, शशमानाय=युष्मान् स्तुतिभिर्भजमानाय दातुम् संपादितानि, सन्ति। (यानि च) दाशुषे=हविर्दत्तवते, अधियच्छत=अधिकं प्रयच्छथ, हे मरुतः, तानि=शर्माणि, अस्मभ्यम्=प्रार्थयितृभ्यः, वियन्त=विशेषेण प्रयच्छत। किं च हे वृषणः=कामानां वर्षितारो मरुतः। नः=अस्मभ्यम्, सुवीरम्=शोभनपुत्रादिभिर्युक्तम्। रयिम्=धनम्, धत्त=दत्त।

व्याकरणम् :—शशमानाय='शश' प्लुतगतौ। ताच्छीलिकः चानश्, यन्त=यमेर्लोटि। बहुलं छन्दसीति शपोः लुकि तप्तनबिति तस्य तबादेशः। तस्य पित्वेन ङित्वाभावादनुनासिकलोपो न भवति। वृषणः=वृष् धातोः कनिन्। वा षः पूर्वस्य निगमे इति दीर्घाभावः।

मरुतः=हे मरुद्गणो ! वः=तुम्हारे, या=जो, शर्म=सुखदायक घर त्रिधातूनि=तीन स्थानो पर बने हुए हैं, वे घर शशमानाय=तुम मरुद्गणो की स्तुति के द्वारा उपासना करने वाले व्यक्ति के लिए ही, सन्ति=बनाये गये हैं, तथा जिन घरो को दाशुषे=हवि का दान देने वाले के लिए, अधि=अधिकतया, यच्छत=प्रदान करते हो, तानि=उन घरो को, अस्मभ्यम्=हम लोगो के लिए भी, वियन्त=विशेषतया दो, तथा हे वृषणः=इच्छाओ की पूर्ति करने वाले मरुद्गणो ! नः=हम लोगो के लिए सुवीरम्=शोभन पुत्रादि, रयिम्=धन को, धत्त=दान दीजिए।

विशेष:—मैक्डानल के मत मे 'शर्म' का अर्थ बचने के स्थान (shelters) है, घर नहीं। 'शशमानाय' का अर्थ स्पर्धा करने वाले व्यक्ति (zealous men) है, स्तुति करने वाले यजमान नहीं।

(१-१५४) विष्णुसूक्त

संहिता-पाठः

१. विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं
यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं
विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥

पद-पाठः

विष्णोः । नु । कम् । वीर्याणि । प्र । वोचम् ।
यः । पार्थिवानि । विऽममे । रजांसि ।
यः । अस्कभायत् । उत्ऽतरम् । सधऽस्थम् ।
विऽचक्रमाणः । त्रेधा । उरुऽगायः ॥

१. संस्कृतव्याख्या:—हे नराः, विष्णोः=व्यापनशीलस्य देवस्य वीर्याणि=वीरकर्माणि । नु कम्= अतिशीघ्रम्, प्रवोचम्=प्रब्रवीमि । यः =विष्णुः, पार्थिवानि=पृथिवीसम्बन्धीनि, रजांसि=अग्निवाय्वादिरूपाणि रजांसि, विममे=विशेषेण निर्ममे । यश्च विष्णुः, त्रेधा= त्रिप्रकारम्, विचक्रमाणः=स्वसृष्टान् लोकान् क्रममाणः, 'अतएव' उरुगायः=उरुभिर्महद्भिर्गीयमानः, उत्तरम्=उद्धुत्कृष्टतरम्, सधस्थम्=लोकत्रयाश्रयभूतमन्तरिक्षम्, अस्कभायत्=स्तम्भितवान् ।

व्याकरणम्:—अस्कभायत्=स्कम्भेः 'छन्दसि शायजपि' इति शायच् ।

परिचयः—इस सूक्त का ऋषि दीर्घतमस् है, और त्रिष्टुप् छन्द है ।

हे मनुष्यो ! विष्णुः=व्यापनशील देवता के, वीर्याणि=वीरतायुक्त

कर्मों को, नु=और भी, कम्=शीघ्र, प्रवोचम्=कहता हूँ। यः=जिस विष्णु ने, पार्थिवानि=पृथिवी सम्बन्धी, रजांसि=मनुष्यों के मन को या रंजन करने वाले अग्नि, वायु और आदित्य आदि लोकविशेषों को, विममे=विशेष रूप से बनाया (ऋग्वेद के १।१०८।९ 'यदिन्द्राग्नी' इत्यादि मन्त्र के अनुसार पृथिवी शब्द तीनों लोकों का वाचक है।), तथा जिस विष्णु ने उत्तरम्=उद्गततर=अतिविस्तीर्ण, सधस्थम्=सह-स्थिति वाले तीनो लोकों के आश्रयभूत अन्तरिक्ष लोक, अस्कभायत्=आधार रूप से बनाया है, (अथवा जिस विष्णु ने पृथ्वी सम्बन्धी भूः आदि सात लोकों को बनाया व पुण्यात्माओं के साथ रहने के योग्य उत्तम लोकों को जब बनाया है)। तब इन लोकों के निर्माण के समय विष्णु ने तीन प्रकार से क्रमण किया और इस ही कारण वह उरुगाय=महान्, अर्थात् महर्षि एवं विद्वानों से गीयमान (स्तूयमान) स्तुति योग्य बना (ऐसे विष्णु के मैं पराक्रमों का वर्णन करता हूँ)।

(त्रेधा=त्रेधा शब्द छन्दःपूर्ति के लिये त्र-ये-धाः इस प्रकार उच्चारण किया जायगा।)

उरुगाय=का अर्थ अधिक कीर्ति वाला भी है।

संहिता-पाठः

२. प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण
मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्व्-
अधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥

पद-पाठः

प्र । तत् । विष्णुः । स्तवते । वीर्येण ।
मृगः । न । भीमः । कुचरः । गिरिऽस्थाः ।

यस्य । उरुषु । त्रिषु । विक्रमणेषु ।
अधिऽक्षियन्ति । भुवनानि । विश्वा ॥

२. संस्कृतव्याख्या :—यस्य=विष्णोः, उरुषु=विस्तीर्णेषु, त्रिषु=त्रिसंख्याकेषु, विक्रमणेषु=पादप्रक्षेपेषु, विश्वा=सर्वाणि, भुवनानि=भूतजातानि, अधि क्षियन्ति=आश्रित्य निवसन्ति । स विष्णुः, वीर्येण=स्वकीयेन वीरकर्मणा (स्तवते=स्तूयते) भीमः=भीतिजनकः, कुचरः=कुत्सितहिंसादिकर्ता, दुर्गमप्रदेशगन्ता वा, गिरिष्ठाः=पर्वताद्युन्नतप्रदेशस्थायी, (सर्वैः स्तूयते) इति पूर्वेणान्वयः ।

व्याकरणम् :—स्तवते=स्तूधातोः स्तूयते इति स्थाने व्यत्ययेन शपि निष्पन्नम् ।

'तत्' पद को लिग व्यत्यय से पुंलिंग 'सः' मानना चाहिये और यह विष्णु का विशेषण है। 'प्र' इस उपसर्ग का 'स्तवते' क्रिया के साथ अन्वय है। तत्=वह विष्णु, वीर्येण=अपने पराक्रमयुक्त कार्यों से, स्तवते=सब से स्तुति किया जाता है (कर्म मे व्यत्यय से शप् प्रत्यय हुआ है)। न=जिस प्रकार, मृगः=विरोधियों को ढूँढ कर मारने से, सिंह, भीमः=भयदायक, कुचरः=कुत्सित हिंसादि कार्य करने वाला या दुर्गम प्रदेशों मे जाने वाला, गिरिष्ठाः=पर्वतादि उन्नत प्रदेशों में रहने वाला सिंह सब से स्तुति किया जाता है वैसे ही विष्णु की भी स्तुति की जाती है। तथा जिस विष्णु के उरुषु=विस्तीर्ण, त्रिषु=तीन, विऽक्रमणेषु=कदमों में, विश्वा=सम्पूर्ण, भुवनानि=भूत भौतिक पदार्थ, अधिऽक्षियन्ति=आश्रय लेकर निवास करते हैं। वह विष्णु स्तुतियोग्य है।

संहिता-पाठः

३. प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म
गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे ।

य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थम्
एको विममे त्रिभिरित्पदेभिः ॥

पद-पाठः

प्र । विष्णवे । शूषम् । एतु । मन्म ।
गिरिऽक्षिते । उरुऽगायाय । वृष्णे ।
यः । इदम् । दीर्घम् । प्रऽयतम् । सधऽस्थम् ।
एकः । विऽममे । त्रिऽभिः । इत् । पदेभिः ॥

३. संस्कृतव्याख्या :—यः=विष्णुः, इदम्=दृश्यमानम्, दीर्घम्=अतिविस्तृतम्, प्रयतम्=नियतम्, सधस्थम्=सहस्थानं लोकत्रयम्, त्रयम्, एकः इत्=एक एवाद्वितीयः सन्, त्रिभिः पदेभिः=त्रिसंख्याकैः पदैः, निर्ममे=विशेषेण निर्मितवान् । 'तस्मै' गिरिक्षिते=वाचि गिरिवदुन्नतप्रदेशे वा तिष्ठते, उरुगायाय=बहुभिर्गीयमानाय, वृष्णे=कामानां वर्षित्रे, विष्णवे=सर्वव्यापकाय, शूषम्=अस्मत्कृत्यादिजन्यं बलं महत्त्वम्, मन्म=मननं स्तोत्रं मननीयम् (विष्णुम्) एतु=प्राप्नोतु ।

व्याकरणम् :—शूषम्=शूषधातोर्घञि कृते सिद्धिः, गिरिक्षिते='क्षि' निवासे, क्विप्, तुगागमः । गिरि + क्षिते ।

विष्णवे=सर्वव्यापक के लिए, शूषम्=बल (हमारे कर्मों से उत्पन्न जो बल), मन्म=मननीय स्तुति योग्य है, (वह बल) हमें प्र एतु =विशेष रूप से प्राप्त हो । अर्थात् स्तुति के द्वारा हम लोग विष्णु के समान विशेष बल को प्राप्त करें । यः=जो कि विष्णु, गिरिक्षिते=वाणी में निवास करता है, अर्थात् स्तुति की वाणी में निवास करता है, अथवा उन्नत प्रदेश में रहता है, तथा उरुगायाय=बहुतों से गीयमान है, (वृष्णे) वृषन=हमारी इच्छाओं को पूर्ण करने वाला, तथा यः=जो विष्णु, इदम्=इस दीर्घम्=विस्तृत, प्रयतम्=पवित्र, या नियत=(नियम में बन्धे हुए), सधस्थम=तीनों लोकों को, एक, इत्=अकेला ही, त्रिभिः=तीन,

पदेभिः पैरो से, विममे=विशेष रूप से अन्तर्गत करता है, या कर चुका है।

विशेषः—'शूषम्'=बल शत्रुओं का शोषक है इसलिये यह 'शूष' कहलाता है।

संहिता-पाठः

४. यस्य त्री पूर्णा मधुना पदान्य्
अक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति।
य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्याम्
एको दाधार भुवनानि विश्वा॥

पद-पाठः

यस्य। त्री। पूर्णा। मधुना। पदानि।
अक्षीयमाणा। स्वधया। मदन्ति।
यः। ऊँ इति। त्रिऽधातु। पृथिवीम्। उत। द्याम्।
एकः। दाधार। भुवनानि। विश्वा॥

४. संस्कृतव्याख्याः—यस्य=विष्णोः, मधुना=मधुरेण रूपेण यद्वा माधुर्येण पूर्णा=पूर्णानि त्री=त्रीणि, पदानि=पादप्रक्षेपणानि, अक्षीयमाणाः=अक्षीयमाणा, स्वधया=अन्नेन, मदन्ति=मादयन्ति (तदाश्रितजनान्) य उ=य एव, पृथिवीम्=भूमिम्, द्याम् उत=अन्तरिक्षं च, विश्वा भुवनानि=सर्वाणि भूतजातानि चतुर्दशलोकान् वा, त्रिधातु=पृथिव्यप्तेजोरूपधातु त्रयं विशिष्य दाधार=धृतवान्।

यस्य=जिस विष्णु के, मधुना=मधुर, दिव्य अमृत से, पूर्णा=पूर्ण, त्री=तीन, पदानि=चरण विन्यास, अक्षीयमाणा=क्षीण न होते हुए, संकुचित न होते हुए, स्वधया=अन्न के द्वारा, मदन्ति=आश्रितों को सुख पहुँचाते हैं, और यः=जो, उ=केवल विष्णु, पृथिवी=विस्तीर्ण पृथिवी-

लोक को, द्याम्=द्युलोक को, अन्तरिक्षलोक को, एकः=अकेला ही, विश्वा भुवनानि=चौदह लोकों को, त्रिधातु=पृथ्वी, जल, तेज इन तीन धारण कराने वाले पदार्थों से युक्त बना कर, दाधार=धारण किये हुए है।

विशेषः—मैक्डानल ने 'त्रिधातु' पद का अर्थ त्रिगुणित (बुद्धिमान्) है, यह किया है।

संहिता-पाठः

५. तद॑स्य प्रि॒यम॒भि पाथो॑ अश्यां
नरो॒ यत्र॑ देव॒यवो॒ मद॑न्ति।
उ॒रु॒क्र॒मस्य॒ स हि बन्धु॑रि॒त्था
विष्णोः॑ प॒दे प॑र॒मे मध्व॒ उत्सः॑ ॥

पद-पाठः

तत्। अ॒स्य॒। प्रि॒यम्। अ॒भि। पाथः॑। अ॒श्या॒म्।
नरः॑। यत्र॑। दे॒व॒ऽयवः॑। मद॑न्ति।
उ॒रु॒ऽक्र॒मस्य॑। सः। हि। बन्धुः॑। इ॒त्था।
विष्णोः॑। प॒दे। प॒र॒मे। मध्वः॑। उत्सः॑ ॥

५. संस्कृतव्याख्याः—अस्य=विष्णोः, प्रियम्=प्रियभूतम्। तत्=प्रसिद्धम्, पाथः=अन्तरिक्षं ब्रह्मलोकमित्यर्थः, अश्याम्=व्याप्नुयाम्। यत्र=यत्रस्थाने, देवयवः=देवं विष्णुं प्राप्तुमिच्छन्तः, नरः, मदन्ति=तृप्तिमनुभवन्ति (तदश्याम्)। (पुनश्च) उरुक्रमस्य=अत्यधिकं जगदाक्रममाणस्य, विष्णोः=व्यापकस्य, परमे=उत्कृष्टे, पदे=स्थाने, मध्वः=मधुरस्य, उत्सः=निष्यन्दो वर्तते, तदश्यामिति सर्वत्रान्वयः, इत्था=उक्तप्रकारेण, स हि बन्धुः=हितकरः विष्णुः सर्वेषाम्।

व्याकरणम्=देवयवः=देव+'यु' क्विप्, इत्था = इत्थमित्यर्थे, आत्वम्।

अस्य = इस महान् विष्णु के, प्रियम् = सर्वसेव्य अतएव प्रिय, पाथः = अन्तरिक्षलोक को अर्थात् ब्रह्मलोक को, अभि अश्याम = व्याप्त करूँ, प्राप्त होऊँ, यत्र = जिस ब्रह्मलोक में, देवयवः = विष्णु के दर्शन के इच्छुक, अर्थात् यज्ञादि के द्वारा विष्णु को प्राप्त करने की इच्छा वाले, नरः = मनुष्य, मदन्ति = तृप्ति का अनुभव करते हैं, या प्राप्त करते हैं (उस ब्रह्मलोक को मैं प्राप्त करूँ)। उरुक्रमस्य = अत्यधिक रूप मे तीनों लोको को प्राप्त करने वाले उस विष्णु व्यापक परमेश्वर के, परमे = उत्कृष्ट, केवल सुखात्मक, पदे = स्थान पर, स हि = वही ब्रह्मलोक, मध्वः = मीठे अमृत का, उत्सः = झरना है, अर्थात् ब्रह्मलोक मे भूख-प्यास, जरा-मरण और पुनरावृत्ति का भय नही रहता। वहाँ संकल्पमात्र से अमृत की नदियो की उत्पत्ति होती है। इत्था = इस प्रकार, स हि बन्धुः = वह सब शुभ कर्मों के करनेवालो का हितकारी है।

संहिता-पाठः

६. ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै
यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः
परमं पदमव भाति भूरि॥

पद-पाठः

ता। वाम्। वास्तूनि। उश्मसि। गमध्यै।
यत्र। गावः। भूरिऽशृङ्गाः। अयासः।
अत्र। अह। तत्। उरुऽगायस्य। वृष्णः।
परमम्। पदम्। अव। भाति। भूरि॥

संस्कृतव्याख्या:—हे पत्नीयजमानौ, यत्र—येषु वास्तुषु, गावः = रश्मयः, भूरिशृंगाः = अत्यन्तोन्नत्युपेताः, अयासः = अतिविस्तृताः अत्यन्त-

प्रकाशयुक्ता वा, अत्राह=अत्र द्युलोके, उरुगायस्य=बहुभिः स्तुत्यस्य, वृष्णः=कामानां वर्षितुर्विष्णोः, परमम्=निरतिशयम्, पदम्=स्थानम्, भूरि=अतिप्रभूतम्, अव भाति=स्वमहिम्ना स्फुरति। वाम्=युष्मदर्थम्, ता=तानि, वास्तूनि=सुखनिवासयोग्यानि स्थानानि, गमध्यै=युवयोर्गमनाय, उश्मसि=कामयामहे। तदर्थं विष्णुं प्रार्थयामः।

व्याकरणम्—उश्मसि='वश्' कान्तौ 'लट्' उत्तमपुरुष 'बहुवचन', छान्दसं संप्रसारणम्।

अयासः=इण् धातोः अचि जसि 'आज्जसेरसुक्' इति असुक् 'गन्तारः इत्यर्थः, वाम्=युष्मदर्थमिति बहुत्वं द्विवचनस्थाने, गमध्यै='गम्' धातोस्तुमुनः स्थाने 'तुमर्थे सेसेनेत्यादिना 'शध्यै' प्रत्ययः।

हे यजमान और हे उसकी पत्नी! वाम=तुम दोनो के लिए, ता=उन, वास्तूनि=निवास योग्य स्थानो को, गमध्यै=जाने के योग्य, उश्मसि=चाहते हैं अर्थात् तुम दोनो के लिए उन स्थानों की प्राप्ति के लिए हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं। यत्र=जहाँ पर, भूरिश्रृंगाः=अनेक प्रकार से फैलने वाली, गावः=किरणे, अयासः=निवास करती हैं। अत्र यहीं पर, अह=निश्चय करके, उरुगायस्य=महात्माओ से स्तुति योग्य, वृष्णः—इच्छाओं की पूर्ति करने वाले विष्णु भगवान् का परमं पदं=सर्वोत्कृष्ट स्थान अन्तरिक्षलोक, भूरि=अत्यधिक रूप से, अवभाति=प्रकाशित हो रहा है।

टिप्पणी:—इस मन्त्र मे मैक्डानल के अनुसार 'गौ' शब्द बैल का वाचक है और सायण और यास्क के अनुसार 'गौ' शब्द किरण का वाचक है।

(१-१६०) द्यावापृथिवी

संहिता-पाठः

१. ते हि द्यावापृथिवी विश्वशंभुव
ऋतावरी रजसो धारयत्कवी ।
सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते
देवो देवी धर्मणा सूर्यः शुचिः ॥

पद-पाठः

ते इति । हि । द्यावापृथिवी इति । विश्वऽशंभुवा ।
ऋतवरी इत्यृतऽवरी । रजसः । धारयत्कवी इति धारयत्ऽकवी ।
सुजन्मनी इति सुऽजन्मनी । धिषणे इति । अन्तः । ईयते ।
देवः । देवी इति । धर्मणा । सूर्यः । शुचिः ॥

१. सस्कृतव्याख्या :—ते हि=ते खलु प्रसिद्धे, विश्वशंभुवा=विश्वस्य सुखयित्र्यौ, ऋतावरी=ऋतवत्यौ, रजसः=उदकस्य (उदकोत्पत्तौ), धारयत्कवी= उदकोत्पादनाय अप्रयत्नवत्यौ, सुजन्मनी=शोभनजन्मवत्यौ, धिषणे= धर्षणोपेते, देवी=द्योतमाने, द्यावापृथिवी=द्यावापृथिव्योः, अन्तः=मध्ये, शुचिः=शुद्धः, देवः=दीप्यमानः सूर्यः, धर्मणा=प्रकाशोदकदानादिधारणेन युक्तः, ईयते=सर्वदा गच्छति ।

व्याकरणम् :—धारयत्कवी=धृ 'णिच्' शतृ, धारयन्त्यौ कवी चेति-धारयत्कवी, कं=जलं अस्ति यत्र तत्, कवि, स्त्रियौ कवी, मतुबर्थे कशब्दाद् विप्रत्ययः, यथा=धृष्विरित्यत्र । ऋतावरी=ऋतशब्दात् 'छन्दसीवनिपौ०' इति वनिप् , 'वनोरच' इति ङीब्रेफौ ।

परिचय—इस सूक्त का दीर्घतमस् ऋषि है, जगती छन्द है, द्यावापृथिवी देवता हैं ।

ते हि=उन प्रसिद्ध, द्यावापृथिवी=द्युलोक और पृथिवीलोक के, अन्तः=

मध्य मे, शुचिः=शुद्ध, विश्व का पवित्र करने वाला, देवः=चमकदार, दीप्तिमान्, सूर्यः=सूर्य भगवान्, धर्मणा=प्रकाशादि से युक्त हुआ, ईयते= सर्वदा गमन करता है। वे द्यावापृथिवी, विश्वशंभुवा= संसार का कल्याण करने वाली, ऋतावरी=जल वाली, रजसः= जल की उत्पत्ति मे, धारयत्कवी=जल को धारण करने वाली या जल के धारण करने के लिए यत्न करने के लिए (धारयत्=यत्न करने वाले, तथा क=जल, वि=वाले) या यह सूर्य का विशेषण है और 'धारयत्कवी' का अर्थ=कवि=ज्ञानो को, धारयत्=धारण करने वाला सूर्य। सुजन्मनी - सुन्दर जन्म वाली, धिषणे=धर्षण से युक्त अपने काम मे प्रगल्भता वाली; देवी=द्योतमान द्यावापृथिवी प्रतीत होती हैं।

मैक्डानल के मत मे 'ऋतावरी' का अर्थ=नियम मे रहने वाले (observing order) है। रजसः=वायु के, 'धारयत्कवी'=ऋषि रक्षक (supporting the sage of the air) है। 'धर्मणा' का प्राकृतिक नियम (fixed law) अर्थ है।

संहिता-पाठः

२. उरुव्यचसा महिनी असश्चता
पिता माता च भुवनानि रक्षतः।
सुधृष्टमे वपुष्ये३ न रोदसी
पिता यत्सीमभि रूपैरवासयत्॥

पद-पाठः

उरुऽव्यचसा। महिनी इति। असश्चता।
पिता। माता। च। भुवनानि। रक्षतः।
सुधृष्टमे इति सुऽधृष्टमे। वपुष्ये३ इति। न। रोदसी इति।
पिता। यत्। सीम्। अभि। रूपैः। अवासयत्॥

२. संस्कृतव्याख्या :—उरुव्यचसा=अतिविस्तीर्णे, महिनी=महत्यौ, असश्चता=असज्जमाने-परस्परवियुक्ते, पिता=पालयित्री (द्यौः), माता=निर्मात्री पृथिवी, च (इत्युभे) भुवनानि=भूतजातानि, रक्षतः=पालयतः। किं च, सुधृष्टमे=अतिशयेन प्रगल्भे, रोदसी=द्यावापृथिव्यौ, वपुष्येन=वपुषो हिते इव, (तथाहि) यत्=यस्मात्, सीम्=सर्वतः, पिता=पितृस्थानीया द्यौः, रूपैः=निरूपणसाधनैः, अभि अवासयत्=अधितिष्ठति (माता पिता च भुवनानि रक्षतः)।

व्याकरणम्:—उरुव्यचसा='व्यच्' विस्तारे 'असुन्' उरुव्यचः ययोस्ते, लोके तु व्याजीकरणमर्थः। असश्चता='षस्ज' गतौ छान्दसः 'जस्य' चः तेन सश्चतिः तस्मात् शतरि द्विवचने रूपम्।

उरुव्यचसा=अधिक व्यचस वाले अर्थात् अति विस्तीर्ण, महिनी=महान्, असश्चता=परस्पर न टकराने वाले, पिता=पालन करने वाला द्युलोक, और माता=बनाने वाली पृथिवी इस प्रकार ये दोनो लोक, भुवनानि=संसार की या प्राणियो की, रक्षतः=रक्षा करते हैं। सुधृष्टमे=अत्यधिक धृष्ट प्रगल्भ, रोदसी=द्युलोक और पृथिवी-लोक, वपुष्ये=शरीर के लिए हितकारी, न=पिता माता के समान प्राणियो के रक्षक हैं, यत्=क्योकि, सीम्=सब तरफ से, पिता=पितृ-स्थानीय द्युलोक, रूपैः=जानने के साधन प्रकाशो के द्वारा या वृष्टि आदि के द्वारा, अभ्यवासयत्=अधिष्ठित हो रहा है। अतएव द्यावापृथिवी संसार के रक्षक हैं।

मैक्डानल के मत में 'असश्चता' का अर्थ=श्रान्त न होने वाले या अपरिमेय (inexhaustible) है। तथा 'वपुष्ये' आदि विशेषण किसी स्त्री के हैं जो कि दृष्टान्त के रूप मे हैं। एवं='व ुष्ये' का अर्थ=सुन्दर स्त्री (fair women) 'सुधृष्टमे'=घमण्डी (most proud) है।

संहिता-पाठः

३. स वह्निः पुत्रः पित्रोः पवित्रवान्
पुनाति धीरो भुवनानि मायया ।
धेनुं च पृश्निं वृषभं सुरेतसं
विश्वाहा शुक्रं पयो अस्य धुक्षत ॥

पद-पाठः

सः । वह्निः । पुत्रः । पित्रोः । पवित्रऽवान् ।
पुनाति । धीरः । भुवनानि । मायया ।
धेनुम् । च । पृश्निम् । वृषभम् । सुऽरेतसम् ।
विश्वाहा । शुक्रम् । पयः । अस्य । धुक्षत ॥

३. संस्कृतव्याख्या:—पित्रोः=द्यावापृथिव्योः, पुत्रः=पुत्रस्थानीयः आदित्यः, पवित्रवान्=पावनरश्मिवान्, धीरः=धीमान्, स वह्निः=फलस्य धारकः, मायया=स्वप्रज्ञया, भुवनानि=भूतजातानि, पुनाति=पावयति प्रकाशयतीत्यर्थः । स एव, पृश्निम्=शुक्लवर्णाम्, धेनुम्=भूमिम्, सुरेतसम् =शोभनसामर्थ्यमुदकं वा, वृषभम्=सेक्तारम्, द्युलोकं च, विश्वाहा=सर्वकालम् मायया पुनातीत्यर्थः, किं च, अस्य=द्युलोकस्य द्युलोकं वा, शुक्रम् पयः=दीप्तम् पयःसदृशमुदकम्, धुक्षत=दोग्धि ।

व्याकरणम्:—पृश्निम्, 'पृच्छ' धातोः औणादिकः 'निङ्', धातूनामनेकार्थत्वाच्छुक्लवर्णामित्यर्थः । धुक्षत=दुहेश्छान्दसे लुङि 'शल इगुपधापनिटः क्सः' इति च्लेः क्सादेशः ।

पित्रोः—द्युलोक व पृथिवीलोक का, पुत्रः=पुत्र के समान सूर्य, पवित्रवान्=पावन किरणों से युक्त, धीरः=धीरतायुक्त, वह्निः=वहन करने वाला अर्थात् फलो का देने वाला जो सूर्य, मायया=अपनी बुद्धि से, भुवनानि=प्राणियों को, पुनाति=पवित्र या प्रकाशित करता

है, स=वही सूर्य, पृश्निम=श्वेत रंग वाली, धेनुम=तृप्ति करने वाली भूमि को, और सुरेतसम=सुन्दर सामर्थ्य वाले या जल वाले, वृषभम=पानी बरसाने वाले द्युलोक को, विश्वाहा=सर्वदा, पुनाति=पवित्र करता है (पुनाति क्रिया का आवृत्ति के द्वारा यहाँ भी अन्वय किया जाता है), तथा अस्य=इस द्युलोक का, शुक्रम्=दीप्तियुक्त, पयः=जल, धुक्षत=दुहता है अर्थात् सूर्य आकाश के द्वारा जल बरसाता है वह सूर्य इन दोनो के पुत्र के समान है। यह द्यावापृथिवी की स्तुति है।

मैक्डानल के मत में 'मायया' का अर्थ=ज्ञान (बुद्धि) नहीं किन्तु अद्भुत शक्ति (mysterious power) है। 'पृश्निम्' का अर्थ चितकबरी (speckled) है। 'सुरेतसम्' का अर्थ=वीर्यवान् (abounding in deed) है अर्थात् मैक्डानल ने धेनु और वृषभ का अर्थ गाय और बैल ही किया है।

अब द्यावापृथिवी के उत्पादक की स्तुति निम्न मन्त्र से की जाती है।

संहिता-पाठः

४. अयं देवानामपसामपस्तमो
यो जजान रोदसी विश्वशंभुवा।
वि यो ममे रजसी सुक्रतूयया-
जरेभिः स्कम्भनेभिः समानृचे॥

पद-पाठः

अयम्। देवानाम्। अपसाम्। अपःऽतमः।
यः। जजान। रोदसीइति। विश्वऽशंभुवा।
वि। यः। ममे। रजसीइति। सुक्रतुऽयया।
अजरेभिः। स्कम्भनेभिः। सम्। आनृचे॥

४. संस्कृतव्याख्या:—अयम् देवानाम्=सुराणां मध्ये, अपसाम्=तन्नामकानां मध्ये, अपस्तमः=अपां श्रेष्ठतमः, यः देवः, विश्वशंभुवा=सर्वप्रकारेण भूतानां सुखस्य भावयित्र्यौ, रोदसी=द्यावापृथिव्यौ, जजान=उत्पादितवान्, (तथा) यः देवः, रजसी=रञ्जनात्मिके 'द्यावापृथिव्यौ, विममे=विशेषेण परिच्छिनत्ति, (तच्च) सुक्रतूयया=शोभनकर्मेच्छया, अजरेभिः=अजीर्णैः दृढतरैः, स्कम्भनेभिः=गतिप्रबन्धसाधनैः शंकुभिः, समानृचे=सम्यक्-पूजितवान् स्थापितवानित्यर्थः।

व्याकरणम्:—आनृचे='ऋच' स्तुतौ। आत्मनेपदे, लिटि, रेफसामान्यात्, 'तस्मान्नुड् द्विहल', इत्यभ्यासस्य नुट्।

अयम्=यह देवता, देवानाम्=देवताओं मे, सर्वश्रेष्ठ है और अपसाम्=कर्म करने वालो मे, अपस्तमः=कर्मठतम है, यः=जो देव परमात्मा, विश्वशम्भुवा=संसार के सुखदायक, रोदसी=द्युलोक और पृथिवीलोक, को जजान=उत्पादित कर चुका है। तथा यः=जो देवता रजसी=रंजनात्मक द्यावापृथिवी को, सुक्रतूयया=अच्छे कर्म करने की इच्छा से, विममे=बनाता है विशेषतया उत्पन्न करता है। तथा अजरेभिः=जीर्ण न होने वाला दृढ़, स्कम्भनेभिः=गति के प्रतिबन्धक खूँटो से समानृचे=अच्छी तरह पूजा करता है, अर्थात् दृढ़ बना देता है।

मैक्डानल के मत मे 'अजरेभि.' का अर्थ=अनादि काल से होने वाले (unaging) हैं, और स्कम्भनेभिः का अर्थ=सहारा (support) है।

संहिता-पाठः

५. ते नो गृणाने महिनी महि श्रवः
क्षत्रं द्यावापृथिवी धासथो बृहत्।
येनाभि कृष्टीस्ततनाम विश्वहा
पनाय्यमोजो अस्मे समिन्वतम्॥

पद-पाठः

ते इति । नः । गृणाने इति । महिनी इति । महि । श्रवः ।
क्षत्रम् । द्यावापृथिवी इति । धासथः । बृहत् ।
येन । अभि । कृष्टीः । ततनाम । विश्वहा ।
पनाय्यम् । ओजः । अस्मे इति । सम् । इन्वतम् ॥

५. संस्कृतव्याख्याः—हे द्यावापृथिव्यौ, गृणाने=अस्माभिः स्तूयमाने सत्यौ, महि=महत्, श्रवः=सर्वत्र प्रसिद्धमन्नं कीर्ति वा, नः= अस्मभ्यम्, धासथः = धत्तम् । (तथा) बृहत्=अतिप्रभूतम्, क्षत्रम्=बलम् धासथः, येन=अन्नबलेन, विश्वहा=सर्वदा, कृष्टीः=प्रजाः, अभिततनाम= अभितो विस्तारयाम । 'किं च' पनाय्यम्=स्तुत्यम्, ओजः=बलम्, अस्मे=अस्मासु, 'सम्यक्' इन्वतम्=प्रवर्धयतम् ।

व्याकरणम्—ततनाम=तनोतेर्लेटि छान्दसो विकरणस्य श्लुः । 'आडुत्तमस्येत्याडागमः । धासथः=दधातेर्लेटि, अडागमः । 'सिब्बहुलम्' इति सिप् ।

ते=वे दोनों, द्यावापृथिवी=द्युलोक और पृथिवीलोक, गृणाने= हमारे द्वारा स्तुति किये जाते हुए, महिनी=महत्त्व वाले, महि=अत्यधिक, श्रवः=अन्न या यश को, नः=हम लोगो के लिए, धासथः=धारण करते हैं, तथा बृहत्=अधिक, क्षत्रम्=बल को, धासथः=धारण करते हैं। येन=जिस बल के द्वारा, विश्वहा=सब दिन, कृष्टीः=पुत्रादि रूपी प्रजा को, अभिततनाम=चारो तरफ खूब फैलावे, तथा पनाय्यम=प्रशंसनीय, ओजः=शरीर का बल, अस्मे=हममें, आप दोनों सम् इन्वतम् =अच्छी तरह बढ़ाइये ।

मैक्डानल के मत में 'महि' का अर्थ=पर्याप्त (ample) है, 'श्रवः' का अर्थ=राज्य (dominion) है।

(२-१२) इन्द्रसूक्त

संहिता-पाठः

१. यो जात एव प्रथमो मनस्वान् ।
देवो देवान्क्रतुना पर्यभूषत् ।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां
नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥

पद-पाठः

यः । जातः । एव । प्रथमः । मनस्वान् ।
देवः । देवान् । क्रतुना । परिऽअभूषत् ।
यस्य । शुष्मात् । रोदसी इति । अभ्यसेताम् ।
नृम्णस्य । मह्ना । सः । जनासः । इन्द्रः ॥

१. संस्कृतव्याख्याः—जनासः=हे असुरा', यो जात एव=जायमान एव सन्, प्रथमः=देवानां प्रधानभूतः । मनस्वान्=मनस्विनामग्रगण्यः । देवः=द्योतमानः, क्रतुना=वृत्रवधादिलक्षणेन स्वकर्मणा, देवान्=सर्वान् यागदेवान्, पर्यभूषत्=रक्षकत्वेन पर्यग्रहीत् । यस्य=इन्द्रस्य शुष्मात्=शरीरात् बलात्, रोदसी=द्यावापृथिव्यौ, अभ्यसेताम्=अबिभीताम्, नृम्णस्य=सेनालक्षणस्य बलस्य, मह्ना=महत्त्वेन युक्तः स इन्द्रः (अस्ति) नाहम् इति ।

व्याकरणम्:--पर्यभूषत्='भूष' अलंकारे, भौवादिः, लङि रूपम् । यद्वा- (अत्यक्रामत् इत्यर्थे) भवतेर्व्यत्ययेन क्सः 'श्रयुकः किति' इतीट् प्रतिषेधः । शुष्मात्='शुष' धातोर्मनिनि 'शुष्म' इति रूपम् । मह्ना='मह' धातोः इ प्रत्यये महि शब्दात् तृतीयैकवचने महिना, छान्दस इकारलोपः नृम्णस्य=नृ+'म्ना' (अभ्यासे)+क=नृम्णम् । नृणां मानमावृत्तिर्यत्र तन्नृम्णं प्रधनमित्यर्थः ।

परिचयः—इस सूक्त का गृत्समद नाम का ऋषि है और त्रिष्टुप् छन्द है। इसमे तीन प्रकार की कहानियाँ हैं—

१. एक ऋषि ने तपस्या की और इन्द्र के समान महान् शक्तिशाली शरीर बना लिया और आकाश और द्युलोक मे व्याप्त हो गया। उसे इन्द्र समझकर धुनि और चुमुरि नाम के दो दैत्य शस्त्र उठा कर मारने के लिए आये। ऋषि ने उनके भाव को समझकर इन्द्र की निम्नलिखित मन्त्रो के द्वारा पहचान बताई। यह कथा बृहद्देवता के अनुसार है।

२. महाभारत के अनुसार दो कथाएँ हैं, पहली में लिखा है कि इन्द्रादि देवता पृथु राजा के यज्ञ में गये और गृत्समद नाम का ऋषि भी वहाँ पहुँचा, इन्द्र के यज्ञ-आगमन की सूचना पाकर दैत्यगण उसे मारने की इच्छा से वहाँ पहुँचे, उन दैत्यो को देखकर इन्द्र गृत्समद की आकृति बना कर यज्ञशाला से बाहर निकला। गृत्समद की चलते समय राजा वैन्य ने बहुत पूजा की। दैत्यों ने उस गृत्समद को ही इन्द्र समझा और निकलते ही घेर लिया। तब गृत्समद ने उन दैत्यों को अपने और इन्द्र के भेदक चिह्न पृथक्-पृथक् बताये। यह भी कहा कि इन्द्र महान् है, मैं एक साधारण व्यक्ति हूँ।

३. दूसरी कथा इस प्रकार है कि गृत्समद ऋषि के यज्ञ में इन्द्र अकेला ही पहुँचा। अकेला जानकर दैत्यो ने घेर लिया। वह इन्द्र गृत्समद के रूप मे यज्ञशाला से भागा, पर दैत्यों ने इन्द्र यज्ञशाला से अभी तक नहीं निकला है और देर कर रहा है ऐसा सोचकर वे यज्ञशाला मे गये और देखा कि वहाँ एक और गृत्समद बैठा है और एक पहले ही जा चुका था तब असली गृत्समद को इन्द्र समझ लिया और उसको पकड़ा तब असली गृत्समद ने कहा कि मै इन्द्र नहीं हूँ बल्कि इन्द्र मुझ से भिन्न है। निम्नलिखित मंत्रो द्वारा सविस्तर यह भेद वर्णित किया गया है। जिसका यह पहला मन्त्र यहाँ से आरम्भ होता है—

जनासः=हे मनुष्यो! यः=जो इन्द्र, जातः=उत्पन्न होते ही,

प्रथमः=देवताओं मे प्रधानभूत, मनस्वान्=मनस्वियो में अग्रगण्य, देवः=द्युतिशील होता हुआ, क्रतुना=वृत्रवधादि कर्मों से, देवान=यज्ञ के देवताओं को, पर्यभूषत्=रक्षा के द्वारा अलंकार युक्त बनाता रहा है, या जो अन्य देवताओं को अतिक्रमण करके विद्यमान था। तथा यस्य =जिसके, शुष्मात्=शारीरिक बल से, रोदसी=द्युलोक और पृथिवीलोक, अभ्यसेताम्=काँपते थे, डरते थे। नृम्णस्य=सेना के, मह्ना=महत्त्व से, आधिक्य से युक्त है, वह इन्द्र है, अर्थात् मैं इन्द्र नहीं हूँ।

संहिता-पाठः

२. यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद्
यः पर्वतान्प्रकुपितां अरम्णात्।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो
यो द्यामस्तभ्नात्स जनास इन्द्रः॥

पद-पाठः

यः। पृथिवीम्। व्यथमानाम्। अदृंहत्।
यः। पर्वतान्। प्रऽकुपितान्। अरम्णात्।
यः। अन्तरिक्षम्। विऽममे। वरीयः।
यः। द्याम्। अस्तभ्नात्। सः। जनासः। इन्द्रः॥

२. संस्कृतव्याख्याः—हे जनासः, यः=इन्द्रः, व्यथमानाम्=चलन्तीम्, पृथिवीम्=महीम्, अदृंहत=शर्करादिभिर्दृढामकरोत्, यश्च, प्रकुपितान्=इतस्ततः चलितान् सपक्षान् पर्वतान्, अरम्णात्=नियमितवान्, यश्च, वरीयः=उरुतमम्, अन्तरिक्षम्, विममे=विस्तीर्णं चकार। यश्च, द्याम्=दिवम्, अस्तभ्नात्=तस्तम्भ (निरुद्धामकरोत्) स (एव) इन्द्रः नाहमिति।

व्याकरणम्:—अरम्णात्='रमु' क्रीडायाम्। अन्तर्भावितण्यर्थस्य व्यत्ययेन 'श्ना' प्रत्ययः। लङि एकवचनम्।

जनासः=हे मनुष्यो ! यः=जो, व्यथमानाम=हिलती हुई, पृथिवीम्=पृथिवी को, अदंहत्=स्थिर कर चुका है अर्थात् जिसने पृथिवी और पृथिवी पर रहने वाले प्राणियों को स्थैर्य और धैर्य प्रदान किया है, तथा जो प्रकुपितान=यथेच्छ घूमने वाले, पर्वतान्= खयुक्त पदार्थों को, अरम्णात्=नियमित कर देता है, अपने-अपने स्थानों पर स्थापित कर देता है, एवं यः=जो, वरीयः=विस्तृत, अन्तरिक्षम्=आकाश को, विममे=विस्तीर्ण रूप से निर्माण करता है, तथा यः=जो, द्याम्=द्युलोक को, अस्तभ्नात्=थामे हुए है, अथवा धारण किये हुए है वह इन्द्र है (मैं नहीं हूँ)।

संहिता-पाठः

३. यो हत्वाहिमरिणात्सप्त सिन्धून्
यो गा उदाजदपधा वलस्य ।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान
संवृक्समत्सु स जनास इन्द्रः ॥

पद-पाठः

यः । हत्वा । अहिम् । अरिणात् । सप्त । सिन्धून् ।
यः । गाः । उत्ऽआजत् । अपऽधा । वलस्य ।
यः । अश्मनोः । अन्तः । अग्निम् । जजान ।
समऽवृक् । समत्ऽसु । सः । जनासः । इन्द्रः ॥

३. संस्कृतव्याख्या :—यः, अहिम्=मेघम् । हत्वा=हननं कृत्वा, सप्त=सर्पणशीलाः, सिन्धून्=स्यन्दनशीला अपः, अरिणात् = प्रैरयत्, यद्वा गङ्गायमुनाद्याः सप्तनदीः अरिणात् । यश्च, वलस्य=वलनामकस्यासुरस्य, अपधा=निरुद्धाः, गाः, उदाजत्=निरगमयत् । यश्च, अश्मनोः=मृदुमेघयोः, अन्तः=मध्ये, अग्निम्=वैद्युतम् वह्निम्, जजान=उत्पादयामास, यश्च, समत्सु=संग्रामेषु, संवृक्=हिंसकः (विजेता) अस्ति, स इन्द्रः, नाहमिति ।

व्याकरणम् :—अरिणात् ='रीङ्' स्रवणे, क्र्यादिः, लङ् । अपधा= अपपूर्वाद्धधातेः 'आतश्चोपसर्गे' इति भावे 'अङ्' प्रत्ययः । 'सुपां सुलुगिति' पञ्चम्या आकारः । संवृक्=वृणक्ते हिंसार्थस्य क्विपि रूपम् ।

जनासः=हे मनुष्यो ! यः=जिस इन्द्र ने, अहिम्=वृत्रासुर को, हत्वा=विधारक वायु (जल रोकने वाली वायु), को रोक कर अरिणात्=मेघों को जल बरसाने वाला बनाया और (जल के रोकने वाले पर्वतों को दूर कर), जिसने सिन्धून्=नदियों को, सत=बहने वाली, सर्पणशील, गतिशील बनाया, तथा यः=जिसने, वलस्य= वल नामक दैत्य के द्वारा, अपधा=गुफा में बन्द की गई, गाः=गौओं को, उदाजत्=बाहर निकाला, अर्थात् बन्धन से मुक्त किया, तथा यः=जिसने, अश्मनोः=दो मेघों के, अन्तः=मध्य में, अग्निम्= बिजली नाम की अग्नि को, जजान=उत्पन्न किया । तथा जिसने, समत्सु=युद्धों मे, सं-वृक् =शत्रुओं का अच्छी तरह विनाश किया । वही इन्द्र है (मैं नहीं हूँ) ।

संहिता-पाठः

४. येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि
यो दासं वर्णमधरं गुहाकः ।
श्वघ्नीव यो जिगीवाँल्लक्षमाददर्
अर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥

पद-पाठः

येन । इमा । विश्वा । च्यवना । कृतानि ।
यः । दासम् । वर्णम् । अधरम् । गुहा । अकरित्यकः ।
श्वघ्नीऽइव । यः । जिगीवान् । लक्षम् । आदत् ।
अर्यः । पुष्टानि । सः । जनासः । इन्द्रः ॥

४. संस्कृतव्याख्याः—येन=इन्द्रेण, इमा=इमानि, विश्वा=सम्पूर्णानि, च्यवना=नश्वराणि भुवनानि, कृतानि=स्थिरीकृतानि, यश्च, दासं वर्णम्=शूद्रादिकम् (उपक्षपयितारम् वा), अधरम्=निकृष्टमसुरम्, गुहा=गुहायां गूढस्थाने नरके वा अकः=अकार्षीत्, लक्षम्=लक्ष्यम्, जिगीवान्=जितवान् यः, अर्यः=अरेः, पुष्टानि=समृद्धानि, श्वघ्नीव=व्याध इव, आदत्=आदत्ते, (तत्र दृष्टान्तः)।

व्याकरणम् :—अकः=करोतेर्लुङि 'मन्त्रे घस' इत्यादिना च्लेर्लुकि रूपम्। जिगीवान्='जि' जये, क्वसौ, 'सन्लिटोर्जेः' इति अभ्यासादुत्तरस्य कुत्वम् दीर्घश्छान्दसः। अर्यः=अरेः षष्ठ्येकवचने छान्दसो यणादेशः।

जनासः=हे मनुष्यो! येन=जिस इन्द्र ने, च्यवना=विनाशशील, विश्वा=संसार को, कृतानि=स्थिर किया, तथा यः=जिसने, दासं वर्णम्=शूद्रादि वर्णों को, या दासम्=रसों को नाश करने वाले, अधरम्=निकृष्ट, वर्णम्=कीर्तिशाली असुर को, गुहा=नरक मे, गूढ स्थान मे, अकः=स्थापित किया, तथा यः=जो इन्द्र, अर्यः=शत्रु के, पुष्टानि=धनो को, जिगीवान्=जीत चुका है। और जीतने के बाद जैसे श्वघ्नी=व्याध, लक्षम=बाण के लक्ष्यभूत मृग आदि को, आदत्=ग्रहण करता है, वैसे ही जो शत्रुधनो को ग्रहण कर चुका है वह इन्द्र है। (मैं नहीं हूँ)।

संहिता-पाठः

५. यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरम्
उतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम्।
सो अर्यः पुष्टीर्विज इवा मिनाति
श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः॥

पद-पाठः

यम् । स्म । पृच्छन्ति । कुह । सः । इति । घोरम् ।
उत । ईम् । आहुः । न । एषः । अस्ति ।
इति एनम् ।
सः । अर्यः । पुष्टीः । विजःऽइव । आ । मिनाति ।
श्रत् । अस्मै । धत्त । सः । जनासः । इन्द्रः ॥

५. संस्कृतव्याख्या :—हे जनाः, घोरम्=शत्रूणां घातकम्, यम्=इन्द्रम् (जनाः) पृच्छन्ति स्म, कुह=कुत्र, स इति । एनम्=इन्द्रम्, आहुः । एषः=इन्द्रः, न अस्ति इति, 'ईम्' इति पादपूरणे, सः=इन्द्रः, विज इव=उद्वेजक एव (इवशब्द एवार्थे) सन्, अर्यः=अरेः, पुष्टीः=पोषकानि गवाश्वादीनि धनानि, आमिनाति=सर्वतो हिनस्ति, (तस्मात्) अदस्मै=इन्द्राय, धत्त=अस्तीति विश्वासं कुरुत । सः=पूर्वोक्तमहिमोपेतः, इन्द्रः अस्ति नाहमिति ।

व्याकरणम् :—अर्यः=अरिशब्दस्य षष्ठ्येकवचने 'बहुलं छन्दसि' इति पूर्वरूपनिषेधाभावः ।

जनासः=हे मनुष्यो ! जिस इन्द्र के न देखने पर लोग पृच्छन्ति स्म=पूछते फिरते हैं, कि कुह सः=वह कहाँ है ?, उत=और इसको, घोरम्=इन्द्र को भयानक, आहुः=कहते है, एनम्=इस इन्द्र को कुछ, एष=यह इन्द्र, न अस्ति=है ही नही, यह भी कहते है, स=वही इन्द्र, विज इव=(घबरा देने वाला) उद्वेजक शत्रु की तरह, अर्यः=शत्रु के, पुष्टीः=धनो को, सम्पत्तियो को (गौ, अश्व इत्यादि धनो को) आमिनाति=सब तरफ से विध्वस्त कर देता है, अस्मै=उस इन्द्र के लिए, श्रत्=श्रद्धा को, धत्त=धारण करो । यद्यपि वह इन्द्र हमे दिखाई नहीं पड़ता फिर भी "वह है" ऐसा विश्वास करो । इस प्रकार के विश्वास और श्रद्धा का केन्द्र इन्द्र ही है (मैं गृत्समद नही हूँ) ।

संहिता-पाठः

६. यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य
यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः।
युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः
सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः॥

पद-पाठः

यः। रध्रस्य। चोदिता। यः। कृशस्य।
यः। ब्रह्मणः। नाधमानस्य। कीरेः।
युक्तऽग्राव्णः। यः। अविता। सुऽशिप्रः।
सुतऽसोमस्य। सः। जनासः। इन्द्रः॥

६. संस्कृतव्याख्या:—यः=इन्द्रः, रध्रस्य=समृद्धस्य, चोदिता=प्रेरयिता (भवति), यश्च, कृशस्य=दरिद्रस्य च, यश्च, नाधमानस्य=याचमानस्य, कीरेः=स्तोतुः। ब्रह्मणः=ब्राह्मणस्य च (धनानां प्रेरयिता), यश्च, सुशिप्रः=शोभनहनुः (सन्) युक्तग्राव्णः=अभिषवार्थमुद्यतग्राव्णः, सुतसोमस्य=अभिषुतसोमस्य यजमानस्य, अविता=रक्षिता (भवति), स एव इन्द्रः नाहमिति।

व्याकरणं स्पष्टम्।

जनासः=हे मनुष्यो! यः=जो इन्द्र, रध्रस्य=समृद्धिशाली व्यक्ति का, चोदिता=उसके लिए धन की प्रेरणा करने वाला या धन प्रदान करने वाला, है और यः=जो, कृशस्य=दरिद्र, नाधमानस्य=याचक की, और कीरेः=स्तुति करने वाले, ब्रह्मणः=ब्राह्मण की भी, चोदिता=धन की इच्छा की पूर्ति करने वाला है। और सुशिप्रः=अच्छी ठोढ़ी वाला या सुन्दर मुँह वाला, यः=जो, युक्तग्राव्णः=पीसने के लिए पत्थर उठाने वाले या चक्की चलाने वाले, सुतसोमस्य=सोम को कूट कर

उसका रस निकालने वाले यजमान का, अविता=रक्षक है। वही इन्द्र है (मैं नहीं हूँ)।

विशेष:—मैक्डानल ने 'सुशिप्रः' शब्द का सुन्दर ओष्ठ वाला यह अर्थ किया है।

संहिता-पाठः

७. यस्याश्वा॑सः प्र॒दिशि॒ यस्य॒ गावो॒
यस्य॒ ग्रामा॒ यस्य॒ विश्वे॒ रथा॑सः।
यः सूर्यं॒ य उ॒षसं॒ ज॒जान॒
यो अ॒पां ने॒ता स जना॑स॒ इन्द्रः॑॥

पद-पाठः

यस्य॑। अश्वा॑सः। प्र॒ऽदिशि॑। यस्य॑। गावः॑।
यस्य॑। ग्रामाः॑। यस्य॑। विश्वे॑। रथा॑सः।
यः। सूर्य॑म्। यः। उ॒षस॑म्। ज॒जान॑।
यः। अ॒पाम्। ने॒ता। सः। ज॒ना॒सः॒। इन्द्रः॑॥

७. संस्कृतव्याख्या:—यस्य=इन्द्रस्य, प्रदिशि=प्रदेशनेऽनुशासने, अश्वासः=अश्वाः (वर्तन्ते), यस्य (अनुशासने) गावः, यस्य (अनुशासने) ग्रामाः=जनपदाः, यस्य (आज्ञायाम्) विश्वे=सर्वे, रथासः=रथाः 'वर्तन्ते', यश्च (वृत्रं हत्वा) सूर्यम् जजान=रविं जनयामास, यश्च उषसम् (जजान) यश्च (मेघभेदनद्वारा) अपाम्=जलानाम्, नेता=प्रेरकः, स इन्द्रः, नाहम्।

व्याकरणम्:—सुबोधम्।

जनासः=हे मनुष्यो! यस्य=जिस इन्द्र के, प्रदिशि=शासन में, अश्वासः=घोड़े रहते हैं। यस्य=जिसके शासन में, गावः=गौएँ रहती हैं, यस्य=जिसके शासन में, ग्रामाः=गाँव रहते हैं, यस्य=जिसके शासन में, रथासः=रथ रहते हैं, तथा यः=जिसने (वृत्रासुर को मार कर),

सूर्यं जजान=सूर्य को रचा, तथा उषसम्=उषा को उत्पन्न किया, तथा जो अपाम=जलों का (मेघों के विच्छेदन द्वारा), नेता=बहाने वाला है, वह इन्द्र है (मैं नहीं)।

संहिता-पाठः

८. यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते
परेऽवर उभया अमित्राः।
समानं चिद्रथमातस्थिवांसा
नाना हवेते स जनास इन्द्रः॥

पद-पाठः

यम्। क्रन्दसी इति। संयती इति सम्ऽयती। विह्वयेते इति विऽह्वयेते। परे। अवरे। उभयाः। अमित्राः।
समानम्। चित्। रथम्। आतस्थिऽवांसा।
नाना। हवेते इति। सः। जनासः। इन्द्रः॥

८. संस्कृतव्याख्या :—यम्=इन्द्रम्, क्रन्दसी=रोदसी, शब्दं कुर्वाणे मानुषी दैवी च सेने वा। संयती=परस्परं संगच्छन्त्यौ, विह्वयेते=स्वरक्षार्थं विविधमाह्वयतः, परे=उत्कृष्टाः, अवरे=अधमाश्च, उभयाः=उभयविधाः, अमित्राः=शत्रवः (यमाह्वयन्ति), समानम्=इन्द्ररथसदृशम्, रथम् आतस्थिवांसा=आस्थितौ रथिनौ, (तमेवेन्द्रम्), नाना=पृथक् पृथक्, हवेते=आह्वयेते। स इन्द्रः, नाहमिति।

जनासः=हे मनुष्यो! यम्=जिस इन्द्र को, क्रन्दसी=द्युलोक और पृथ्वीलोक, संयती=मिल करके, विह्वयेते=अपनी रक्षा के लिए अनेक प्रकार से आह्वान करते हैं, तथा परे=उत्कृष्ट, अवरे=निकृष्ट, अधम, उभयाः=मध्य, उत्कृष्ट और निष्कृष्ट मिले हैं, अमित्राः=शत्रुगण जिसको अपनी रक्षा के लिए याद करते हैं विवश होकर जिसकी शरण में

आते हैं। तथा समानम्=इन्द्र के सदृश, रथम्=रथ के ऊपर, आतस्थिवासौ=बैठे हुये दोनो (रथ का स्वामी और रथ का चलाने वाला), नाना=अनेक प्रकार से, हवेते=याद करते हैं, आह्वान करते हैं, वही इन्द्र है (मैं नहीं।)

विशेष:—मैक्डानल के मत मे "परे, अवरे" शब्द का अर्थ पास के और दूर के है, तथा 'उभया' दोनो प्रकार के जो (दोनो प्रकार के शत्रु एक से रथ पर चढ़े हुए हैं) यह अर्थ है, अर्थात् सायण के मतानुसार उत्कृष्ट और निकृष्ट आदि का अर्थ है। मुग्धानल के अनुसार नहीं।

संहिता-पाठः

९. यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो
यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव
यो अच्युतच्युत्स जनास इन्द्रः ॥

पद-पाठः

यस्मात् । न । ऋते । विऽजयन्ते । जनासः ।
यम् । युध्यमानाः । अवसे । हवन्ते ।
यः । विश्वस्य । प्रतिऽमानम् । बभूव ।
यः । अच्युतऽच्युत् । सः । जनासः । इन्द्रः ॥

९. संस्कृतव्याख्याः—यस्मात्, ऋते, जनासः=जनाः, न विजयन्ते=विजयं न प्राप्नुवन्ति। (अतः) युध्यमानाः=युद्धं कुर्वाणा जनाः, अवसे=स्वरक्षणाय, यम्=इन्द्रम्, हवन्ते=आह्वयन्ति, यश्च, विश्वस्य=सर्वस्य जगतः, प्रतिमानम्=प्रतिनिधिः, बभूव, यश्च, अच्युतच्युत्=अच्युतानां पर्वतानां च्यावयिता। स इन्द्र इत्यादि प्रसिद्धम्।

व्याकरणम्:—विह्वयेते=ह्वेञ् धातोर्लटि रूपम्।

जनासः= हे मनुष्यो ! यस्मात्=जिस इन्द्र के, ऋते=विना, जनासः =मनुष्य, न विजयन्ते=विजय को नहीं प्राप्त करते हैं, यं=जिस इन्द्र को, युध्यमानाः=लड़ते हुए सैनिक, अवसे=रक्षा के लिए, हुयन्ते=आह्वान करते हैं। यः=जो, विश्वस्य=सम्पूर्ण जगत् का, प्रतिमानम् =प्रतिनिधि, रक्षक, बभूव=है और था, यः=जो, अच्युतच्युत्=क्षय रहित, (विनाश-रहित) पर्वतादि के प्रभावो का भी विनाश करने वाला है वह इन्द्र है (मैं नहीं।)

"प्रतिमानम्" पद का अर्थ मैक्डानल के मतानुसार (match) सदृश है अर्थात् शक्तिशाली पदार्थों के समान, यह अर्थ है।

संहिता-पाठः

१०. यः शश्वतो मह्येनो दधानान्
अमन्यमानाञ्छर्वा जघान।
यः शर्धते नानुददाति शृध्यां
यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः॥

पद-पाठः

यः। शश्वतः। महि। एनः। दधानान्।
अमन्यमानान्। शर्वा। जघान।
यः। शर्धते। न। अनुऽददाति। शृध्याम्।
यः। दस्योः। हन्ता। सः। जनासः। इन्द्रः॥

१०. संस्कृतव्याख्या:—यः, महि=महत्, एनः=पापम्, दधानान्=धारयतः, शश्वतः=बहून्, अमन्यमानान्=आत्मानमजानतः इन्द्रमपूजयतो वा। शर्वा=वज्रेण, जघान, यश्च, शर्धते=उत्साहं कुर्वते जनाय, शृध्याम्=उत्साहनीयं कर्म, नानुददाति=न प्रयच्छति, यश्च, दस्योः=उपक्षपयितुः शत्रोः, हन्ता=घातकः, स इन्द्रः इति पूर्ववत्।

व्याकरणम् :—शृध्याम्=शर्ध धातोर्यत् प्रत्यये।

जनासः=हे मनुष्यो ! यः=जो इन्द्र, महि=अत्यधिक, एनः=पापो को, दधानान्=धारण करने वाले, या अमन्यमानान्=पूजा न करने वाले या इन्द्रकी सत्ता को स्वीकार न करने वाले, या उपासना न करने वाले, शश्वतः=अनेको (मनुष्यो को), शर्वा=वज्र से, जघान=मारता है, तथा यः=जो इन्द्र, शर्धते=उत्साहशील, (अपनी इन्द्र की उपासना न करने वाले अनात्मज्ञ) के लिए, शृध्याम्=उत्साहयुक्त कर्म का फल, न अनुददाति=नही प्रदान करता है। तथा यः=जो इन्द्र, दस्योः=नाश करने वाले वृत्रादि शत्रुओ का, हन्ता=घातक है वह इन्द्र है (मैं नही।)

विशेषः—मैकडानल के मत में 'शर्वा' शब्द का अर्थ बाण है वज्र नहीं। "अमन्यमानान्" का अर्थ पापफल की प्राप्ति की आशा न रखने वाले हैं, इन्द्र की उपासना न करने वाले यह अर्थ नहीं। "शर्धते" का अर्थ क्षमा करना है। "शृध्याम्" का अर्थ उद्दण्डता या धृष्टता है।

संहिता-पाठः

११. यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं
चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत्।
ओजायमानं यो अहिं जघान
दानुं शयानं स जनास इन्द्रः॥

पद-पाठः

यः। शम्बरम्। पर्वतेषु। क्षियन्तम्।
चत्वारिंश्याम्। शरदि। अनुऽअविन्दत्।
ओजायमानम्। यः। अहिम्। जघान।
दानुम्। शयानम्। सः। जनासः। इन्द्रः॥

११. संस्कृतव्याख्या :—यः, पर्वतेषु, क्षियन्तम्=इन्द्रभयात्-निवसन्तम्, शम्बरम्=एतन्नामकम् असुरम्। चत्वारिंश्यां शरदि=चत्वारिंशे संवत्सरे, अन्वविन्दत्=अन्विष्यालभत, (लब्ध्वा च) यः ओजायमानम्=बलमाचरन्तम्, अहिम्=आहन्तारम्, दानुम्=दानवम्, शयानम्=निद्रायमाणम् (असुरम्), जघान=हतवान्, स इन्द्रः नाहमिति।

व्याकरणम्:—ओजायमानम्=ओजस्+क्यङ्, "ओजसोऽप्सरसो नित्यम्" इति सकारलोपः, शानच्। ओजीयः=ओजःशब्दात् मत्वर्थीयो विनिः, तत इष्ठन्, 'विन्मतोर्लुक्' 'टेः' इति टिलोपः।

जनासः—हे मनुष्यो! यः=जो इन्द्र, पर्वतेषु=पहाड़ की गुफाओं में, (अनेक संवत्सरों तक भय से) क्षियन्तम्=रहने वाले, शम्बरम्=शम्बर नामक मायावी दैत्य को, चत्वारिंश्याम्=चालीसवीं, शरदि=शरद्-ऋतु मे (अर्थात् चालीसवे वर्ष में), अनु-अविन्दत्=ढूंढ़ कर प्राप्त किया। तथा (प्राप्त करने के बाद) यः=जिस इन्द्र से, ओजायमानम्=पराक्रम पूर्वक लड़ते हुए, अहिम्=प्रहार (हनन) करने वाले, दानुम्=दैत्य को, शयानम्=वर्षा के या पर्वतो के झरने के जल को रोक कर लेटे हुए होने पर उस असुर को, जघान=मार डाला। वह इन्द्र है (मैं नहीं।)

विशेषः—मैक्डानलके अनुसार "अहिम्" का अर्थ सर्प है, सायण के अनुसार मारने वाला यह अर्थ है।

संहिता-पाठः

१२. यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मान्
अवासृजत्सर्तवे सप्त सिन्धून्।
यो रौहिणमस्फुरद्वज्रबाहुर्
द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः॥

पद-पाठः

यः । सप्तऽरश्मिः । वृषभः । तुविष्मान् ।
अवऽअसृजत् । सर्तवे । सप्त । सिन्धून् ।
यः । रौहिणम् । अस्फुरत् । वज्रऽबाहुः ।
द्याम् । आऽरोहन्तम् । सः । जनासः । इन्द्रः ॥

१२. संस्कृतव्याख्या :—यः, सप्तरश्मिः=सप्तपर्जन्या रश्मयो यस्यासौ, वृषभः=वर्षकः, तुविष्मान्=वृद्धिमान्, सप्त=सर्पणस्वभावान्, सिन्धून्=अपः, सर्तवे=सरणाय, अवासृजत्=अवसृष्टवान्, यद्वा गङ्गाद्याः सप्तमुख्या नदीरसृजत्। यश्च, वज्रबाहुः सन्, द्याम्=दिवम्, आरोहन्तम्= उद्गच्छन्तम्, रौहिणम्=असुरम्, अस्फुरत्=जघान। शेषं पूर्ववत्।

व्याकरणम् :—तुविष्मान्='तु' गतौ 'असुच्' प्रत्ययः, ततो मतुप्, इडागमश्च।

जनासः—हे मनुष्यो! यः=जो इन्द्र, सप्तरश्मिः=(बहु.) सात प्रकार के बादलों को ही किरणों के रूप में रखता है। अर्थात्=सात प्रकार के पर्जन्यों का नियन्ता है (उन सात प्रकार के बादलों के नाम निम्न-लिखित हैं—(१) वराहवः (२) स्वतपसः (३) विद्युत्महसः (४) धूपयः (५) श्वापयः (६) गृहमेधाः (७) अशिमिविद्विषः) ये सात प्रकार के मेघ 'पृथिवीमभिवर्षन्ति वृष्टिभिः' (तैत्तरीय आरण्यक १।६।४-५), तथा जो इन्द्र वृषभः =जल बरसाने वाला, तुविष्मान्=वृद्धिवाला या बलवाला होता हुआ सप्त=बहने के स्वभाव वाले, सिन्धून् =जलों को, सर्तवे=बहने के लिए, अवासृजत्=प्रवृत्त करता है (या सात मुख्य गंगा आदि नदियों को जल से पूर्ण कर देता है, और यः=जो इन्द्र, वज्रबाहुः=वज्र को हाथ मे पकड़ कर, द्याम्=द्युलोक मे, आरोहन्तम्=चढ़ते हुए, रौहिणम्= रोहिण नामके असुर को, अस्फुरत्=मारता है। वह इन्द्र है (मै नहीं हूँ।)

विशेषः—मैकडानल के मत मे 'सप्तरश्मिः' का अर्थ सात लगाम वाला, 'वृषभः' का बैल, 'सप्त' का सात संख्या 'सिन्धून्' का केवल नदी है। अन्य शब्दो का अर्थ सायण के समान है।

संहिता-पाठः

१३. द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते
शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते।
यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर्
यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः॥

पद-पाठः

द्यावा। चित्। अस्मै। पृथिवी इति। नमेते इति।
शुष्मात्। चित्। अस्य। पर्वताः। भयन्ते।
यः। सोमऽपाः। निऽचितः। वज्रऽबाहुः।
यः। वज्रऽहस्तः। सः। जनासः। इन्द्रः॥

१३. संस्कृतव्याख्या:—अस्मै=इन्द्राय, द्यावापृथिवी=रोदसी, नमेते=स्वयमेव प्रह्वीभवतः, चित्=अपि च, अस्य=इन्द्रस्य, शुष्मात्=बलात्, पर्वताः=गिरयः, भयन्ते=बिभ्यति। यः, सोमपा=सोमस्य पाता, निचितः=दृढाङ्गः, वज्रबाहुः=वज्रसदृशबाहुः, यश्च, वज्रहस्तः=वज्रयुक्तः। स इन्द्र इत्यादि पूर्ववत्।

व्याकरणम्:—स्पष्टमेव।

जनासः=हे मनुष्यो! वही इन्द्र है, अस्मै=जिस इन्द्र के लिए, द्यावा=द्युलोक, चित्=और, पृथिवी=पृथिवीलोक, नमेते=स्वयं प्रणाम करने के लिए झुक जाते हैं। तथा अस्य=इस इन्द्र के, शुष्मात्=बल से, पर्वताः=पहाड़, चित्=भी, भयन्ते=डरते हैं। तथा यः=जो इन्द्र, सोमपाः=सोम का पान करने वाला, निचितः=अन्य देवताओं

से घिरा हुआ या अन्य देवताओं से अधिक दृढ़ शरीर वाला है, और वज्रबाहुः=वज्र के समान दृढ़ बाहुवाला, वज्रहस्तः=अपने हाथ में वज्र को धारण किये हुए है, वही इन्द्र है, (मैं नहीं।)

विशेष:—मैकडानल के मत मे 'निचित' पद का अर्थ=जाना गया है। 'सोमपानिचितः' एक ही शब्द है तथा इसका, जिस इन्द्र को सोम पान करने वाला है इस रूप मे सब जानते हैं, यह अर्थ है, तथा 'वज्रबाहुः' और 'वज्रहस्तः' इन दोनो शब्दो का भी अर्थ एक सा ही है।

संहिता-पाठः

१४. यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं
यः शंसन्तं यः शशमानमूती।
यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो
यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः॥

पद-पाठः

यः। सुन्वन्तम्। अवति। यः। पचन्तम्।
यः। शंसन्तम्। यः। शशमानम्। ऊती।
यस्य। ब्रह्म। वर्धनम्। यस्य। सोमः।
यस्य। इदम्। राधः। सः। जनासः। इन्द्रः॥

१४. संस्कृतव्याख्या :—यः, सुन्वन्तम्=सोमाभिषवं कुर्वन्तम् (यजमानम्), अवति=रक्षति। यश्च, (पुरोडाशादि) पचन्तम्, यश्च, ऊती=ऊतये स्वरक्षायै (शस्त्राणि) शंसन्तम्, यश्च, शशमानम्=स्तोत्रं कुर्वाणम्, अवतीति सर्वत्रान्वयः। ब्रह्म=परिवृढं स्तोत्रम्, यस्य वर्धनम्=यस्य वृद्धिकरं भवति। (तथा) यस्य, सोमः, यस्य च (अस्मदीयं) राधः=पुरोडाशादिलक्षणमन्नम् वृद्धिकरं भवतीति सर्वत्रान्वयः। स इन्द्रः, इति पूर्ववत्।

व्याकरणम् :—ऊती='सुपां सुलुगिति' ऊतिशब्दोत्तरचतुर्थ्याः पूर्वसवर्णदीर्घः ।

जनासः=हे मनुष्यो ! यः=जो इन्द्र, सुन्वन्तम=सोम का रस निकालने वाले (यजमान की), अवति=रक्षा करता है । तथा जो पचन्तम्=पुरोडाशादि हवियों को पकाने वाले (यजमान की), और शंसन्तम्=अपनी रक्षा के लिए शस्त्र नाम के मन्त्रों को, ऊती=अपनी रक्षा के लिए उच्चारण करने वाले (यजमान की), शशमानम्=विशेषतया शान्ति रखने वाले या स्तोत्र मन्त्रों का उच्चारण करने वाले (यजमान की), रक्षा करता है । यस्य=जिस इन्द्र का, ब्रह्म=शक्तिशाली स्तोत्र नामक मन्त्रगण, वर्धनम्=वृद्धि करने वाला है । तथा यस्य=जिस इन्द्र का, इदम्=हम लोगों से दिया गया पुरोडाशरूपी अन्न, राधः=समृद्धि करने वाला होता है, वह इन्द्र है (मैं नहीं) ।

विशेषः—मैक्डानल के मत मे 'शशमान' शब्द का अर्थ है जिसने यज्ञ को सम्पन्न किया है (Who has prepared the sacrifice.)

संहिता-पाठः

१५. यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद्
वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः ।
वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः
सुवीरासो विदथमा वदेम ॥

पद-पाठः

यः । सुन्वते । पचते । दुध्रः । आ । चित् ।
वाजम् । दर्दर्षि । सः । किल । असि । सत्यः ।
वयम् । ते । इन्द्र । विश्वह । प्रियासः ।
सुऽवीरासः । विदथम् । आ । वदेम ॥

१५. संस्कृतव्याख्या :—(इदानीं साक्षात्कृतमिन्द्रं ब्रूते ऋषिः) हे इन्द्र, यः, दुध्रः=दुर्धरः सन् , सुन्वते=सोमाभिषवं कुर्वते, (पुरोडाशादि हवींषि), पचते, (यजमानाय), वाजम्=अन्नं बलं वा, आदर्दर्षि=भृशं प्रापयसि, सः तादृशस्त्वम् । सत्यः=यथार्थभूतः, असि, किल=प्रसिद्धत्वे-नेत्यर्थः, ते=तव, प्रियासः सुवीरासः=प्रियपुत्रपौत्राः सन्तः, वयम् , विश्वह= सर्वेष्वहःसु, विपथम्=स्तोत्रम् , आ वदेम=भृशं ब्रूयाम ।

व्याकरणम् :—दुध्रः=दुर् उपसर्गात् 'धृ' धातोः 'क' प्रत्ययः ।

यः=जो इन्द्र, दुध्रः=दुर्धर प्रभाव वाला या असह्य शक्तिशाली है, और सुन्वते=सोम का अभिषवण करने वाले, चित्=और, पचते= हवियों को पकाने वाले (यजमान के लिए), वाजम्=बल को या अन्न को, आदर्दर्षि =प्रदान करता है। सः=वही तू, सत्यः=वास्तविक रूप में, किल=इन्द्र नाम से प्रसिद्ध है। असि=यह ही तू है। अर्थात् तेरे विषय में न होने की बुद्धि कभी नही उत्पन्न होती। इन्द्र=हे इन्द्र, ते=तेरे, प्रियासः=प्रिय भक्त बनते हुये, सुवीरासः=सुखदायक पुत्र-पौत्रों से युक्त, वयम्=हम लोग, विश्वह=सब दिनो में, विदथम्=तेरी स्तुति को, आवदेम=अच्छे प्रकार गाया करे। (इस प्रकार गृत्समद ऋषि ने अपने सामने खडे हुए, प्रकट हुए इन्द्र से ये वाक्य कहे हैं)।

विशेष:—मैक्डानल के मत में 'दुध्रः' का अर्थ अतिभयकर है (Most fierce) है। तथा 'वाजम्' का अर्थ दैत्यो का लूटा हुआ धन (Booty) है। 'आदर्दर्षि' का अर्थ देवताओं को जबरदस्ती देता है। यही अर्थों मे भेद है। शेष सारा अर्थ समान है।

(२-३३) रुद्रसूक्त

संहिता-पाठः

१. आ ते॑ पितर्मरुतां सु॒म्नमे॑तु
मा नः॒ सूर्य॑स्य सं॒दृशो॑ युयोथाः ।
अ॒भि नो॑ वी॒रो॑ अर्व॑ति क्षमेत
प्र जा॑येमहि रुद्र प्र॒जाभिः॑ ॥

पद-पाठः

आ । ते॒ । पि॒तः॒ । म॒रु॒ता॒म् । सु॒म्नम् । ए॒तु॒ ।
मा । नः॒ । सूर्य॑स्य । स॒म्ऽदृशः॑ । यु॒यो॒थाः॒ ।
अ॒भि । नः॒ । वी॒रः॒ । अर्व॑ति । क्ष॒मे॒त॒ ।
प्र । जा॒ये॒म॒हि॒ । रु॒द्र॒ । प्र॒ऽजाभिः॑ ॥

१. संस्कृतव्याख्या :—हे मरुतां पितः=मरुत्संज्ञकानां देवानामुत्पादक रुद्र । ते=त्वदीयम्, सुम्नम्=(अस्मभ्यं दातव्यं) सुखम्, आ एतु=आगच्छतु, (तथा त्वम्) नः=अस्मान्, सूर्यस्य=भानोः, संदृशः=संदर्शनात्, मा युयोथाः=मा पृथक् कार्षीः । अर्वति=शत्रौ, नः=अस्माकम्, वीरः=वीर्यवान् पुत्रादिः, अभिक्षमेत=अभिभवन्तु + यद्वा वीरस्त्वं नोऽस्मानभिक्षमेथाः । हे रुद्र, प्रजाभिः=पुत्रपौत्रादिभिः, प्रजायेमहि=प्रभूताः स्याम ।

व्याकरणम् :—युयोथाः='यु' मिश्रणामिश्रणयोः, लङि छान्दसः शपः श्लुः । 'छन्दस्युभयथा' इति आर्धधातुकत्वेन ङित्वाभावाद् गुणः ।

परिचयः—इस सूक्त का गृत्समद ऋषि है । त्रिष्टुप् छन्द है । रुद्र देवता है ।

हे मरुतांपितः=मरुत् नामक देवताओं के जन्मदाता रुद्र, ते=तुम्हारे द्वारा हम को देने योग्य, सुम्नम्=सुख, आ एतु=प्राप्त हो, ('इदं

पित्रे मरुताम्' इस मन्त्र में कही गई कथा के अनुसार रुद्र मरुद्गणों का पिता है, यह सिद्ध हो चुका है।), तथा तू नः=हमे, हम को, सूर्यस्य=सूर्य के, संदृशः=देखने से, मा युयोथाः=पृथक् मत कर, अर्वति=शत्रु के विषय में (भ्रातृव्यो वा अर्वा तै० सं० ६।३।८), नः=हमारे, वीरः=वीर्यवान् पुत्रादि, अभिक्षमेत=अभिभव मे समर्थ हो, अथवा शत्रुओं में वीरः=पराक्रमी तू, नः अभिक्षमेत=हमारे अपराधो को क्षमा कर, हे रुद्र! हम लोग प्रजाभिः=सन्तानो के द्वारा, प्रजायेमहि=विस्तार प्राप्त करे।

मैक्डानल के मत मे 'सुम्नम्' का अर्थ—सदिच्छा (goodwill) है। 'अर्वति' शब्द का अर्थ घोड़ा [steeds] है। इस प्रकार वीर पुरुष हमारे घोड़ो के प्रति दयालु बने, यह सारे मन्त्र का भाव है।

संहिता-पाठः

२. त्वादत्तेभी रुद्र शंतमेभिः
शतं हिमा अशीय भेषजेभिः।
व्यस्मद्द्वेषो वितरं व्यंहो
व्यमीवाश्चातयस्वा विषूचीः॥

पद-पाठः

त्वाऽदत्तेभिः। रुद्र। शम्ऽतमेभिः।
शतम्। हिमाः। अशीय। भेषजेभिः।
वि। अस्मत्। द्वेषः। विऽतरम्। वि। अंहः।
वि। अमीवाः। चातयस्व। विषूचीः॥

२. संस्कृतव्याख्या :—हे रुद्र त्वादत्तेभिः=त्वया दत्तैः, शन्तमेभिः=अतिशयेन सुखकरैः, भेषजेभिः=औषधैः, शतं हिमाः=शतसंवत्सरान्, अशीय=व्याप्नुयाम्। (अपि च) अस्मत्=अस्मत्तः, द्वेषः=द्वेष्टॄन्, विचातयस्व=

विनाशय, 'तथा', अंहः=पापम्, वितरम्=अत्यन्तं विचातयस्व, अमीवाः=रोगान्, विषूचीः=पृथक्कृत्य विनाशय।

व्याकरणम् :—सुबोधम्।

हे रुद्र! त्वादत्तेभिः=तुम्हारे द्वारा दी गई, शन्तमेभिः=अत्यन्त सुख देने वाली, भेषजेभिः=ओषधियों से, शतम् हिमाः=सौ हेमन्त ऋतुओं को, अशीय=व्याप्त करें; अर्थात् सौ वर्ष तक जीवें, और अस्मत्=हम लोगों से, द्वेष=द्वेष करने वालों को, वितरम्=नष्ट कर या पृथक् कर, विषूचीः=विषु=नाना प्रकार से अञ्चीः=शरीर में व्याप्त होने वाले, अमीवाः=रोगों को, विचातयस्व=दूर करो, एवं वितरम्=अत्यधिक, अंहः=पाप को भी, विचातयस्व=दूर करो।

मैक्डानल के मत में 'शंतमेभिः' का अर्थ=प्रभाव रखने वाली लाभदायक (salutary) है। 'द्वेषः' का घृणा (hatred) है। अंहः=का कष्ट=(distress) है। 'विषूची' शब्द अमीवा का विशेषण नहीं है, किन्तु सब दिशाओं (in all directions) का अर्थ रखता है, अर्थात् 'विषूची' का अर्थ है दूर फेंकना, रोगों को सब दिशाओं से दूर फैंक दो, यह अर्थ है।

संहिता-पाठः

३. श्रेष्ठो जातस्य रुद्र श्रियासि
तवस्तमस्तवसां वज्रबाहो।
पर्षि णः पारमंहसः स्वस्ति
विश्वा अभीती रपसो युयोधि॥

पद-पाठः

श्रेष्ठः। जातस्य रुद्र। श्रिया। असि। तवःऽतमः।
तवसाम्। वज्रबाहो इति वज्रऽबाहो।
पर्षि। नः। पारम्। अंहसः। स्वस्ति।
विश्वाः। अभिऽइतीः। रपसः। युयोधि॥

३. संस्कृतव्याख्या :—हे रुद्र, जातस्य=उत्पन्नस्य (सर्वजगतः मध्ये)। श्रिया=ऐश्वर्येण, श्रेष्ठः=प्रशस्यतमः। असि=भवसि, (तथा) हे वज्रबाहो=आयुधहस्त, रुद्र, तवसाम्=प्रवृद्धानां मध्ये, तवस्तमः=अतिशयेन प्रवृद्धोऽसि, (स त्वम्) नः=अस्मान्। अंहसः=पापस्य, पारम्=तीरम्, स्वस्ति=क्षेमेण, पर्षि=पारय। (तथा) रपसः=पापस्य, विश्वाः=सर्वाः, अभीतीः=अभिगमनानि, युयोधि=पृथक् कुरु।

व्याकरणम् :—युयोधि=यौतेश्छान्दसः शपः श्लुः 'वा छन्दसि' इति अपित्वस्य विकल्पनात् ङित्वाभावे, अङितश्चेति हेर्धिः।

हे रुद्र!=हे शिव!, जातस्य=उत्पन्न हुए सारे संसार मे, तू श्रिया=ऐश्वर्य से, श्रेष्ठ=प्रशस्त, असि=है, तथा हे वज्रबाहो=वज्र हाथ मे रखने वाले रुद्र, तवसाम=बल से बढ़े हुए लोगो मे, तवस्तमः=अत्यधिक बलवान् हुआ तू, नः=हम लोगो को, अंहसः=पाप के, पारम्=पार को, स्वस्ति=कल्याणपूर्वक, पर्षि=पार कर दे, तथा रपसः=पाप की, विश्वाः=सारी, अभीतीः=चढ़ाइयो को, युयोधि=पृथक् कर दे।

मैक्डानल के मत मे "श्रिया"=का अर्थ यश (glory) है। 'तवसाम्' बलवालो में बलशाली (mightiest of the mighty) है। 'रपसः' का बुराइयाँ (mischief) है।

संहिता-पाठः

४. मा त्वा रुद्र चुक्रुधामा नमोभिर्
मा दुष्टुती वृषभ मा सहूती।
उन्नो वीराँ अर्पय भेषजेभिर्
भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि॥

पद-पाठः

मा । त्वा । रुद्र । चुक्रुधाम । नमःऽभिः ।
मा । दुःऽस्तुती । वृषभ । मा । सऽहूती ।
उत् । नः । वीरान् । अर्पय । भेषजेभिः ॥
भिषक्ऽतमम् । त्वा । भिषजाम् । शृणोमि ॥

४. संस्कृतव्याख्या :—हे रुद्र, त्वा=त्वाम् । नमोभिः=नमस्कारैर्हविर्भिर्वा, मा चुक्रुधाम=मा क्रोधयाम । हे वृषभ=कामानां वर्षितः, दुष्टुती=दुःस्तुत्या, मा=मा चुक्रुधाम । (तथा) सहूती=सहूत्या विसदृशैरन्यैर्देवैः सहाह्वानेन, मा=मा क्रोधयामः । (स त्वम्) नः=अस्माकम् , वीरान्=पुत्रान् । भेषजेभिः=औषधैः, उत् अर्पय=उत्कृष्टं संयोजय, हे रुद्र, त्वा=त्वाम् , भिषजाम्=चिकित्सकानां मध्ये, भिषक्तमम्=अतिशयेन भैषज्यकर्तारम् । शृणोमि ।

व्याकरणम् :—दुष्टुती=दुष्+स्तुति इत्यत्र 'सुपां सुलुगिति' दीर्घः ।

हे रुद्र ! त्वा=तुझे, नमोभिः=अनुचित प्रकार से किये गये नमस्कारों से, या दुष्ट अन्नो से, मा चुक्रुधाम=क्रोध न दिलावे, हे वृषभ=इच्छाओ के पूर्ण करने वाले रुद्र, दुष्टुती=बुरी स्तुति के द्वारा भी हम तुझे क्रुद्ध न करे, तथा सहूती=निम्न श्रेणी के देवताओ के साथ बुलाने (आह्वान) के द्वारा भी क्रुद्ध न करें, तू नः=हमारे, वीरान्=पुत्रादि को, भेषजेभिः=ओषधियों से, उत् अर्पय=उत्कृष्ट रूप मे बना दे। हे रुद्र ! त्वा=तुझ को, भिषजाम् =चिकित्सकों में, भिषक्तमम्-श्रेष्ठतम चिकित्सक के रूप में शृणोमि=सुनता हूँ ।

मैक्डानल ने 'वृषभ' का अर्थ बैल (bull) किया है । 'वीरान्' का वीर योधा (heroes) किया है ।

संहिता-पाठः

५. हवीमभिर्हवते यो हविर्भिर्
अव स्तोमेभी रुद्रं दिषीय ।
ऋदूदरः सुहवो मा नो अस्यै
बभ्रुः सुशिप्रो रीरधन्मनायै ॥

पद-पाठः

हवीमऽभिः । हवते । यः । हविःऽभिः ।
अव । स्तोमेभिः । रुद्रम् । दिषीय ।
ऋदूदरः । सुऽहवः । मा । नः । अस्यै ।
बभ्रुः । सुऽशिप्रः । रीरधत् । मनायै ॥

५. संस्कृतव्याख्या :—यः रुद्रः, हविर्भिः=चरुपुरोडाशादिभिः सहितैः, हवीमभिः=आह्वानैः । हवते=आह्वयते, (तम्) रुद्रम्=रुद्रदेवम्, स्तोमेभिः=स्तोत्रैः, अवदिषीय=अवखण्डयामि (अपगतक्रोधं करोमि) । ऋदूदर=मृदु-मध्यः, सुहवः=शोभनाह्वानः । बभ्रुः=भर्ता (बभ्रुवर्णो वा) । सुशिप्रः=शोभन-हनुः, (स रुद्रः) । अस्यै मनायै=हन्मीति बुद्ध्यै नः=अस्मान्, मा रीरधत्=मा वशं नैषीत् ।

व्याकरणम् :—दिषीय='दीङ्' क्षये यद्वा 'दो' अवखण्डने, व्यत्ययेनात्मनेपदम्, 'बहुलं छन्दसी'तीत्वम् । लिङि रूपम् । रीरधत्='रध्' हिंसा-संराद्ध्योः, अस्माण्ण्यन्ताल्लुङि चङि रूपम् ।

जो रुद्र, हविर्भिः=चरु पुरोडशादि के साथ, हवीमभिः=स्तुति रूपी आह्वानो के द्वारा, हवते=बुलाया या स्तुति किया जाता है, उस रुद्रम्=रुद्र को, स्तोमेभिः=स्तुतियो के द्वारा, अवदिषीय=खंडित करूँ, पृथक् करूँ अर्थात् क्रोधरहित बनाऊँ । ऋदूदरः=मृदु पेट वाला; सुहवः=आह्वान के योग्य, बभ्रुः=भरण-पोषण करनेवाला या कपिश रंगवाला,

सुशिप्रः=सुन्दर ठोढ़ी या नाक वाला वह रुद्र, अस्यै=इस, सनाये= बुद्धि के (अर्थात् मैं इस को मार डालूँ, इस प्रकार विचारने वाली रुद्र की बुद्धि के) विषयभूत, नः=हम लोगों को, मा रीरधत्=(वह रुद्र) न बनावे।

मैक्डानल के मत मे 'ऋदूदरः' का अर्थ दयालु (compassionate) है, तथा 'सुशिप्रः' का अर्थ सुन्दर होठोंवाला (fair lipped) है।

संहिता-पाठः

६. उन्मा ममन्द वृषभो मरुत्वान्
त्वक्षीयसा वयसा नाधमानम्।
घृणीव छायामरपा अशीया-
विवासेयं रुद्रस्य सुम्नम्॥

पद-पाठः

उत्। मा। ममन्द। वृषभः। मरुत्वान्।
त्वक्षीयसा। वयसा। नाधमानम्।
घृणिऽइव। छायाम्। अरपाः। अशीय।
आ। विवासेयम्। रुद्रस्य। सुम्नम्॥

६. संस्कृतव्याख्या :—वृषभः=कामानां वर्षिता, मरुत्वान्=मरुद्भिर्युक्तो रुद्रः। नाधमानम्=याचमानम्, मा=माम्, त्वक्षीयसा=दीप्तेन, वयसा=अन्नेन, उत् ममन्द=उत्कर्षेण तर्पयतु, (अपि चाहम्)। घृणीव छायाम्='यथा सूर्यकिरणसन्तप्तः छायां प्रविशति' एवम्, रुद्रस्य, सुम्नम्= सुखम्, अरपाः=अपापः सन्, अशीय=व्याप्नुयाम्। (तदर्थं तं रुद्रम्), आविवासेयम्=परिचरेयम्।

व्याकरणम् :—त्वक्षीयसा=त्वक्ष+ईयसुन्, तृतीयैकवचने रूपम्।

वृषभः=इच्छाओं को पूर्ण करने वाला, मरुत्वान=मरुत् नाम वाले पुत्रों से युक्त, रुद्रः=रुद्र, नाधमानम्=प्रार्थना करने वाले या याचना करने वाले, मा=मुझ को, त्वक्षीयसा=दीप्तिवाले, वयसा=अन्न से, उन्ममन्द=उत्कृष्ट रूप में तृप्त करे, और घृणीव=सूर्य से तप्त हुआ पुरुष, छायाम्=छाया को जैसे चाहता है वैसे ही, रुद्रस्य=रुद्र के, सुम्नम्=सुख को, अरपाः=पापरहित बना हुआ मैं, अशीय=व्याप्त करूँ, और इस सुख की प्राप्ति के लिए उस रुद्र को आविवासेयम्=परिचर्या से प्रसन्न करूँ।

मैक्डानल के मत में 'त्वक्षीयसा' का अर्थ शक्तिशाली (vigorous) है। 'वयसा' का शक्ति (force) है। अरपाः=हानि-रहित, विनाश से रहित (मैं) (unscathed) है। सुम्नम्=उत्तम इच्छा (good-will) है।

संहिता-पाठः

७. क्व॑ स्य ते॑ रुद्र मृळ॒याकु॑र्
हस्तो॒ यो अस्ति॑ भेष॒जो जला॑षः ।
अ॒प॒भ॒र्ता रप॑सो॒ दैव्य॑स्या॒-
भी नु मा॑ वृषभ चक्षमीथाः ॥

पद-पाठः

क्व॑ । स्यः । ते॒ । रु॒द्र॒ । मृ॒ळ॒याकुः॑ ।
हस्तः॑ । यः । अस्ति॑ । भे॒ष॒जः । जला॑षः ।
अ॒प॒ऽभ॒र्ता । रप॑सः । दैव्य॑स्य ।
अ॒भि । नु । मा॒ । वृ॒ष॒भ॒ । च॒क्ष॒मी॒थाः॒ ॥

७. संस्कृतव्याख्या :—हे रुद्र, ते=तव। मृळयाकुः=सुखयिता।

स्यः=सः, हस्तः=करः, क्व=कुत्र (वर्तते) । यः=हस्तः, भेषजः=भैषज्य-कृत्, जलाषः=सर्वेषां सुखकरः, अस्ति=भवति । (तेन हस्तेन मां रक्ष) हे वृषभ=कामानां वर्षितः । दैव्यस्य=देवकृतस्य, रपसः=पापस्य, अपभर्ता=विनाशयिता (भूत्वा), मा=माम्, नु=क्षिप्रम्, अभिचक्षमीथाः=अभिक्षमस्व ।

व्याकरणम् :—चक्षमीथाः='क्षमूष्' सहने, लिङि छान्दसः शपः श्लुः, बहुलं छन्दसीतीडागमः ।

हे रुद्र! ते=तेरा, मृळयाकुः=सुख देने वाला, स्यः=वह, हस्तः=हाथ, क्व=कहाँ है । यः=जो हाथ, भेषजः=चिकित्सा करने वाला, जलाषः=सुखदायी (जल=जड़ता को, आ=हर तरफ से, षः=काट देने वाला), अस्ति=है । ऐसे हाथ से आप मेरी रक्षा कीजिये यह भाव है । हे वृषभ=इच्छा पूर्ण करने वाले रुद्र, दैव्यस्य=देवकृत, अर्थात् देवताओं (इन्द्रियों) के द्वारा किये गये, रपसः=पापों का, तू अपभर्ता=अपहरण करने वाला है, इसी लिए अपराधी, मा=मुझ को, नु=शीघ्र, अभिचक्षमीथाः=क्षमा कर दे ।

मैक्डानल के मत मे 'मृळयाकुः' का अर्थ दयालु (merciful) है । 'जलाषः' का अर्थ ठण्डक देने वाला, शान्ति-दायक (cooling) है । 'रपसः' का अर्थ कष्ट (injury) है, पाप नही ।

संहिता-पाठः

८. प्र बभ्रवे वृषभाय श्वितीचे
महो महीं सुष्टुतिमीरयामि ।
नमस्या कल्मलीकिनं नमोभिर्
गृणीमसि त्वेषं रुद्रस्य नाम ॥

पद-पाठः

प्र । बभ्रवे । वृषभाय । श्वितीचे ।
महः । महीम् । सुऽस्तुतिम् । ईरयामि ।
नमस्य । कल्मलीकिनम् । नमःऽभिः ।
गृणीमसि । त्वेषम् । रुद्रस्य । नाम ॥

८. संस्कृतव्याख्या :—बभ्रवे=विश्वस्य भर्त्रे बभ्रुवर्णाय वा। वृषभाय=कामानां वर्षित्रे, श्वितीचे=श्वैत्यमञ्चते, रुद्राय, महो महीम्=महतोऽपि महतीम्। सुष्टुतिम्=शोभनस्तुतिम्, प्र ईरयामि=प्रकर्षेणोच्चारयामि। (हे स्तोत:) कल्मलीकिनम्=ज्वलन्तम् (रुद्रम्), नमोभि:=नमस्कारैः। नमस्य=पूजय, (वयं च) रुद्रस्य=महादेवस्य, त्वेषम्=दीप्तम्, नाम गृणीमसि=संकीर्तयाम:।

व्याकरणम् :—श्वितीचे='श्विता' वर्णे औणादिक: इन् प्रत्यय:, तत: श्वितिमञ्चतीति विग्रहे क्विन्। चतुर्थ्येकवचने अकारलोपे दीर्घे रूपम्। गृणीमसि='गॄ' शब्दे क्रैयादिक:, इदन्तोमसि:, प्वादीनां ह्रस्वः।

बभ्रवे=संसार का भरण करने वाले अथवा भूरे रंग वाले (brown), वृषभाय=कामनाओं को पूरा करने वाले, श्वितीचे=सफेद रंग को धारण करने वाले रुद्र के लिए, महो महीम्=बड़ी से बड़ी सुष्टुतिम्=सुन्दर स्तुति को, ईरयामि=करता हूँ। हे स्तोता तू कल्मलीकिनम्=तेजस्वी (मलों का जो कलन=अपगमन या हनन करे वह कल्मलीक=तेज हुआ उस नाम वाला, कल्मलीकी अर्थात् तेजस्वी) रुद्र को, नमोभि:=नमस्कारों के द्वारा, या हवि के द्वारा, नमस्य (लोट् मध्य०)= पूजित कर। और हम लोग रुद्रस्य=महादेव के, त्वेषम्=प्रकाशवान्, नाम=नाम को, गृणीमसि=बोलें अर्थात् नाम का कीर्तन करें।

मैक्डानल के मत मे 'महो महीम्' का अर्थ—बड़ी से बड़ी स्तुति नहीं किन्तु बड़े उस रुद्र की बड़ी स्तुति है अर्थात् षष्ठी समास है।

(a mighty eulogy of the mighty one) त्वेपम्=भयावह (terrible) है।

संहिता-पाठः

९. स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रो
बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः।
ईशानादस्य भुवनस्य भूरेर्
न वा उ योषद्रुद्रादसुर्यम् ॥

पद-पाठः

स्थिरेभिः । अङ्गैः । पुरुऽरूपः । उग्रः ।
बभ्रुः । शुक्रेभिः । पिपिशे । हिरण्यैः ।
ईशानात् । अस्य । भुवनस्य । भूरेः ।
न । वै । ऊं इति । योषत् । रुद्रात् । असुर्यम् ॥

९. संस्कृतव्याख्या :—स्थिरेभिः=स्थिरैः, अङ्गैः=अवयवैः (युक्तः), पुरुरूपः=अष्टमूर्त्यात्मकैर्बहुभी रूपैरुपेत, उग्रः=तेजस्वी, बभ्रुः=भर्ता बभ्रुवर्णो वा (रुद्रः), शुक्रेभि.=दीप्तैः, हिरण्यैः=हिरण्मयैरलङ्कारैः, पिपिशे=दीप्यते, ईशानात्=ईश्वरात्, अस्य भुवनस्य=भूतजातस्य, भूरेः=भर्तुः, रुद्रात्=महादेवात्, असुर्यम्=बलम्, न वा उ योषत्=नैव पृथग्भवति।

व्याकरणम् :—पिपिशे='पिश्' अवयवे, कर्मणि लिट्, असुर्यम्='असु' क्षेपणे, असेरुरन्, असुरः क्षेप्ता, तत्र साधुः, असुर्यम्, योषत्=यौतेर्लेट्यडागमः, 'सिब्बहुलं लेटि' इति सिप्।

हे रुद्र ! स्थिरेभिः=दृढ़, अङ्गैः= अंगो से, अवयवो से युक्त, पुरुरूपः =यजमानादि आठ प्रकार की मूर्तियो को धारण करने वाला, उग्रः=उन्नत, तेजस्वी, बभ्रुः=पोषण करने वाला, वह रुद्र,शुक्रेभिः=चमकदार, हिरण्यैः=सोने के आभूषणो से, पिपिशे=दीप्तिमान् होता है, ईशानात्=ईश्वर,

और अस्य भुवनस्य=इन भूत भौतिक पदार्थों के, भूरेः=भरण करने वाले रुद्र से, असुर्यम्=बल (जो इधर उधर फैके वह असुर है उस फैकने मे जो साधु है वह असुर्य हुआ) क्योंकि प्रत्येक क्रिया बल के द्वारा ही होती है। न वै=कभी नही, उ=निश्चय से, योपत्=अलग होता है, अर्थात् वह रुद्र सदैव बलिष्ठ बना रहता है।

मैक्डानल के मत में 'भूरे.' का अर्थ =बड़ा (great) है, तथा यह पद 'भुवनस्य' का विशेषण है। 'असुर्यम्'=दिव्य साम्राज्य (divine dominion) है।

संहिता-पाठः

१०. अर्हन्बिभर्षि सायकानि धन्वा-
र्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम्।
अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं
न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति॥

पद-पाठः

अर्हन्। बिभर्षि। सायकानि। धन्व।
अर्हन्। निष्कम्। यजतम्। विश्वऽरूपम्।
अर्हन्। इदम्। दयसे। विश्वम्। अभ्वम्।
न। वै। ओजीयः। रुद्र। त्वत्। अस्ति॥

१०. संस्कृतव्याख्याः—हे रुद्र, त्वम्, अर्हन्=योग्यः सन्, सायकानि=शरान्, धन्व=धनुश्च, बिभर्षि=धारयसि। (तथा) अर्हन्नेव, इदं विश्वम्=सर्वम्, अभ्वम्=अतिविस्तृतं जगत्। दयसे=रक्षसि। हे रुद्र, त्वत्=त्वत्तोऽन्यत् किंचित्, ओजीयः=ओजस्वितरः, न वै अस्ति=न खलु विद्यते।

हे रुद्र ! तू अर्हन् =योग्य होता हुआ, सायकानि=बाणों को, और धन्व=धनुष को, बिभर्षि=धारण करता है तथा अर्हन् =योग्य होता हुआ ही, तू यजतम् =पूजनीय, विश्वरूपम्=अनेक रूपों से युक्त, निष्कम् =सोने के हार को धारण करता है। तथा अर्हन्= योग्य होता हुआ ही, इदम्=इस, विश्वम्=सम्पूर्ण, अभ्वम्=अति विस्तृत जगत् पर, दयसे=अपनी दया करते हो, (अभ्व पद का आ=चारों तरफ से, भू=जो उत्पन्न होवे वह अभ्व है। यहाँ आ को अ वैदिक रीति से हुआ है, अतः अभ्वः का अर्थ महान् है), हे रुद्र ! त्वत्=तुझसे, ओजीयः=बलवत्तर अधिक ओजस्वी, न वै=नहीं, अस्ति=है। इस लिए तू ही एकमात्र इस संसार की रक्षा करने में समर्थ है।

मैकडानल के मत मे 'अभ्वम्' का अर्थ=शक्ति (force) है। 'दयसे' का अर्थ प्रयोग मे लाना है। इस प्रकार तृतीय चरण का अर्थ (worthy thou wieldest all this force) है।

संहिता-पाठः

११. स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं
मृगं न भीममुपहत्नुमुग्रम्।
मृळा जरित्रे रुद्र स्तवानो-
ऽन्यं ते अस्मन्नि वपन्तु सेनाः॥

पद-पाठः

स्तुहि। श्रुतम्। गर्तऽसदम्। युवानम्।
मृगम्। न। भीमम्। उपऽहत्नुम्। उग्रम्।
मृळ। जरित्रे। रुद्र। स्तवानः।
अन्यम्। ते। अस्मत्। नि। वपन्तु। सेनाः।

११. संस्कृतव्याख्याः—हे स्तोतः, श्रुतम्=विख्यातम् (रुद्रम्) गर्तसदम्=रथासीनम्, युवानम्=नित्यतरुणम्, मृगम् न भीमम्=सिंहमिव भयंकरम्। उपहत्नुम्=उपहन्तारम्, उग्रम्=उग्रस्वरूपम् (रुद्रम्) स्तुहि। रुद्र त्वं, स्तवानः=अस्माभिः स्तूयमानः। जरित्रे=स्तोत्रे मह्यम्, मृळ=सुखय। ते=त्वदीयाः, सेनाः, अस्मदन्यम्=अस्मद्व्यतिरिक्तं पुरुषम्, नि वपन्तु=निघ्नन्तु।

व्याकरणम्:—जरित्रे='जृ' धातोः तृच् प्रत्यये, इडागमे चतुर्थ्येकवचने रूपम्।

चलते समय यदि किसी पशु की अशुभ वाणी सुनाई पड़े तो निम्नलिखित मन्त्र को पढ़े—

हे स्तोता! तू श्रुतम्=प्रसिद्ध, रुद्र की, स्तुहि=स्तुति कर, जो कि गर्तसदम्=रथ मे अवस्थित, और युवानम्=नित्य तरुण है, तथा मृगम् न भीमम्=मृग अर्थात् शेर की तरह, भीमम्=भयङ्कर है। तथा उपहत्नुम्=शत्रुओ को मारने वाला है, उग्रम्=जो शस्त्र उठाए हुए है, (उद्‌गूर्ण शस्त्र), हे रुद्र! तू, स्तवानः=हम से स्तुति किया जाता हुआ, जरित्रे=स्तुति करने वाले मुझको, मृळ=सुखदायक बन। ते=तुम्हारी, सेनाः=सेनायें, अस्मत्, अन्यम्=हम से भिन्न पुरुषो को, निवपन्तु=नष्ट करें।

मैक्‌डानल के मत मे 'मृगम् न भीमम् उपहत्नुम्' इस वाक्य का अर्थ भयंकर सिंह के समान मारने वाला (that slays like a dread beast) है अर्थात् 'उपहत्नुम्' इसका 'मृगम्' कर्म है स्वतन्त्र विशेषण नहीं है। 'सेनाः' शब्द का गोलियाँ (missiles) अर्थ है, प्रसिद्ध सेना नहीं।

संहिता-पाठः

१२. कुमारश्चित्पितरं वन्दमानं
प्रति नानाम रुद्रोपयन्तम् ।
भूरेर्दातारं सत्पतिं गृणीषे
स्तुतस्त्वं भेषजा रास्यस्मे ॥

पद-पाठः

कुमारः । चित् । पितरम् । वन्दमानम् ।
प्रति । ननाम । रुद्र । उपऽयन्तम् ।
भूरेः । दातारम् । सत्ऽपतिम् । गृणीषे ।
स्तुतः । त्वम् । भेषजा । रासि । अस्मे इति ॥

१२. संस्कृतव्याख्या :—वन्दमानम्=आशीर्वचनं ददानम्, पितरम्. कुमारश्चित् =यथाकुमारः, तथा, हे रुद्र, उपयन्तम् =अस्मत्समीपमागच्छन्तं त्वाम् । प्रति ननाम=प्रति नतोऽस्मि । अपि च, भूरेः=बहुनो धनस्य, दातारम् , सत्पतिम्=सतां पालयितारम् । एवं भूतं त्वाम् । गृणीषे=स्तौमि, स्तुतश्च, त्वम् , अस्मे=अस्मभ्यम् । भेषजा=भेषजानि । रासि=देहि ।

व्याकरणम् :—साधारणम् ।

वन्दमानम्=हे सौम्य ! "तू आयुष्मान् बन" इस प्रकार आशंसा या आशीर्वचनों का कथन करने वाले, पितरम्=पिता को, कुमारः =बालक, चित्=जैसे, प्रणाम करताहै वैसे ही हे रुद्र, उपयन्तम्=हमारे समीप आने वाले तुझ को, मैं ननाम=प्रणाम करता हूँ । तथा भूरेः =बहुत सारे धन के, दातारम=देने वाले, सत्पतिम्=सज्जनों के पालन करने वाले तेरी, गृणीषे=स्तुति करता हूँ (यहाँ मध्यम पुरुष का व्यत्यय है), स्तुतः=स्तुति किया गया, तू अस्मे=हमारे लिए, भेषजा= ओषधियाँ, रासि=प्रदान करता है ।

मैक्डानल ने 'सत्पतिम्' का अर्थ=सच्चा मालिक (the true lord) किया है 'सज्जनों का रक्षक' नहीं।

संहिता-पाठः

१३. या वो भेषजा मरुतः शुचीनि
या शंतमा वृषणो या मयोभु ।
यानि मनुरवृणीता पिता नस्
ता शं च योश्च रुद्रस्य वश्मि ॥

पद-पाठः

या । वः । भेषजा । मरुतः । शुचीनि ।
या । शम्ऽतमा । वृषण· । या । मयःऽभु ।
यानि । मनुः । अवृणीत । पिता । नः ।
ता । शम् । च । योः । च । रुद्रस्य । वश्मि ॥

१३. संस्कृतव्याख्या :—हे मरुत', वः=युष्माकम् , या=यानि, भेषजा=औषधानि, शुचीनि=शुद्धानि, हे वृषणः=कामानां वर्षितारः, या=यानि च (भेषजानि), शंतमा=अतिशयेन सुखकराणि, या=यानि च (भेषजानि), मयोभु=मयसः (सुखस्य) भावयितॄणि, (तथा च) नः मनुः=अस्मत्पिता मनुः, यानि (भेषजानि), अवृणीत=वृतवान् , ता=तानि, रुद्रस्य=महादेवस्य (संबन्धि)। शं च योश्च=उपशमनं, भयानां पृथक्करणं च, तदुभयम् । वश्मि=कामये ।

व्याकरणम् :—मयोभु=मयस् + भू + क्विप् ।

हे मरुतः=हे रुद्र के पुत्रो ! वः=तुम्हारे, या=जो, भेषजा=हमारे आरोग्य को देने वाली औषधियाँ, शुचीनि=पवित्र व निर्मल हैं, हे वृषणः=इच्छाओं की पूर्ति करने वाले हे मरुद्गणो, या=जो औषध है, शंतमा=अत्यधिक सुखदायक, और जो मयोभु=सुख के देने वाली,

और यानि=जिन दवाओ को, नः=हमारा, पिता=पितृतुल्य, मनुः= मनु नामक ऋषि को मन दान करके, अवृणीत=वरण कर चुका है, ता=उन ओषधियो को, रुद्रस्य=महादेव के, संबन्ध से, शं च=रोगो को शाति करने वाली, और योश्च=दूर हटाने या प्रत्यक्षयोग्य रोगो को दूर करने योग्य, इस प्रकार दोनो प्रकार की औषधियो को, वश्मि= चाहता हूँ।

मैक्डानल के मत मे 'मयोभु' का अर्थ आरोग्यदायक (wholesome) है। तथा 'यो' पद का अर्थ ईश्वर की तरह कृपा करने वाली रुद्र की blessing है।

संहिता-पाठः

१४. परि णो हेती रुद्रस्य वृज्याः
परि त्वेषस्य दुर्मतिर्मही गात्।
अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व
मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृळ ॥

पद-पाठः

परि । नः । हेतिः । रुद्रस्य । वृज्याः ।
परि । त्वेषस्य । दुःऽमतिः । मही । गात् ।
अव । स्थिरा । मघवत्ऽभ्यः । तनुष्व ।
मीढ्वः । तोकाय । तनयाय । मृळ ॥

१४. संस्कृतव्याख्याः—रुद्रस्य=महादेवस्य, हेतिः=आयुधम्, नः=अस्मान्, परिवृज्या=परिवर्जतु, (तथा) त्वेषस्य=दीप्तस्य (रुद्रस्य), मही=महती, दुर्मतिः=दुःखकारिणी बुद्धिश्च परिगात्=अस्मान् वर्जयित्वा अन्यत्र गच्छतु। हे मीढ्वः=सेचनसमर्थ, स्थिरा=स्थिराणि। (तव

धनुंषि) मघवद्भ्यः = हविर्लक्षणधनयुक्तेभ्यः यजमानेभ्यः। अवतनुष्व= अवततज्यानि कुरु। तथा, तोकाय=अस्मत् पुत्राय। तनयाय=तत्पुत्राय च। मृळ=सुखं कुरु।

व्याकरणम् :—तोकाय='तुच्' धातोर्घञ् ततः चतुर्थ्येकवचने रूपम्। मीढ्वः='मिह' धातोर्वसु प्रत्यये, हस्य ढत्वे, इकारस्य दीर्घे, रूपम्।

रुद्रस्य=महादेव के, हेतिः=शस्त्र, नः=हमें, परिवृज्याः=छोड़ दे, तथा त्वेषस्य=दीप्ति वाले, रुद्रस्य=रुद्र की, महि=बहुत बड़ी, दुर्मतिः=दुःखकारिणी, मही=बुद्धि, परिगात्=हमे छोड़कर और हट जावे, अर्थात् हम रुद्र की (bad books) मे न रहे। हे मीढ्वः= सेचन समर्थ रुद्र, स्थिरा=स्थिर, दृढ़ अपने धनुषो को, मघवद्भ्यः= हविरूपी धन वाले यजमानो को लक्ष्य करके, अवतनुष्व=विस्तृत मत कर, उस धनुष को तथा तोकाय=हमारे पुत्रो के लिए, तनयाय=पुत्र के पुत्रो के लिए, मृळ=सुखदायक बना।

मैक्डानल के मत मे 'त्वेषस्य' का अर्थ=भयंकर (terrible one) है। 'मीढ्वः' का अर्थ=उदार (bounteous) है, सेचन-समर्थ नहीं।

संहिता-पाठः

१५. एवा बभ्रो वृषभ चेकितान
यथा देव न हृणीषे न हंसि।
हवनश्रुन्नो रुद्रेह बोधि
बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥

पद-पाठः

एव। बभ्रो इति। वृषभ। चेकितान।
यथा। देव। न। हृणीषे। न। हंसि।

हुवन॒ऽश्रुत् । नः॒ । रु॒द्र॒ । इ॒ह । बो॒धि॒ ।
बृ॒हत् । व॒दे॒म॒ । वि॒दथे॑ । सु॒ऽवीराः॑ ॥

१५. संस्कृतव्याख्या :—हे बभ्रो=जगतो भर्तः । वृषभ=कामानां वर्षितः, चेकितान=सर्वं जानन् । हे देव=द्योतमान रुद्र, यथा=येन प्रकारेण, न हृणीषे=न क्रुध्यसि, न च हंसि=न मारयसि, एवं, हवनश्रुत=आह्वानं शृण्वन् । नः=अस्मान्, हे रुद्र=महादेव, इह=अस्मिन् देशे । बोधि=बुध्यस्व, विदथे=यज्ञे गृहे वा, सुवीराः=शोभनपुत्राः सन्तः । बृहत्=प्रौढम्, त्वदीयं स्तोत्रम् । वदेम=उच्चारयाम ।

व्याकरणम्.—चेकितान, 'कित' धातोः कानच्, द्वित्वम्, गुणे रूपम् ।

हे बभ्रो ! = जगत् के पालन करने वाले, वृषभ=हे इच्छाओं की पूर्ति करने वाले, चेकितान=हे सब कुछ जानने वाले, देव=द्युतिमान् रुद्र, यथा=जिस प्रकार से, न हृणीषे=तुम क्रुद्ध नहीं होओ, और न हंसि=और न मारो ही, एव=इस प्रकार हे हवनश्रुत्=हे हमारे आह्वान के सुनने वाले, रुद्र! नः=हमे, इह=इस स्थान पर रहने वालो को, बोधि=जान लो अर्थात् हमारा ध्यान रखो, विदथे=यज्ञ मे अथवा घर मे, सुवीरा.=शोभन पुत्रो वाले हम, बृहत्=अत्यधिक (तुम्हारे स्तोत्र को) वदेम=बोले, पढ़ें, पाठ करे ।

मैक्डानल के मत मे 'चेकितान' शब्द का अर्थ=महायशस्वी (far-famed) है । 'इह' शब्द का 'विदथे' के साथ अन्वय है, तथा 'इह' शब्द का अर्थ इस दिव्य स्तुति के समय मे (at devine worship) है ।

———

(३-५९) मित्र

संहिता-पाठः

१. मित्रो जनान्यातयति ब्रुवाणो
मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।
मित्रः कृष्टीरनिमिषाभि चष्टे
मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत ॥

पद-पाठः

मित्रः । जनान् । यातयति । ब्रुवाणः ।
मित्रः । दाधार । पृथिवीम् । उत । द्याम् ।
मित्रः । कृष्टीः । अनिऽमिषा । अभि । चष्टे ।
मित्राय । हव्यम् । घृतऽवत् । जुहोत ॥

१. संस्कृतव्याख्या :—ब्रुवाणः=स्तूयमानः, मित्रः=सूर्यः, जनान्=कृषकादीन्, यातयति=कर्मसु योजयते। (तथा) मित्र एव, पृथिवीमुत द्याम्=पृथ्वीं द्यामपि, दाधार=धारयति (वृष्टिद्वारा), एवम्, मित्रः, अनिमिषा=अनुग्रहदृष्ट्या, कृष्टीः=कर्मवतो मनुष्यान्, अभि चष्टे=सर्वतः पश्यति। अतः, हे ऋत्विजः, घृतवत्=उपस्तरणाभिघारणयुक्तम्, हव्यम्=पुरोडाशादिकम्, तस्मै, मित्राय=सूर्यदेवाय, जुहोत=प्रयच्छत।

व्याकरणम् :—यातयति—'यती' प्रयत्ने, ण्यन्तस्य लटि रूपम्। दाधार='तुजादीनामि'ति अभ्यासस्य दीर्घः।

इस सूक्त का मित्र देवता है। विश्वामित्र ऋषि है। १–५ त्रिष्टुप् और ६–९ गायत्री छन्द हैं।

मित्रः=मित्र अर्थात् सूर्य, ब्रुवाणः=स्तूयमान होता हुआ, जनान्= कृषक मनुष्यों को, यातयति=अपने कर्मों मे लगाता है। जो मित्रः=

सूर्य, पृथिवीं=पृथिवीलोक को, उत=और, द्याम=द्युलोक को, दाधार =धारण करता है। वही मित्रः=सूर्य, अनिमिषा=निमेषरहित, सावधान अनुग्रहपूर्ण दृष्टि से, कृष्टीः=कृषि कर्म में लगे हुए मनुष्यों को, अभिचष्टे =सब तरफ से देखता है, उस मित्राय=सूर्य के लिए (हे ऋत्विजो, तुम), घृतवत् =अभिघारण (गर्म करने) के योग्य, हव्यम् = हवनीय पुरोडाशादि द्रव्य को, जुहोत=अर्पित करो।

विशेषः—मैकडानल के मत मे 'ब्रुवाणः' पद का अर्थ=बोलता हुआ (सूर्य) अर्थ है, न कि स्तुति किया जाता हुआ, तथा 'कृष्टीः' का केवल कृषि करने वाले मनुष्य ही नहीं किन्तु मनुष्यमात्र अर्थ है।

संहिता-पाठः

२. प्र स मित्र मर्तो अस्तु प्रयस्वान्
यस्त आदित्य शिक्षति व्रतेन।
न हन्यते न जीयते त्वोतो
नैनमंहो अश्नोत्यन्तितो न दूरात्॥

पद-पाठः

प्र। सः। मित्र। मर्तः। अस्तु। प्रयस्वान्।
यः। ते। आदित्य। शिक्षति। व्रतेन।
न। हन्यते। न। जीयते। त्वाऽऊतः।
न। एनम्। अंहः। अश्नोति। अन्तितः। न। दूरात्॥

२. संस्कृतव्याख्या :—हे आदित्य! व्रतेन=यज्ञेन युक्तः, यः= मनुष्यः, ते=तुभ्यम्, शिक्षति=अन्नं ददाति, हे मित्र, स मर्तः= मनुष्यः, प्रयस्वान्=अन्नवान्, प्र अस्तु=प्रभवतु, त्वोतः=त्वया रक्षितः, (सः केनापि), न हन्यते=न बाध्यते, न जीयते=नाभिभूयते। एनम्=

हविर्दत्तवन्तं पुरुषम् , अंहः = पापम् । अन्तितः = समीपात् । न अश्नोति = न प्राप्नोति । दूरात् (अपि) न (प्राप्नोति) ।

व्याकरणम् :—शिक्षति = शिक्षतिर्दानकर्मा, व्यत्ययेन परस्मैपदम् ।

मित्र=हे मित्र ! यः जो, व्रतेन=यज्ञ से युक्त हुआ, मर्तः—मनुष्य, ते=तेरे लिए, शिक्षति=हवि प्रदान करता है, (हे) आदित्य=हे सूर्य, सः=वह मनुष्य, प्रयस्वान् =अन्न वाला, प्र अस्तु=बने, त्वा=तेरे द्वारा, ऊतः=रक्षा किया गया, (वह मनुष्य किसी से) भी, न हन्यते=कष्ट को प्राप्त नहीं कराया जाता, न जीयते=नहीं पराजित किया जाता । एनम्=इस प्रकार के मनुष्य को, अंहः=पाप, अन्तितः=समीप से, और दूरात्=दूर से, (दोनो रीतियो से) न अश्नोति=नहीं प्राप्त होता ।

विशेषः—मैक्डानल के मत में 'प्रयस्वान्' पद का अर्थ मुख्य (pre-eminent) है । 'शिक्षनि' का अर्थ नमस्कार (obeisance) है । तथा 'व्रतेन' का अर्थ सूर्य की आज्ञा या (ordinance) है ।

संहिता-पाठः

३. अनमीवास इळया मदन्तो
मितज्ञवो वरिमन्ना पृथिव्याः ।
आदित्यस्य व्रतमुपक्षियन्तो
वयं मित्रस्य सुमतौ स्याम ॥

पद-पाठः

अनमीवासः । इळया । मदन्तः ।
मितऽज्ञवः । वरिमन् । आ । पृथिव्याः ।
आदित्यस्य । व्रतम् । उपऽक्षियन्तः ।
वयम् । मित्रस्य । सुऽमतौ । स्याम ॥

३. संस्कृतव्याख्या :—हे मित्र! अनमीवासः=रोगरहिताः, इळया= अन्नेन। मदन्तः=माद्यन्तः, पृथिव्याः, वरिमन्=विस्तीर्णे प्रदेशे। मितज्ञवः=मितजानुकाः, आ=सर्वत्र गच्छन्तः, आदित्यस्य=सूर्यस्य सम्बन्धि, व्रतम्=कर्म, उपक्षियन्तः=तस्य कर्मणः समीपे निवसन्तः, वयम्, मित्रस्य= आदित्यस्य, सुमतौ=अनुग्रहबुद्धयाम्। स्याम=वर्तेमहि।

व्याकरणम् :—मदन्तः='मदी' हर्षे, शतरि, व्यत्ययेन शप्। वरिमन्= 'उरु' शब्दात् पृथ्वादित्वादिमनिच् 'प्रियस्थिर०' इत्यादिना वरादेशः। सुपामिति सप्तम्या लुक्।

हे मित्र=हे सूर्य! अनमीवासः=रोगरहित, इळया=अन्न से, मदन्तः=प्रसन्न रहने वाले, पृथिव्याः=भूलोक के, वरिमन्=विस्तीर्ण प्रदेश मे, मितज्ञवः=परिमित जानुवाले, अर्थात् परिमित गति या शक्ति वाले, और आ=यथेष्ट रूप मे सर्वत्र गति करने वाले हम लोग, आदित्यस्य=सूर्यसम्बन्धी, व्रतम्=कर्म के, उपक्षियन्तः=समीप रहते हुए, अर्थात्=सूर्य की प्रसन्नता करने वाले कर्मो को करते हुए, मित्रस्य= सूर्य की, सुमतौ=अनुग्रह बुद्धि के पात्र, स्याम=बने रहे, अर्थात् सूर्य की कृपा के पात्र बने।

मैक्डानल मितज्ञवः=दृढ़ जानु वाले, अर्थात् दृढ़ जंघा वाले (firm-kneed) यह अर्थ करता है।

संहिता-पाठः

४. अयं मित्रो नमस्यः सुशेवो
राजा सुक्षत्रो अजनिष्ट वेधाः।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्या-
पि भद्रे सौमनसे स्याम॥

पद-पाठः

अयम् । मित्रः । नमस्यः । सुऽशेवः ।
राजा । सुऽक्षत्रः । अजनिष्ट । वेधाः ।
तस्य । वयम् । सुऽमतौ । यज्ञियस्य ।
अपि । भद्रे । सौमनसे । स्याम ॥

४. संस्कृतव्याख्याः—अयम्, मित्रः=सूर्यः, नमस्यः=नमस्करणीयः, सुशेवः=शोभनसुखः सुखेन सेव्य इत्यर्थः, राजा=प्रकाशकः स्वामी, सुक्षत्रः=शोभनबलोपेतः, वेधाः=जगतो विधाता, अजनिष्ट=प्रादुरभूत्, तस्य=एवं गुणोपेतस्य, यज्ञियस्य=यज्ञार्हस्य सूर्यस्य, सुमतौ=शोभनायां बुद्धौ, भद्रे=कल्याणकारिणि, सौमनसे=सौमनस्ये, अपि, (यजमानाः) वयम् स्याम=भवेम ।

व्याकरणम् :—नमस्यः=नमसि साधुर्नमस्यः, तत्र साधुः इति यत् ।

अयम् =यह, जिसका वर्णन पूर्व किया जा जा चुका है, ऐसा मित्रः =सूर्य, नमस्यः=नमस्कार के योग्य, सुशेवः=अच्छे प्रकार सेव्य या अच्छा सुख देने वाला, राजा=सारे जगत् का प्रकाश देने के कारण रक्षक, सुक्षत्रः=उत्तम बलवाला, वेधाः=ससार का बनाने वाला, अजनिष्ट=सृष्टि के आदि में उत्पन्न हुआ, तस्य=उस, इस प्रकार के, यज्ञियस्य=पूजा के योग्य, सूर्यस्य=सूर्य भगवान् की, सुमतौ=उत्तम बुद्धि में, भद्रे=कल्याण करने वाले, सौमनसे=प्रसन्न मन में वयम्=हम यजमानगण, स्याम=बने रहे, अर्थात् वह सूर्य हमेशा हमारा ध्यान रखे और हम अपने कर्मों से अपने मन को प्रसन्न करते रहे ।

मैक्डानल के अनुसार 'सौमनसे' का अर्थ उत्तम प्रभाव व शान है (good graces), 'सुशेवः' का अर्थ कृपालु या अनुकूल (propitious) है ।

संहिता-पाठः

५. म॒हाँ आ॑दि॒त्यो नम॑सोप॒सद्यो॑
या॒त॒यज्ज॑नो गृण॒ते सु॒शेव॑: ।
तस्मा॑ ए॒तत्पन्य॑तमाय॒ जुष्ट॑म्
अ॒ग्नौ मि॒त्राय॑ ह॒विरा जु॑होत ॥

पद-पाठः

म॒हान् । आ॒दि॒त्यः । नम॑सा । उ॒प॒ऽसद्य॑: ।
या॒त॒यत्ऽज॑नः । गृ॒ण॒ते । सु॒ऽशेव॑: ।
तस्मै॑ । ए॒तत् । पन्य॑ऽतमाय । जुष्ट॑म् ।
अ॒ग्नौ । मि॒त्राय॑ । ह॒विः । आ । जु॒हो॒त ॥

५. संस्कृतव्याख्या :—(अयम्) आदित्यः=सूर्यः, महान् (अस्ति) अत एव, नमसा=नमस्कारेण, उपसद्य=उपसदनीयः, यातयज्जनः=स्वकर्मणि प्रवर्तनीया जना येन तथोक्तः, गृणते=स्तुतिं कुर्वते जनाय, सुशेवः (भवति), तस्मै, पन्यतमाय=स्तुत्यतमाय, मित्राय=सूर्याय, जुष्टम्=प्रातिविपयम् , एतत् हविः, अग्नौ, आ जुहोत=जुहुत ।

व्याकरणम् :—यातयज्जनः='यती' प्रयत्ने इत्यस्य ण्यन्तस्य शतरि रूपम् । पन्यतमाय=पनतेरन्यादित्वात् यत् ।

यह आदित्यः=सूर्य भगवान् , महान् =महान् है, =अतएव नमसा= नमस्कार के द्वारा, उपसद्यः=पहुँचने योग्य है । यातयज्जनः=मनुष्यों को प्रातःकाल ही अपने-अपने कर्मों में ही प्रवृत्त करने वाला यह सूर्य, गृणते=स्तुति करने वाले मनुष्य के लिए, सुशेवः=सुन्दर सुखदायक होता है, तस्मै=उस, पन्यतमाय=अत्यधिक स्तुत्य, मित्राय+सूर्य के लिए, जुष्टम् =आनन्ददायक, एतत्=इस, हविः=हव्य को, अग्नौ=अग्नि में, आ जुहोत=अच्छी तरह समर्पित करो ।

विशेष:—मैक्डानल के अनुसार 'जुष्टम्' का अर्थ स्वीकरणीय (acceptable) है, जब कि सायण के मत में प्रीतिदायक है।

संहिता-पाठः

६. मित्रस्य चर्षणीधृतोऽवो देवस्य सानसि।
द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम्॥

पद-पाठः

मित्रस्य। चर्षणिऽधृतः। अवः। देवस्य। सानसि।
द्युम्नम्। चित्रश्रवःऽतमम्॥

६. संस्कृतव्याख्या:—चर्षणीधृतः=वृष्टिप्रदानेन धारकस्य, मित्रस्य देवस्य (सम्बन्धि) अवः=अन्नम्, सानसि=सर्वैः संभजनीयम्, द्युम्नम्=धनम् (तदीयं), चित्रश्रवस्तमम्=अतिशयेन चायनीयकीर्तियुक्तम् (अस्ति)।

व्याकरणम्:—न पृथक् प्रयत्नापेक्षम्।

चर्षणीधृत:=मनुष्यों को वृष्टि से अन्न उत्पादन के द्वारा धारण करने वाले, उस मित्रस्य= सूर्य का, जो कि सूर्य देवस्य=देवता है उसके द्वारा प्रदान किया गया, अवः=अन्न, सानसि=सब सूर्योपासकों द्वारा समान रूप से भोग्य है, तथा द्युम्नम्=धन भी, चित्रश्रवस्तमम्=अधिकतया विचित्र कीर्ति से युक्त है।

मैक्डानल के मत मे 'सानसि' का अर्थ लाभदायक (brings gain), तथा 'अवः' का अर्थ कृपा या अनुकूलता (favour) है। इस प्रकार 'सानसि' क्रियापद है, पर सायण के मत मे सुबन्त पद है।

संहिता-पाठः

७. अभि यो महिना दिवं मित्रो बभूव सप्रथाः।
अभि श्रवोभिः पृथिवीम्॥

पद-पाठः

अभि । यः । महिना । दिवम् । मित्रः । बभूव । सऽप्रथाः ।
अभि । श्रवःऽभिः । पृथिवीम् ॥

७. संस्कृतव्याख्या :—यः = मित्रः, महिना = स्वमहिम्ना, दिवम् = अन्तरिक्षम्, अभि बभूव = अभिभवति । (सः) सप्रथाः = प्रसिद्धकीर्तिसहितः, श्रवोभिः = वृष्टिद्वारोत्पादितैरन्नैः, पृथिवीम् अपि = भूलोकमपि, (अभिभवतीत्यर्थः) (बह्वन्नयुक्तां करोति) ।

व्याकरणम् :—सप्रथाः = 'प्रथ' प्रख्याने 'असुन्', 'वोपसर्जनस्य' इति सहस्य सभावः ।

यः = जो सूर्य, महिना = अपनी महिमा से, दिवम् = अन्तरिक्षलोक को, अभि बभूव = अपने अधिकार में रखता है। वह सूर्य, सप्रथाः = कीर्तियुक्त है, तथा श्रवोभिः = वृष्टि के द्वारा उत्पादित अन्नों से, पृथिवीम् = पृथिवीलोक का, अभि = अभिभव करता है, अर्थात् पृथ्वी को अन्न से भर देता है।

मैक्डानल के मत में 'श्रवोभिः' का अर्थ कीर्ति (glories) है।

संहिता-पाठः

८. मित्राय पञ्च येमिरे जना अभिष्टिशवसे ।
स देवान्विश्वान्बिभर्ति ॥

पद-पाठः

मित्राय । पञ्च । येमिरे । जनाः । अभिष्टिऽशवसे ।
सः । देवान् । विश्वान् । बिभर्ति ॥

८. संस्कृतव्याख्या :—पञ्च जनाः = निषादयुक्ताश्चत्वारो वर्णाः, अभिष्टिशवसे = शत्रूणामभिगन्तृबलयुक्ताय, मित्राय = सूर्याय, येमिरे = हवींष्युद्यच्छन्ति, सः = तादृशो मित्रः, विश्वान् देवान् = सर्वान् सुरान्, बिभर्ति = धारयति ।

व्याकरणम् :—अभिष्टिशवसे=इषेः 'मन्त्रे वृष०' इत्यादिना क्तिन् शकन्ध्वादित्वादभेः पररूपम् ।

पञ्च जनाः=ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, निषाद रंजक पाच प्रकार के मनुष्य, अभिष्टिशवसे=शत्रुओ के सामने मुकाबला करने वाले बल के सहित, मित्राय=सूर्य के लिए, येमिरे=हवि प्रदान करते हैं। सः= वह सूर्य, विश्वान् =सारे, देवान् =स्तुति करने वालो को, बिभर्ति= धारण किये हुए है, या रक्षा करता है ।

मैक्डानल के मत में 'अभिष्टिशवसे' का अर्थ सहायता करने मे दृढ़ (strong to help) है।

संहिता-पाठः

९. मित्रो देवेष्वायुषु जनाय वृक्तबर्हिषे।
इषं इष्टव्रता अकः ॥

पद-पाठः

मित्रः । देवेषु । आयुषु । जनाय । वृक्तऽबर्हिषे ।
इषः । इष्टऽव्रताः । अकरित्यकः ॥

९. संस्कृतव्याख्या :—मित्रः=भगवानादित्यः, देवेषु=द्योतमानादि-गुणयुक्तेषु, आयुषु=मनुष्येषु मध्ये, वृक्तबर्हिषे=बर्हिर्लवनादिपूर्वं हविषो दात्रे, जनाय, इष्टव्रताः=कल्याणव्रतसाधिकाः, इषः=तादृशान्यन्नानि, अकः= करोति (ददाति) ।

व्याकरणम् :—वृक्तबर्हिषे='ओव्रश्चू' छेदने, कर्मणि निष्ठा, 'यस्य विभाषा' इति इट्प्रतिषेधः अकः='कृ' धातोः लुङि, च्लेः लुक्, सिपो हल्ङ्यादिलोपः ।

मित्रः=भगवान् सूर्य, देवेषु=दीप्ति आदि गुणयुक्त हुआ, आयुषु =मनुष्यो मे, वृक्तबर्हिषे=कुशा को काटना, वन से, खेतो से लाना, आदि

कार्य के द्वारा यज्ञ मे सूर्य के लिए हवि अर्पण करने वाले, जनाय= मनुष्य के लिए, इष्टव्रताः=कल्याण कारी कर्मो को सिद्ध करने वाले, इषः=अन्नो को अकः=उत्पन्न करता है, अर्थात् प्रदान करता है।

विशेषः—मैक्डानल के मत मे 'वृक्तबर्हिषे' का अर्थ कुशा को वेदि के ऊपर विस्तीर्ण करने वाला है (whose sacrificial grass is spread) ऐसा यजमान यहाँ मन्त्र मे वर्णित किया गया है, यह लिखा है।

(४-५१)　　उषस् (उषाः)

संहिता-पाठः

१. इदमु त्यत्पुरुतमं पुरस्ताज्
ज्योतिस्तमसो वयुनावदस्थात्।
नूनं दिवो दुहितरो विभातीर्
गातुं कृणवन्नुषसो जनाय॥

पद-पाठः

इदम्। ऊं इति। त्यत्। पुरुऽतमम्। पुरस्तात्।
ज्योतिः। तमसः। वयुनऽवत्। अस्थात्।
नूनम्। दिवः। दुहितरः। विऽभातीः।
गातुम्। कृणवन्। उषसः। जनाय॥

१. संस्कृतव्याख्या :—इदमु=पुरतो दृश्यमानम्, त्यत्=तद्, पुरुतमम्=अत्यन्तप्रभूतम्, ज्योतिः=तेजः, वयुनावत्=प्रकृष्टकान्तिमत् अथवा प्रज्ञापकम्, पुरस्तात्=पूर्वस्यां दिशि, तमसः=अन्धकारात्, अस्थात्= उदतिष्ठत्, (एवं सति), नूनम्=सत्यम्, दिवः=आदित्यस्य, दुहितरः=

दुहितृस्थानीयाः, विभातीः=विभानं कुर्वती, उषसो, जनाय=यजमानानाम्, गातुम्=गमनादिव्यापारसामर्थ्यम्, कृण्वन्=अकुर्वन्।

व्याकरणम्:—दुहिता=दोग्धि पितराविति दुहिता-पितरौ भ्राता आजीवनं याचत एव दुहितेति यथार्थं नाम।

इस सूक्त का वामदेव ऋषि है। उषा देवता है। त्रिष्टुप् छन्द है।

इदम् = यह, उ=प्रसिद्ध, सामने दिखाई देने वाली (जो ज्योति है), त्यत्=वह (हमारे द्वारा स्तुति करने योग्य है), पुरुतमम् = अत्यधिक तेज है, वयुनावत् = प्रकृष्ट कान्ति वाली है, अथवा वयुनावत् =प्रज्ञा मति से युक्त है, अर्थात् सब की प्रज्ञापक है, तथा पुरस्तात्=पूर्व दिशा मे, तमसः=अंधेरे से, अस्थात् = निकली है। अत एव नूनम् = अवश्य ही, दिवः=द्युलोक की या सूर्य की, दुहितरः=कन्या के तुल्य विभातीः=प्रकाश करने वाली, उषसः=उषाएं, जनाय=यजमानो के लिए, गातुम् = गमन या गमनादि व्यापार के सामर्थ्य को, कृण्वन् = कर चुकी हैं।

विशेषः—मैक्डानल 'पुरुतमम्, पुरस्तात्' इन दो शब्दो का अर्थ=पूर्व दिशा मे बार-बार आने वाली (उषा) (most frequent light in the east) मानता है। वयुनावत् = स्पष्टता से युक्त (with clearness) अर्थ करता है।

संहिता-पाठः

२. अस्थुरु चित्रा उषसः पुरस्तान्
मिता इव स्वरवोऽध्वरेषु।
व्यू व्रजस्य तमसो द्वारो-
च्छन्तीरव्रञ्छुचयः पावकाः॥

पद-पाठः

अस्थुः । ऊँ इति । चित्राः । उषसः । पुरस्तात् ।
मिताःऽइव । स्वरवः । अध्वरेषु ।
वि । ऊँ इति । व्रजस्य । तमसः । द्वारा ।
उच्छन्तीः । अव्रन् । शुचयः । पावकाः ॥

२. संस्कृतव्याख्या :—चित्राः=चायनीयाः (श्लावनीयाः), उषसः, पुरस्तात्=पूर्वस्यां दिशि, अस्थुः=तिष्ठन्ति, (तत्र दृष्टान्तः), अध्वरेषु, मिताः=खाताः, स्वरवः=यूपाः, इव, (स्वरुशब्दः यूपच्छेदपतितप्रथमशकलवाची), ताः=उषसः, व्रजस्य=वारकस्य, तमसो, द्वारा=द्वाराणि, वि उच्छन्तीः=उत्सारयन्त्यः, शुचयः=दीप्ताः पावकाः=शोधिकाः, अव्रन्=व्यावृण्वन् ।

व्याकरणम् :—अव्रन्=छान्दसो विकरणलोपः, लङि रूपम् ।

चित्राः=पूजनीय, उषसः=उषाएँ, उ=प्रसिद्ध रीति से, पुरस्तात्=पूर्व दिशा में, अस्थुः=स्थित हैं, व्यापक हैं, उसी प्रकार व्यापक हैं जिस प्रकार, अध्वरेषु=यज्ञों में, मिताः=गाड़े गये, स्वरवः=यूप (वेदि के सामने प्रकाशित होते हैं), वे उषाएँ व्रजस्य=आवरण करने वाले, तमसः=अन्धेरे के, द्वारा=मार्गों को, उ=स्पष्ट रूप में वि-उच्छन्तीः=हटाती हुई, शुचयः=चमकदार, पावकाः=पवित्र करने वाली, अव्रन्=मार्गों को (खोल देती हैं) ।

मैक्डानल के मत में 'चित्रा' पद का अर्थ=ज्ञानवान् (brilliant है, तथा 'व्रजस्य' पद का अर्थ=गोष्ठ (pen—बाड़ा जहाँ पर गौवें बाँधी जाती है) है ।

संहिता-पाठः

३. उच्छन्तीरद्य चितयन्त भोजान्
राधोदेयायोषसो मघोनीः ।

अचित्रे अन्तः पणयः ससन्त्व-
बुध्यमानास्तमसो विमध्ये ॥

पद-पाठः

उच्छन्तीः । अद्य । चितयन्त । भोजान् ।
राधःऽदेयाय । उषसः । मघोनीः ।
अचित्रे । अन्तरिति । पणयः । ससन्तु ।
अबुध्यमानाः । तमसः । विऽमध्ये ॥

३. संस्कृतव्याख्या :—अद्य=अस्मिन् दिने, उच्छन्तीः=तमः विवासन्त्यः, मघोनी=धनवत्यः, उषसः, भोजान्=भोजयितॄन् यजमानान्, राधोदेयाय=सोमादिधनदानाय, चितयन्त=प्रज्ञापयन्ति, अचित्रे=अचायनीये, तमसो विमध्ये=अत्यन्तगाढान्धकारे, (तत्र) पणयः=वणिज इवादातारः, अबुध्यमानाः, ससन्तु=स्वपन्तु ।

अद्य=आज, उच्छन्तीः=अन्धेरे को भगाने वाली, मघोनी=धनो वाली, उषसः=उषाएँ, भोजान् = अपने भोजन कराने वाले अर्थात् उपासक यजमानों को, राधोदेयाय=सोम आदि अन्न या धन देने के लिए, चितयन्त=ज्ञान कराती हैं, अचित्रे=अपूजनीय, तमसः = अन्धेरे के, विमध्ये=विशेष मध्य मे अर्थात् अत्यन्त गहन अन्धकार में, पणयः= दान न देने वाले बनियों की तरह, अन्तः=उस अन्धेरे के बीच मे, अबुध्यमानाः=ज्ञान न रखने वाले कन्जूस यजमानों को, ससन्तु= सुला दे ।

मैक्डानल ने 'भोजान्' पद का अर्थ=उदारता से हवि देने वाले (liberals) किया है। एवं 'चितयन्त' का प्रेरित करे, (stimulate) अर्थ किया है, अर्थात् उषाएं यज्ञादि करने के लिए यजमानों को उकसावे यह अर्थ किया है। 'पणयः'=शब्द का कृपण मनुष्य (niggards) अर्थ किया है।

संहिता-पाठः

४. कुवित्स देवीः सनयो नवो वा
यामो बभूयादुषसो वो अद्य ।
येना नवग्वे अङ्गिरे दशग्वे
सप्तास्ये रेवती रेवदूष ॥

पद-पाठः

कुवित् । सः । देवीः । सनयः । नवः । वा ।
यामः । बभूयात् । उषसः । वः । अद्य ।
येन । नवऽग्वे । अङ्गिरे । दशऽग्वे ।
सप्तऽआस्ये । रेवतीः । रेवत् । ऊष ॥

४. संस्कृतव्याख्या :—हे, देवीः=द्योतमानाः, उषसः, वः=युष्मान्, सनयः=पुराणः, नवो वा, यामः=गमनसाधनः, सः=रथः, अद्य=अस्मिन् यागदिने, कुवित्=बहुवारम्, बभूयात्=भवेत् (गच्छेत्), येन=रथेन, हे रेवतीः=धनवत्यः, (यूयम्), नवग्वे दशग्वे सप्तास्ये=सप्तछन्दोयुक्तमुखे, अङ्गिरे=अङ्गिरोगणे, (नवग्वो नु दशग्वो अङ्गिरस्तमः), रेवत्=धनवत् (यथा भवति) (तथा), ऊष=विभातं कृतवत्यः ।

व्याकरणम् :—स्पष्टम् ।

हे देवीः=चमकदार उषाओ, वः=तुम्हे, सनयः=प्राचीन, वा=अथवा, नवः=नवीन, यामः=गमन का साधन रथ, अद्य=आज यज्ञ के दिन, कुवित्=अनेक बार, बभूयात्=हो अर्थात् चले। येन=जिस रथ के द्वारा, हे रेवतीः=हे धन वाली उषाओ, (तुम) नवग्वे=नौ घोड़ो से जाने वाले, दशग्वे=दश घोड़ों से चलने वाले, सप्तआस्ये—सात लगामो से युक्त मुख वाले, अङ्गिरे=अंगिरा नामके मनुष्य गण में, या नवग्व, दशग्व और सप्तआस्य नामक अंगिराओ मे, रेवत्=जिस

प्रकार से धन की प्राप्ति हो उस प्रकार से, ऊष = अन्धकार को नष्ट करो।

मैक्डानल ने 'ऊष' इस क्रियापद को 'रेवत्' पद के साथ जोड़ कर उषाओ तुमने धन को अंगिराओं के लिए प्रकाशित किया है (ye have shone wealth navagva & daśagva) नवग्व, दशग्व (and seven mouthed) सप्तास्य अङ्गिराओं का यह विशेषण है।

संहिता-पाठः

५. यूयं हि देवीर्ऋतयुग्भिरश्वैः
परिप्रयाथ भुवनानि सद्यः।
प्रबोधयन्तीरुषसः ससन्तं
द्विपाच्चतुष्पाच्चरथाय जीवम्॥

पद-पाठः

यूयम्। हि। देवीः। ऋतयुक्ऽभिः। अश्वैः।
परिऽप्रयाथ। भुवनानि। सद्यः।
प्रऽबोधयन्तीः। उषसः। ससन्तम्।
द्विऽपात्। चतुःऽपात्। चरथाय। जीवम्॥

५. संस्कृतव्याख्या :—हे, देवीः=द्योतमानाः उषसः, यूयम्, हि=खलु, ऋतयुग्भिः=यज्ञगामिभिः, अश्वैः, भुवनानि, सद्यः, परिप्रयाथ=परितः प्रकृष्टं गच्छथ, (किं कुर्वत्यः) ससन्तम्=स्वपन्तम्, द्विपाच्चतुष्पात्—मनुष्यगवादिलक्षणम्, जीवम्, चरथाय=चरणाय, प्रबोधयन्तीः=प्रबोधयन्त्यः सत्यः, (परिप्रयाथ)।

व्याकरणम् :—चरथाय='चर' धातोरौणादिकः अथच् प्रत्ययः।

हे देवीः=चमकदार उषाओ, यूयम् = तुम, हि=निश्चय करके;

ऋतयुग्भिः=यज्ञ को जाने वाले, अश्वैः=घोड़ों से, भुवनानि=संसार को, सद्यः=अतिशीघ्र, परिप्रयाथ=प्राप्त हो जाती हो; तथा ससन्तम्=सोते हुए, द्विपात्=दो पैर वाले, मनुष्यों को, चतुष्पात्=चार पैर वाले पशुओं को और जीवम्=जीवों को, चरथाय=गमन आदि व्यापार करने के लिए, प्रबोधयन्तीः=जगाती हुई जाती हो।'परिप्रयाथ' इस क्रिया में इस वाक्य का अन्वय है।

मैक्डानल ने 'ऋतयुग्भिः' का अर्थ=यथा समय जूए में (प्रासंग में) जोड़े गये (with your steeds yobed in due time) किया है।

संहिता-पाठः

६. क्व॑ स्विदासां कत॒मा पु॑रा॒णी
यया॑ वि॒धाना॑ विद॒धुर्ऋ॒भू॒णाम्।
शुभं॒ यच्छु॒भ्रा उ॒षस॒श्चर॑न्ति
न वि ज्ञा॑यन्ते स॒दृशी॑रजु॒र्याः॥

पद-पाठः

क्व॑। स्वि॒त्। आ॒सा॒म्। क॒त॒मा। पु॒रा॒णी।
यया॑। वि॒ऽधाना॑। वि॒ऽद॒धुः। ऋ॒भू॒णाम्।
शु॒भम्। यत्। शु॒भ्राः। उ॒षसः॑। चर॑न्ति।
न। वि। ज्ञा॒य॒न्ते। स॒ऽदृशीः॑। अ॒जु॒र्याः॥

६. संस्कृतव्याख्या :—आसाम्=उषसां मध्ये, क्वस्वित्=अभूदद्य, कतमा, पुराणी=पुरातनी, यया, ऋभूणाम् (सम्बन्धीनि), विधाना=चमसादिनिर्माणानि, विदधुः=अकुर्वन्, यत्=याश्च, उषस', शुभ्राः=दीप्ताः, शुभं चरन्ति=शोभां दीप्तिं कुर्वन्ति, ताः, अजुर्याः=अशीर्णाः (नूतनाः), न=इव, विज्ञायन्ते, (यतः), सदृशीः=सर्वदा चैकरूपाः।

व्याकरणम् :—अजुर्याः=नञुपपदः जॄधातोः बाहुलकात्, उत्, श्यत्वम्, दीर्घाभावश्छान्दसः।

आसाम्=इन उषाओं के मध्य में, कतमा=कौन सी, क्वस्वित्= कहाँ पर ऐसी उषा थी, जो पुराणी=पुरातन हो, तथा यया=जिससे ऋभूणाम्=ऋभुओं के (ऋभु नामक उषा के उपासक थे), विधाना= चमस आदि साधन, विदधुः=स्वयं बनावें, यत्=जो, उषसः=उषाएँ, शभ्राः=चमकती हुईं, शुभम्=शोभा को, दीप्ति को, चरन्ति=उत्पन्न करती हैं, वे अजुर्याः=नष्ट न होने वाली, (उषाएँ) नित्य नवीन रूप में, न विज्ञायन्ते=नहीं प्रतीत होती हैं, क्योंकि वे सदृशीः=एक सी हैं, सब दिनो मे एक सी ही दिखाई पड़ती हैं अर्थात् एक सी उषाओ में यह नवीन है और यह प्राचीन इस भेद की प्रतीति करना कठिन होता है।

मैक्डानल ने 'शुभम्' का अर्थ = चमकदार मार्ग (shining course) किया है, तथा चरन्ति=चलती हैं अर्थात् प्रकाशित मार्ग पर गमन करती हैं (proceed on their shining course) ऐसा अर्थ किया है।

संहिता-पाठः

७. ता घा ता भद्रा उषसः पुरासुर्
अभिष्टिद्युम्ना ऋतजातसत्याः।
यास्वीजानः शशमान उक्थैः
स्तुवञ्छंसन्द्रविणं सद्य आप॥

पद-पाठः

ताः। घ। ताः। भद्राः। उषसः। पुरा। आसुः।
अभिष्टिऽद्युम्नाः। ऋतजातऽसत्याः।
यासु। ईजानः। शशमानः। उक्थैः।
स्तुवन्। शंसन्। द्रविणम्। सद्यः। आप॥

७. संस्कृतव्याख्या :—ताः, घ इति प्रसिद्धौ, ताः=उपकारिण्यः, ताः भद्राः=कल्याण्य उषसः, पुरा=पूर्वम्, आसुः=अभवन्, अभिष्टिद्युम्नाः= अभिगमनमात्रेण द्युम्नं धनं यासां ताः। ऋतजातसत्याः=यज्ञार्थं जाताः सफलाश्च। यासु=उषःसु, ईजानः=यागं कुर्वाणः, उक्थैः=शस्त्रैः, शशमानः= शंसमानः, स्तुवन्=सामभिः स्तोत्रं निष्पादयन्, शंसन्=शस्त्राणि कुर्वन्, द्रविणं=धनम्, सद्यः, आप=प्राप्नोति, ता भद्रा इति संबन्धः।

व्याकरणम् :—विशदम्।

ताः=वे उषाएँ, घ=यह प्रसिद्ध है कि उपकार करने वाली हैं, ताः= और वे उषाएँ, भद्राः=कल्याण करने वाली हैं, अथवा स्तुत्य हैं, तथा वे पुरा=प्राचीन काल में, आसुः=थीं। जो अभिष्टिद्युम्नाः = अपने पहुँचने मात्र से, अभिगमन करने वाले को, द्युम्न = धन को देने वाली, तथा ऋतजातसत्याः=यज्ञ के लिए उत्पन्न हुई और सत्य अर्थात् निश्चित रूप से फल देने वाली थीं। यासु=जिन उषाओं में, ईजानः= यज्ञ करने वाला, उक्थैः=शस्त्र नामक मंत्रों या ऋचाओं से, शशमानः =प्रशंसा करने वाला, स्तुवन्=सामगान के स्तोत्र नामक मंत्रों को बोलने वाला, और शंसन् = शस्त्र नामक मंत्रों को बोलता हुआ (यजमान), द्रविणम् = धन को, सद्यः=शीघ्र, आप=प्राप्त कर लेता है (ऐसी वे ऋचाएँ कल्याणकारिणी हैं)।

मैक्डानल ने 'अभिष्टिद्युम्ना' का अर्थ=सहायता करने मे अग्रसर (splendid in help) और ऋतजातसत्याः=समय को कभी न चूकने वालीं (उषाएँ) (punctually true), एवं 'शशमानः' का अर्थ परिश्रमी, (strenuous) किया है।

संहिता-पाठः

८. ता आ चरन्ति समना पुरस्तात्
समानतः समना पप्रथानाः।

ऋतस्य देवीः सदसो बुधाना
गवां न सर्गा उषसो जरन्ते ॥

पद-पाठः

ताः । आ । चरन्ति । समना । पुरस्तात् ।
समानतः । समना । पप्रथानाः ।
ऋतस्य । देवीः । सदसः । बुधानाः ।
गवाम् । न । सर्गाः । उषसः । जरन्ते ॥

८. संस्कृतव्याख्याः—ताः=उषसः, आ=सर्वतः, चरन्ति, समना= सर्वतः समानाः, पुरस्तात्=पूर्वस्यां दिशि, समानतः=समानाद्देशात्, अन्तरिक्षात्, समना=सर्वतः, पप्रथानाः=प्रथमानाः, ऋतस्य=यज्ञस्य, सदसः=सदः ऋत्विग्घविरादिकमित्यर्थः, बुधानाः=बोधयन्त्यः एवं भूताः, उषसः, जरन्ते=स्तूयन्ते, गवाम्=उदकानाम्, सर्गाः=सृष्टयः, न=इव ।

व्याकरणम्:—सुगमम् ।

ताः=वे उषाएँ, आ = सब तरफ से, चरन्ति=संचरण करती हैं, समना = एकत्रित की हुई, पुरस्तात् = पूर्व दिशा में, समानतः=एक अन्तरिक्षरूपी स्थान से, समना=चारो ओर से, पप्रथानाः=विस्तृत होती हुई, ऋतस्य=यज्ञ की, सदसः = वेदि मे स्थापित हवि आदि को, बुधानाः=ज्ञापित कराती हुई, गवाम् =जलो की या किरणों की, न= समान (तरह), जरन्ते=स्तुति करती हैं, जिस प्रकार जल और किरणें आवरक होने से स्तुत्य होती हैं वैसे ही उषाएँ भी प्रकाशक होने से स्तुति के योग्य बनती हैं।

मैक्डानल के मत में 'समना का अर्थ एक रूप से (equally) है। 'बुधानाः' का अर्थ जगाती हुई (waking) है, ऋतस्य=नियम (seat of order) है। "गवाम्" का गोसमुदाय (herds of

kind) है। अर्थात् गौओं के खुले झुण्ड की तरह उषाएँ भी क्रिया-शील प्रतीत होती हैं।

संहिता-पाठः

९. ता इन्न्वे३व समना समानीर्
अमीतवर्णा उपसश्चरन्ति।
गूहन्तीरभ्वमसितं रुशद्भिः
शुक्रास्तनूभिः शुचयो रुचानाः॥

पद-पाठः

ताः। इत्। नु। एव। समना। समानीः।
अमीतऽवर्णाः। उषसः। चरन्ति।
गूहन्तीः। अभ्वम्। असितम्। रुशत्ऽभिः।
शुक्राः। तनूभिः। शुचयः। रुचानाः॥

९. संस्कृतव्याख्या:—ता एव उषसः, इत् (पूरणार्थकम्), नु=अद्य, समना:=समाना एकधेत्यर्थः, समानीः=एकरूपाः, अमीतवर्णाः=अहिंसितवर्णाः अथवा अपरिमितवर्णाः, उषसः, चरन्ति, किं कुर्वत्यः तदाह—अभ्वम् =अतिमहत्, असितम्=कृष्णम्, (रूपम्) गूहन्ती=गोपयन्त्यः, रुशद्भिः=रोचमानैः, तनूभिः=शरीरैः, शुक्राः=दीप्ताः, शुचयः=शुद्धाः, रुचानाः=रोचमानाः, (सन्त्यः)।

व्याकरणम्:—न वक्तव्यमपेक्षते।

ताः=वे, एव=ही, इत्, नु=आज, समना=एक सी, अर्थात् एक बार, समानीः=एक से रूप वाली, अमीतवर्णाः=जिनका रूप नष्ट नहीं हुआ है, अर्थात् चमकदार अथवा अनन्त रूप वाली, उषसः=उषाएँ चरन्ति=सब तरफ घूमती हैं। वे अभ्वम् =महान्, असितम् = काले रूप को (रात्रि के), गूहन्तीः=छिपाती हुई या नष्ट करती हुई, रुशद्भिः=

चमकदार, तनूभिः=अपने शरीरों से, शुक्राः=दीप्त होती हुई, शुचयः=पवित्र, रुचानाः=प्रकाशवान् बनी हुई आकाश में विचरण करती हैं।

मैक्डानल ने 'असितम' पद का अर्थ काला दैत्य (black monster) किया है।

संहिता-पाठः

१०. रयिं दिवो दुहितरो विभातीः
प्रजावन्तं यच्छतास्मासु देवीः।
स्योनादा वः प्रतिबुध्यमानाः
सुवीर्यस्य पतयः स्याम॥

पद-पाठः

रयिम्। दिवः। दुहितरः। विऽभातीः।
प्रजाऽवन्तम्। यच्छत। अस्मासु। देवीः।
स्योनात्। आ। वः। प्रतिऽबुध्यमानाः।
सुऽवीर्यस्य। पतयः। स्याम॥

१०. संस्कृतव्याख्या:—हे दिवो दुहितरः=आदित्यस्य दुहितृस्थानीयाः, विभातीः=विशेषेण भानं कुर्वत्यः, अस्मासु, प्रजावन्तम्=पुत्राद्युपेतम्, रयिम्=धनम्, यच्छत=दत्त। हे देवीः=देव्यः, स्योनात्=सुखात्, वः=युष्मान्, प्रतिबुध्यमानाः=प्रतिबोधयन्तो वयम्, सुवीर्यस्य=पुत्रादिसहितस्य धनस्य, पतयः=पालकाः, स्याम=भवेम।

व्याकरणम्:—स्पष्टम्।

दिवः=प्रकाशमान् सूर्य की, हे दुहितरः=कन्या के समान, विभातीः =प्रकाशित होने वाली उषाओ, अस्मासु=हमारे लिए, रयिम् =पुत्रादि युक्त धन को, यच्छत =प्रदान करो, (हे) देवीः=हे प्रकाशमान उषाओ

स्योनात् =सुख की प्राप्ति के कारण से, वः=तुम्हे (उषाओं को) प्रतिबुध्यमानाः=प्रतिबोधन कराते हुए हम लोग, सुवीरस्य=पुत्रादि रूप उत्तम धन के, पतयः=पालक, स्याम=बने (यहाँ) 'वः' से पूर्व जो आकार है वह केवल छन्दःपूर्ति के लिए है।

मैक्डानल ने 'स्योनात्' का अर्थ सुखदायक गद्देदार पलंग से, प्रतिबुध्यमानाः=जागते हुए हम लोग (awaking from our soft couch) किया है।

संहिता-पाठः

११. तद्वो दिवो दुहितरो विभातीर्
उप ब्रुव उषसो यज्ञकेतुः ।
वयं स्याम यशसो जनेषु
तद्द्यौश्च धत्तां पृथिवी च देवी ॥

पद-पाठः

तत् । वः । दिवः । दुहितरः । विऽभातीः ।
उप । ब्रुवे । उषसः । यज्ञऽकेतुः ।
वयम् । स्याम । यशसः । जनेषु ।
तत् । द्यौः । च । धत्ताम् । पृथिवी । च । देवी ॥

११. संस्कृतव्याख्या :—हे दिवो दुहितरः ! उषसः ! विभातीः, वः=युष्मान्, तत् =वक्ष्यमाणं फलम्, यज्ञकेतुः=यज्ञ एव केतुः प्रज्ञापको यस्य सोऽहम्, उपब्रुवे=उपेत्य ब्रवीमि । वयम् =स्तुवन्तः, जनेषु=अस्मत्समानेषु मध्ये, यशसः=कीर्तेः अन्नस्य वा, स्वामिनः, स्याम, तत्=यशः, द्यौः पृथिवी च, देवी, धत्ताम् =धारयताम् ।

व्याकरणम् :—स्पष्टम् ।

दिवः=सूर्य की, (हे) दुहितरः=पुत्री रूप, उषसः=उषाओ ! विभातीः= विशेष या विविध प्रकार से चमकती हुई वः=तुम्हे, तत् =उस (इस

मन्त्र के तीसरे चरण में कहे गये फल को), यज्ञकेतुः = यज्ञ से ज्ञान प्राप्त करने वाला मैं, उपब्रुवे=अधिकतया माँगता हूँ, कि वयम् = हम लोग, जनेषु=अपने समान मनुष्यों में, यशसः=कीर्ति या अन्न के (स्वामी) स्याम = बनें, तत् = उस यश या अन्न को, द्यौः= द्युलोक, च=और, पृथिवी देवी = भूमि रूप देवी, धत्ताम् = हमें प्राप्त करावे।

मैक्डानल ने 'यज्ञकेतु' का अर्थ प्रज्ञान कराने वाले नहीं किन्तु झंडा अर्थात् (whose banner is the sacrifice) अर्थ किया है, तथा 'यशसः' का अर्थ केवल कीर्ति ही लिया है।

(५-८३) पर्जन्य

संहिता-पाठः

१. अच्छा वद तवसं गीर्भिराभिः
स्तुहि पर्जन्यं नमसा विवास ।
कनिक्रदद्वृषभो जीरदानू
रेतो दधात्योषधीषु गर्भम् ॥

पद-पाठः

अच्छ । वद । तवसम् । गीःऽभिः । आभिः ।
स्तुहि । पर्जन्यम् । नमसा । आ । विवास ।
कनिक्रदत् । वृषभः । जीरऽदानुः ।
रेतः । दधाति । ओषधीषु । गर्भम् ॥

१. संस्कृतव्याख्या :—हे स्तोतः, तवसम् =बलवन्तम्, पर्जन्यम्, अच्छ=अभिप्राप्य, वद= प्रार्थय, आभिः गीर्भिः=स्तुतिवाग्भिः, स्तुहि,

नमसा=अन्नेन (हविर्लक्षणेन)। आ विवास=सर्वतः परिचर, (यः पर्जन्यः), वृषभः=अपां वर्षिता, जीरदानुः=क्षिप्रदानः, कनिक्रदत् =गर्जनशब्दं कुर्वन्, ओषधीषु, गर्भम् =गर्भस्थानीयं, रेतः=उदकम्, दधाति=स्थापयति।

व्याकरणम्:—जीरदानुः=जीवरदानुक्।

परिचय—इस सूक्त का ऋषि भूमि का पुत्र अत्रि है, पर्जन्य देवता है, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टु छन्द हैं। १, ५, ६, ७, ८ वा १० वें मन्त्र में त्रिष्टुप् छन्द है, २, ३, ४ मे जगती छन्द है, ९वें में अनुष्टुप् छन्द है।

विशेषः—वृष्टि की कामना वाले व्यक्ति को विना भोजन किये, गीले वस्त्र पहन कर इस सूक्त का पाठ करना चाहिए।

(हे स्तोता तू) तवसम् =बलवान्,पर्जन्यम् =मेघ के, अच्छा=अभिमुख जा कर, वद=प्रार्थना कर। आभिः=इन,गीर्भिः=स्तुतियो से, स्तुहि = स्तुति कर। नमसा=हवि रूपी अन्न से, आविवास=चारों ओर से उस पर्जन्य की सेवा कर। जो पर्जन्य वृषभः = जलों का बरसाने वाला, जीरदानुः=जल्दी (जल का) दान देने वाला, कनिक्रदत् =गर्जन शब्द को करता हुआ, ओषधीषु=ओषधियो में, वनस्पतियों में, गर्भम् =गर्भ के समान मध्यवर्ती, रेतः=जल को, दधाति=स्थापित करता है। उस की स्तुति करो।

मैकडानल के मत में 'नमसा' का अर्थ नमस्कार (obeisance) है। 'कनिक्रदत्' =डकारता हुआ (bellowing) (साँड) अर्थ किया है। 'गर्भम्' बीज (seed) अर्थ किया है। 'रेतः' वीर्य के कीटाणु (germs) किया है।

संहिता-पाठः

२. वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसो
विश्वं बिभाय भुवनं महावधात् ।
उतानागा ईषते वृष्ण्यावतो
यत्पर्जन्यः स्तनयन् हन्ति दुष्कृतः ॥

पद-पाठः

वि । वृक्षान् । हन्ति । उत । हन्ति । रक्षसः ।
विश्वम् । बिभाय । भुवनम् । महाऽवधात् ।
उत । अनागाः । ईषते । वृष्ण्यऽवतः ।
यत् । पर्जन्यः । स्तनयन् । हन्ति । दुःऽकृतः ॥

२. संस्कृतव्याख्या :—पर्जन्यः वृक्षान् विहन्ति च, रक्षांसि सर्वाणि च अस्मात् भूतानि बिभ्यति, (कस्मात्—तदाह) महावधात्, अप्यनपराधी भीतः पलायते, वर्षकर्मवतो यत्पर्जन्यः स्तनयन् हन्ति दुष्कृतः=पापकृतः, स्पष्टमत्र ।

व्याकरणम् :—स्पष्टम् ।

(यह पर्जन्य) वृक्षान् =पेड़ो को, विहन्ति=ओले बरसा कर नष्ट करता है, उत=और, रक्षसः=हानिकारक जन्तुओ को भी नष्ट करता है, विश्वम् = सारा, भुवनम् =संसार अर्थात् प्राणिमात्र, महावधात् = पर्जन्य के द्वारा की गई अतिवृष्टि से या वर्षा के बिलकुल न पड़ने से हुई अनावृष्टि से, बिभाय=डरता है, उत=और, अनागाः=पक्षपात शून्य या पापरहित यह मेघ, वृष्ण्यावतः=पापियो का, ईषते=शासन करता है, यत् =जो कि, पर्जन्यः=मेघ, स्तनयन् = गर्जन करता हुआ, दुष्कृतः= अनावृष्टि से उत्पन्न दुःखो को, हन्ति=नष्ट कर देता है ।

मैक्डानल के मत में 'महावधात्' का अर्थ मेघ के शक्तिशाली अस्त्र से (of the mighty weapon) है। "वृष्ण्यावतः" का शक्तिशाली मेघ के समक्ष, ईषते=भाग जाता है (sinless man flees before the mighty one) अर्थ किया है।

संहिता-पाठः

३. र॒थीव॒ कश॒याश्वाँ॑ अभिक्षि॒पन्ना॒विर्दू॒तान्कृ॑णुते व॒र्ष्याँ३॒ अह॑ ।
दू॒रात्सिं॒हस्य॑ स्त॒नथा॒ उदी॑रते॒ यत्प॒र्जन्यः॑ कृणु॒ते व॒र्ष्यं॑१॒ नभः॑ ॥

पद-पाठः

र॒थीऽइ॑व । कश॑या । अश्वा॑न् । अ॒भि॒ऽक्षि॒पन् ।
आ॒विः । दू॒तान् । कृ॒णु॒ते॒ । व॒र्ष्या॑न् । अह॑ ।
दू॒रात् । सिं॒हस्य॑ । स्त॒नथाः॑ । उत् । ई॒र॒ते॒ ।
यत् । प॒र्जन्यः॑ । कृ॒णु॒ते । व॒र्ष्य॑म् । नभः॑ ॥

३. संस्कृतव्याख्या :—रथीव=रथस्वामीव, कशया अश्वान् (इव) अभिक्षिपन्, दूतान्=भटान्, आविष्करोति, तद्वदसौ पर्जन्योऽपि, मेघान्, अभिप्रेरयन्, वर्ष्यान्=वर्षकान्, दूतान्=दूतवत्, आविः कृणुते=प्रकटयति, अह इति पूरणः, (एवं सति) सिंहस्य=अवर्षणेनाभिभवितुः मेघस्य, स्तनथाः=गर्जनशब्दाः, दूरात् उदीरते=उद्गच्छन्ति, (कदा) यत्=यदा, पर्जन्यः, नभः=अन्तरिक्षम्, वर्षम्=वर्षोपेतम्, कृणुते=करोति ।

व्याकरणम् :—अव्याकरणीयमेतत् ।

रथीव=सारथि के समान, कशया=चाबुक से, अश्वान्=घोड़ों को, अभिक्षिपन्=प्रेरणा देता हुआ, भगाता हुआ यह पर्जन्य, अह=निश्चय करके, वर्ष्यान्=वृष्टि करने वाले, दूतान्=योद्धा जैसे मेघों को, आविः

कृणुते=आकाश में चारो ओर प्रकट करता है। सिंहस्य=सिंह के समान गर्जन करने वाले मेघ के, स्तनथाः=गर्जने के शब्द, दूरात् =दूर से, उदीरते=सुनाई पड़ते हैं। यत् =जब कि, पर्जन्यः=मेघ, नभ=आकाश को, वर्ष्यम् =वर्षायुक्त, कृणुते=बनाता है।

मैक्डानल के मत में कोई भी विशेष अन्तर नहीं है।

संहिता-पाठः

४. प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत
उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्वः।
इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते
यत्पर्जन्यः पृथिवीं रेतसावति ॥

पद-पाठः

प्र। वाताः। वान्ति। पतयन्ति। विऽद्युतः।
उत्। ओषधीः। जिहते। पिन्वते। स्व१रिति स्वः।
इरा। विश्वस्मै। भुवनाय। जायते।
यत्। पर्जन्यः। पृथिवीम्। रेतसा। अवति ॥

४. संस्कृतव्याख्या :—प्र वान्ति वाताः (वृष्ट्यर्थम्), पतयन्ति=गच्छन्ति, समन्तात् संचरन्ति, विद्युतः, ओषधीः=ओषधयः, उत् जिहते=उद्गच्छन्ति प्रवर्धन्ते, स्वः=अन्तरिक्षम्, पिन्वते=क्षरति, इरा=भूमिः, विश्वस्मै=सर्वस्मै, भुवनाय=सर्वजगद्धिताय, जायते=समर्था भवति, कदा इत्याह, यत् =यदा, पर्जन्यः=देवः, पृथिवीम्, रेतसा=उदकेन, अवति=रक्षति।

व्याकरणम् :—न व्याकरणीयमेतस्मिन्।

वाताः=हवाएँ, प्रवान्ति=वर्षा के लिए चलने लगती हैं, विद्युतः=बिजलियाँ, पतयन्ति=गिरती हैं, चमकती हैं, ओषधीः=वनस्पतियाँ,

उज्जिहते=अंकुरित होने लगती हैं या बढ़ना शुरू कर देती हैं। स्वः=अन्तरिक्षलोक, अर्थात् आकाश, पिन्वते=जल की बूँदें टपकाने लगता है। इरा=पृथिवी, विश्वस्मै=सारे, भुवनाय=संसार के लिए अर्थात् संसार के कल्याण के लिए, जायते=समर्थ हो जाती है, यत् = जब कि पर्जन्यः=मेघ, पृथिवीं=भूलोक को, रेतसा=अपने जल से, अवति=रक्षा करता है अर्थात् सींचता है।

मैक्डानल के मत में 'पिन्वते' का अर्थ टपकना नहीं किन्तु पूर्ण हो जाना (over flows) है। अवति का अर्थ रक्षा करना नहीं किन्तु "अंकुरयति' उत्पत्ति के लिए पृथ्वी को प्रेरणा करना (quicken) किया है।

संहिता-पाठः

५. यस्य॑ व्र॒ते पृ॑थि॒वी नन्न॑मीति॒
यस्य॑ व्र॒ते श॒फव॒ज्जर्भु॑रीति।
यस्य॑ व्र॒ते ओष॑धीर्वि॒श्वरू॑पाः
स नः॑ पर्जन्य॒ महि॒ शर्म॑ यच्छ॒ ॥

पद-पाठः

यस्य॑। व्र॒ते। पृ॒थि॒वी। नन्न॑मीति।
यस्य॑। व्र॒ते। श॒फऽव॑त्। जर्भु॑रीति।
यस्य॑। व्र॒ते। ओष॑धीः। वि॒श्वऽरू॑पाः।
सः। न॒ः। प॒र्ज॑न्य॒। महि॑। शर्म॑। य॒च्छ॒॥

५. संस्कृतव्याख्या:—यस्य=पर्जन्यस्य, व्रते=कर्मणि, पृथिवी, नन्नमीति=अत्यर्थं नमति, यस्य व्रते, शफवत्=पादोपेतं गवादिकम्, जर्भुरीति=भ्रियते, पूर्यते गच्छति वा यस्य व्रते, ओषधीः=ओषध्यः,

विश्वरूपाः=नानारूपा भवन्ति, पर्जन्य ! सः त्वम्, नः=अस्मभ्यम्, महि शर्म=महत् सुखम्, यच्छ=प्रयच्छ।

व्याकरणम् :—जर्भुरीति=भृ+यङ्लुक्, लट् =बर्भरीति, छान्दसत्वात् 'उदोष्ठ्यपूर्वस्ये'ति उरादेशः गुणः, अभ्यासस्य जरादेशः।

यस्य=जिस मेघ के, व्रते=कर्म के लिए, पृथिवी=भूलोक, नन्नमीति =अत्यधिक झुक जाता है, यस्य=जिस मेघ के, व्रते=बरसाने रूपी कर्म के लिए, शफवत् = खुर के परिमाण से युक्त स्थान की तरह सारी पृथिवी, जर्भुरीति=जल से पूर्ण हो जाती है, यस्य=जिस मेघ के, व्रते= पानी बरसाने की, विश्वरूपाः=पानी बरसाने वाली, ओषधीः= वनस्पतियाँ, अंकुरित हो जाती हैं, सः = ऐसे, हे पर्जन्य=हे मेघो, तुम नः=हमारे लिए, महि=अत्यधिक, शर्म=सुख को, यच्छ=प्रदान करो।

मैक्डानल ने 'व्रते' का अर्थ=(ordinance) किया है। 'शफवत्' जर्भुरीति, इस वाक्य का खुर वाले प्राणी कूदने लगते हैं (hoofed animals leap about) किया है। 'शर्म' का अर्थ सुख नहीं किया किन्तु आश्रय (shelter) किया है।

संहिता-पाठः

६. दिवो नो वृष्टिं मरुतो ररीध्वं
प्र पिन्वत वृष्णो अश्वस्य धाराः।
अर्वाङेतेन स्तनयित्नुनेह्य्
अपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः॥

पद-पाठः

दिवः। नः। वृष्टिम्। मरुतः। ररीध्वम्।
प्र। पिन्वत। वृष्णः। अश्वस्य। धाराः।
अर्वाङ्। एतेन। स्तनयित्नुना। आ। इहि।
अपः। निऽसिञ्चन्। असुरः। पिता। नः॥

६. संस्कृतव्याख्या :—हे मरुतः! यूयम्, दिवः=अन्तरिक्षसकाशात्, नः=अस्मदर्थम्, वृष्टिम्, ररीध्वम्=दत्त, वृष्णः=वर्षकस्य, अश्वस्य=व्यापकस्य मेघस्य, धाराः=उदकधाराः, प्र पिन्वत=प्रक्षरत, हे पर्जन्य! त्वम्, एतेन स्तनयित्नुना=गर्जता मेघेन सह, अर्वाङ्=अस्मदभिमुखम्, एहि=आगच्छ, किं कुर्वन्, अपः=अम्भांसि, निषिञ्चन्, असुरः=उदकानां निरसितामपि, नः=अस्माकम्, पिता=पालकः (अस्ति)।

व्याकरणम् :—ररीध्वम्=रीङ् गतौ लिङ् मध्यमपुरुषबहुवचन, रेरीयध्वम् इति प्राप्ते छान्दसत्वाद्ररीध्वम्।

मरुतः=हे मरुद्गणो! दिवः=अन्तरिक्ष से, नः हमारे लिए, वृष्टिम्=वर्षा को, ररीध्वम्=प्रदान करो, वृष्णः=वर्षा करने वाले, अश्वस्य=व्यापक मेघ की, धाराः=धाराओ को, प्रपिन्वत=गिराओ, टपकाओ। हे पर्जन्य! तू इस, स्तनयित्नुना=गर्जते हुये मेघ के साथ, अर्वाङ्=हमारे सम्मुख, एहि=आ, और तू, अपः=जल को, निषिंचन्=सींचता हुआ, असुरः=जलों का बिखेरने वाला या उनको प्रेरणा करने वाला होता हुआ, नः=हम लोगों का, पिता पालक है।

मैक्डानल ने 'अश्वस्य' का अर्थ घोड़ा (stallion) किया है। "अर्वाङ्' का अर्थ (higher) ऊँचा किया है।

संहिता-पाठः

७. अभि क्रन्द स्तनय गर्भमा धा
उदन्वता परि दीया रथेन।
दृतिं सु कर्ष विषितं न्यञ्चं
समा भवन्तूद्वतो निपादाः॥

पद-पाठः

अभि । क्रन्द । स्तनय । गर्भम् । आ । धाः ।
उदन्ऽवता । परि । दीय । रथेन ।
दृतिम् । सु । कर्ष । विऽसितम् । न्यञ्चम् ।
समाः । भवन्तु । उत्ऽवतः । निऽपादाः ॥

७. संस्कृतव्याख्या :—अभि=भूम्यभिमुखम्, क्रन्द=शब्दय, स्तनय=गर्ज, गर्भम् =गर्भस्थानीयमुदकम्, आ धाः=(ओषधीषु) आधेहि, (तदर्थम्) उदन्वता=उदकवता, रथेन, परिदीय=परितो गच्छ, दृतिम् = दृतिवदुदकधारकं मेघम्, विषितम् =विशेषेण सितं बद्धम्, न्यञ्चम् =अधोमुखम्, सु कर्ष=सुष्ठु आकर्षय (वृष्ट्यर्थम्), (एवं सति) उद्वतः=ऊर्ध्ववन्तः उन्नतप्रदेशाः, निपादाः=न्यग्भूतपादाः, समाः=एकस्थाः, भवन्तु=उदकपूर्णा भवन्तु ।

व्याकरणम् :—स्पष्टं व्याकरणम् ।

हे पर्जन्य ! अभि=पृथिवी के सामने, क्रन्द=गर्जन करो, और स्तनय=बार-बार गर्जन करो । गर्भम्=अपने मध्य स्थित तुम जल को, आधाः=ओषधियो को स्थापित करो, उदन्वता=जल वाले, रथेन=रथ से, परिदीय=सब तरफ गमन करो, दृतिम् =मशक के समान जल को धारण करने वाले मेघ को, जो विसितम्=अच्छे प्रकार बंधा हुआ है उसे, सु=अच्छे प्रकार, कर्ष=हे मरुद्गणो खींचो या विषितम्=अच्छे प्रकार बन्धन से रहित मेघ को बना कर वर्षा के लिए प्रेरित करो, तथा न्यञ्चम्=नीचे को, जल देने के लिए मेघ को प्रेरित करके, उद्वतः=उन्नत स्थानों को पानी भर जाने से, निपादाः=नीचा स्थान बना कर सब पृथिवी स्थल, समाः=एक से, अर्थात् जलपूर्ण, भवन्तु=हो जावें ।

मैक्डानल के मत मे 'निपादाः' का अर्थ (Valleys) खाईयाँ घाटियाँ है ।

संहिता-पाठः

८. महान्तं कोशमुदचा नि षिञ्च
स्यन्दन्तां कुल्या विषिताः पुरस्तात्।
घृतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि
सुप्रपाणं भवत्वघ्न्याभ्यः ॥

पद-पाठः

महान्तम् । कोशम् । उत् । अच । नि । सिञ्च ।
स्यन्दन्ताम् । कुल्याः । विऽसिताः । पुरस्तात् ।
घृतेन । द्यावापृथिवी इति । वि । उन्धि ।
सुऽप्रपानम् । भवतु । अघ्न्याभ्यः ॥

८. संस्कृतव्याख्या :—हे पर्जन्य ! त्वम्, महान्तम् = प्रवृद्धम्, कोशम् =कोशस्थानीयं मेघम्, उदच=उद्गमय, निषिञ्च=नीचैः क्षारय, कुल्याः=नद्यः, विषिताः=विप्लुताः, स्यन्दन्ताम् =प्रवहन्तु, पुरस्तात् = पूर्वाभिमुखम्, घृतेन=उदकेन, द्यावापृथिवी=दिवं पृथिवीं च, व्युन्धि= क्लेदय (अत्यधिकम्)। अघ्न्याभ्यः=गोभ्यः, सुप्रपाणम् =सुष्ठु प्रकर्षेण पातव्यम्, भवतु ।

व्याकरणम् :—सुबोध्यं व्याकरणम् ।

हे पर्जन्य ! तू महान्तम्=बढ़े हुए, कोशम्=कोश के समान सुरक्षित जल-समुदाय वाले मेघ को, उदच=जल बरसाने के लिए आकाश में उठा दे, तथा निषिञ्च=मेघ से जल को नीचे गिरा दे, कुल्याः=नदियों, विषिताः=अच्छी प्रकार जल से भरी हुई, पुरस्तात् =पूर्व की ओर, स्यन्दन्ताम्=बहे, अर्थात् नदियो में खूब जल बढ़े । घृतेन=जल से, द्यावापृथिवी=द्युलोक और पृथिवीलोक को, वि-उन्धि (व्युन्धि)=विशेषतया गीला करो; तथा इस प्रकार अघ्न्याभ्यः=गौ आदि पशुओं के लिए, सुप्रपाणम्=अच्छे प्रकार पीने योग्य जल, भवतु=हो जावे ।

मैकडानल ने 'कोश' का अर्थ=डोल (bucket) किया है 'घृतेन' का अर्थ प्रसिद्ध घी (ghee) ही कर दिया है।

संहिता-पाठः

९. यत्पर्जन्य कनिक्रदत्
स्तनयन् हंसि दुष्कृतः।
प्रतीदं विश्वं मोदते
यत्किं च पृथिव्यामधि॥

पद-पाठः

यत्। पर्जन्य। कनिक्रदत्।
स्तनयन्। हंसि। दुःऽकृतः।
प्रति। इदम्। विश्वम्। मोदते।
यत्। किम्। च। पृथिव्याम्। अधि॥

९. संस्कृतव्याख्याः—हे पर्जन्य! यत्=यदा त्वम्, कनिक्रदत्=अत्यर्थं शब्दयन्, स्तनयन्, दुष्कृतः=पापकृतो मेघान्, हसि=विदारयसि, (तदानीम्), इदम् विश्वम्, प्रति मोदते, यत्किं च, पृथिव्यामधि=भूम्यामधिष्ठितम्, (तत्सर्वं मोदते इत्यर्थः)।

व्याकरणम्:—निगदनीतार्थं व्याकरणम्।

हे पर्जन्य!=हे मेघ!, यत्=जब, तू कनिक्रदत्=अत्यधिक गरजता हुआ, स्तनयन्=बिजली कड़काता हुआ, दुष्कृतः=जल न बरसाने से पापी मेघों को, हंसि=मारता है, विदीर्ण करता है, तब इदम्=यह, विश्वम्=सारा संसार, प्रतिमोदते=अत्यन्त प्रसन्न होता है, तथा यत् किंच=जो कुछ, अधि-पृथिव्याम्=पृथिवीलोक पर स्थित चराचर जगत् है, वह भी प्रतिमोदते=प्रसन्न होता है।

संहिता-पाठः

१०. अवर्षीर्वर्षमुदु षू गृभाया-
कर्धन्वान्यत्येतवा उ ।
अजीजन ओषधीर्भोजनाय कम्
उत प्रजाभ्योऽविदो मनीषाम् ॥

पद-पाठः

अवर्षीः । वर्षम् । उत् । ऊं इति । सु । गृभाय ।
अकः । धन्वानि । अतिऽएतवै । ऊ इति ।
अजीजनः । ओषधीः । भोजनाय । कम् ।
उत । प्रऽजाभ्यः । अविदः । मनीषाम् ॥

१०. संस्कृतव्याख्या :—हे पर्जन्य ! त्वम्, अवर्षीः=वृष्टवानसि, वर्षमुदु षू गृभाय=उत्कृष्टं सुष्ठु गृहाण, धन्वानि=निरुदकप्रदेशान्, अकः=जलवतः कृतवानसि । किमर्थमित्याह—अत्येतवा उ=अतिक्रम्य गन्तुम्, ओषधीः, अजीजनः=उदपादयः, (किमर्थम्) भोजनाय=धनाय भोगाय वा, कम्=(पादपूरणः), उत=अपि च, प्रजाभ्यः सकाशात्, मनीषाम्=स्तुतिम्, अविदः=प्राप्तवानसि ।

व्याकरणम् :—अत्येतवा उ=इण् गतौ, तुमुन्नर्थे तवै प्रत्ययः कृत्यार्थे 'तवैकेन्केन्यत्वन.' तवेङ् तवे स्पष्टमन्यत् ।

यह ऋचा अतिवृष्टि को दूर करने वाली है । हे पर्जन्य ! तू वर्षम्=वृष्टि को, अवर्षीः=बरसा चुका है, अब इस वृष्टि को उत्=अच्छी तरह, उ=निश्चय से, सु=दृढ़ता के साथ, गृभाय=ग्रहण कर, रोक ले, धन्वानि=मरु प्रदेशों को, तू ने अकः=जल (कर दिया) वाला बना दिया है और उन्हे अत्येतवै=जा कर अतिक्रमण करने योग्य, उ=भी बना दिया है, अर्थात् मरुस्थलों में भी जल के कारण प्राणी यात्रा के लिए निकलने

लगे हैं, तथा ओषधीः=ओषधियों को, भोजनाय=भोग के लिए, अजीजनः=उत्पन्न किया है, इसी कारण से प्रजाभ्यः=प्राणियों से, मनीषाम्=स्तुति को, उत=भी, अविदः=प्राप्त कर चुके हो। यहाँ 'कम्' शब्द केवल पादपूर्ति के लिए है, अतः निरर्थक है।

मैक्डानल ने 'मनीषाम्' का अर्थ मन्त्र (hymn) किया है।

(६-५४) पूषन्

संहिता-पाठः

१. सं पूषन्विदुषा नय यो अञ्जसानुशासति।
य एवेदमिति ब्रवत् ॥

पद-पाठः

सम्। पूषन्। विदुषा। नय। यः। अञ्जसा। अनुऽशासति।
यः। एव। इदम्। इति। ब्रवत् ॥

१. संस्कृतव्याख्या :—हे, पूषन् =पोषकदेव ! विदुषा=जानता (तेन जनेन) सं नय=(अस्मान्) संगमय, यः=विद्वान्, अञ्जसा=ऋजुमार्गेण, अनुशासति=नष्टद्रव्यप्राप्त्युपायमुपदिशति, यश्च, एव=एवम्, इदम् = धनम् (नष्टं), इति ब्रवत् =ब्रवीति, नष्टं धनं दर्शयतीत्यर्थः।

परिचय :—इस सूक्त का भरद्वाज ऋषि है, पूषा देवता है और इस में गायत्री छन्द है।

हे पूषन्=पोषक सूर्यदेव, विदुषा=ज्ञानवान् उस आदमी के साथ, हमें सनय=मिला दे, यः=जो विद्वान्, अंजसा=सरल मार्ग से, अनुशासति=खोये हुए पदार्थों की प्राप्ति का उपाय बतलाए और यः=जो, एव=ही इस प्रकार से, इदम्=यह खोया हुआ तुम्हारा धन

जो नष्ट हो गया है अमुक स्थान पर है, इति=इस बात को, ब्रवत्=बतलाए, अर्थात् हमारे नष्ट हुए धन को प्राप्त करावे, उस विद्वान् से हमें मिला दीजिए ।

संहिता-पाठः

२. समु॑ पू॒ष्णा ग॑मेमहि॒ यो गृ॒हाँ अ॑भि॒शास॑ति ।
इ॒म ए॒वेति॑ च॒ ब्रव॑त् ॥

पद-पाठः

सम् । ऊँ इति॑ । पू॒ष्णा । ग॒मे॒म॒हि॒ । यः । गृ॒हान् । अ॒भि॒ऽशास॑ति ।
इ॒मे । ए॒व । इति॑ । च॒ । ब्रव॑त् ॥

२. संस्कृतव्याख्या :—पूष्णा=तद्द्वारेण (अनुगृहीता वयम्), संगमेमहि=संगच्छेमहि, यः=जनः, गृहान् =येषु गृहेषु, (अस्मदीया नष्टाः पशवस्तिष्ठन्ति तान्), अभिशासति=आभिमुख्येन बोधयति, यश्च, इमे=एते (त्वदीया नष्टाः पशवः), एव=एवम् (तिष्ठन्ति), इति च, ब्रवत् =ब्रूयात् ।

पूष्णा=सूर्य देव के द्वारा, अनुगृहीत हम लोग उ=निश्चय से, संगमेमहि=उस विद्वान् मनुष्य से जा मिलें, यः=जो मनुष्य, गृहान्=जिन घरों में हमारे चुराये हुए पशु आदि धन विद्यमान हैं उन घरों को, अभिशासति=बतलावे, और इमे=ये तुम्हारे नष्ट हुए पशु आदि हैं, एवं=इस प्रकार, च=और, इति=भी, ब्रवत्=बतलाए ।

मैक्डानल के मत में यह वाक्य घरों में चुरा कर रक्खे हुए पशुओं को लक्ष्य करके नहीं बोला गया, किन्तु केवल भक्त के निवासभूत घरों को लक्ष्य करके कहा गया है ।

संहिता-पाठः

३. पू॒ष्णश्च॒क्रं न रि॑ष्यति॒ न कोशोऽव॑ पद्यते ।
नो अ॑स्य व्यथते प॒विः ॥

पद-पाठः

पूष्णः । चक्रम् । न । रिष्यति । न । कोशः । अव । पद्यते ।
नो इति । अस्य । व्यथते । पविः ॥

३. संस्कृतव्याख्या :—पूष्णः=पोषकस्य देवस्य, चक्रम् =आयुधम्, न रिष्यति=न विनश्यति, (अस्य) कोशः च न, अवपद्यते=हीयते, (अस्य) पविः=धारा च, नो व्यथते=नैव कुण्ठीभवति, तेन चौरान् हत्वा अस्मदीयं धनं प्रकाशयेति भावः ।

पूष्णः=पोषक सूर्यदेव का, चक्रम=आयुध, न रिष्यति=कभी नष्ट नहीं होता, और इस चक्र का कोशः=मध्य भाग, न अवपद्यते=नहीं नष्ट होता, अस्य=इस चक्र की, पविः=धारा भी, नो व्यथते=कुंठित नहीं होती । अर्थात् अपने चक्र से चोरों को मार कर हमारे धन का ज्ञान कराइए ।

मैक्डानल के मत में 'कोशः' चुरा रखने की जगह (well) है । 'पविः' हाल (felly) है ।

संहिता-पाठः

४. यो अस्मै हविषाविधन् न तं पूषापि मृष्यते ।
प्रथमो विन्दते वसु ॥

पद-पाठः

यः । अस्मै । हविषा । अविधत् । न । तम् । पूषा । अपि । मृष्यते ।
प्रथमः । विन्दते । वसु ॥

४. संस्कृतव्याख्या :—यः=यजमानः, अस्मै=पूष्णे, हविषा=चरुपुरोडाशादिना, अविधत्=परिचरति, तम्, पूषापि न मृष्यते=ईषदपि न हिनस्ति, (स च), प्रथमः=मुख्यः सन्, वसु=धनम्, विन्दते=लभते ।

यः=जो यजमान, अस्मै=इस पूषा के लिए, हविषा=पुरोडाश

आदि से, अविधत्=सेवा करता है, मिलाता है, तम्=उस यजमान को पूषा=सूर्य देव, अपि=किंचिन्मात्र भी, न मृष्यते=हानि नहीं पहुँचाता, और वह यजमान प्रथमः=उपासकों में मुख्य बना हुआ, वसु=धन को, विन्दते=प्राप्त करता है।

मैक्डानल ने, 'न अपिमृष्यते' इस क्रिया का अर्थ=नहीं भूलता है (forgets not) किया है।

संहिता-पाठः

५. पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः।
पूषा वाजं सनोतु नः॥

पद-पाठः

पूषा। गाः। अनु। एतु। नः। पूषा। रक्षतु। अर्वतः।
पूषा। वाजम्। सनोतु। नः॥

५. संस्कृतव्याख्या :—पूषा=पोषको देवः, नः=अस्मदीयाः, गाः, अन्वेतु=रक्षणार्थमनुगच्छतु, स च, पूषा, अर्वतः=अश्वान्, रक्षतु, (तथा) वाजम्=अन्नम्, नः=अस्मभ्यम्, पूषा, सनोतु=प्रयच्छतु।

पूषा=पुष्टि करने वाला सूर्य, नः=हमारी, गाः=गौ आदि पशुओं की (रक्षा करने के लिए), अन्वेतु=अनुगति करे, पीछे चल कर रक्षा करे, और वह पूषा अर्वतः=हमारे घोड़ों की, रक्षतु=(चोरों से) रक्षा करे, तथा वाजम्=अन्न को या बल को, नः=हमारे लिए, सनोतु=प्रदान करे।

मैक्डानल ने 'वाजम्' का अर्थ चुराया हुआ धन (booty) किया है।

संहिता-पाठः

६. पूषन्नतु प्र गा इहि यजमानस्य सुन्वतः।
अस्माकं स्तुवतामुत॥

पद-पाठः

पूषन् । अनु । प्र । गाः । इहि । यजमानस्य । सुन्वतः ।
अस्माकम् । स्तुवताम् । उत ॥

६. संस्कृतव्याख्या :—हे पूषन् ! सुन्वतः=सोमाभिषवं कुर्वतः, यजमानस्य, गाः=पशून्, अनु प्र इहि=रक्षणार्थमनुगच्छ, उत=अपि च, स्तुवताम्=त्वद्विषयं स्तोत्रं कुर्वताम्, अस्माकम्, (गाश्चानुगच्छेत्यर्थः)।

हे=पूषन् ! सूर्य देव ! सुन्वतः=सोम रस के द्वारा तुम्हारी आराधना करने वाले सोम का रस निकालने वाले यजमानस्य=यजमान की, गाः=पशुओ की, अनुप्रेहि=रक्षा के लिए पीछे चलो, उत=और, स्तुवताम्=स्तुति करने वाले, अस्माकम्=हम लोगो की, गाः=अर्थात् गौओं की रक्षा करो।

संहिता-पाठः

७. माकिर्नेशन्माकीं रिषन्माकीं सं शारि केवटे ।
अथारिष्टाभिरा गहि ॥

पद-पाठः

माकिः । नेशत् । माकीम् । रिषत् । माकीम् । सम् । शारि । केवटे ।
अथ । अरिष्टाभिः । आ । गहि ॥

७. संस्कृतव्याख्या :—(हे पूषन् ! अस्मदीयं गोधनम्), माकिर्नेशत्=मा नश्यतु, माकीं रिषत्=मा व्याघ्रादिभिर्हिंस्यताम्। माकीम्=मा च, केवटे=कूपे, संशारि=संशीर्णं भूत्, अथ=एवं सति, अरिष्टाभिः=अहिंसिताभिः गोभिः सह, आ गहि=(सायंकाले) आगच्छ।

हे पूषन् ! हमारा गौ रूपी धन माकिः=कभी नहीं, नेशत्=नष्ट होवे, माकीम्=और न कभी, रिषत्=व्याघ्र आदि से मारा जावे, माकीम्=और न कभी, केवटे=कुएँ आदि गड्ढे में, संशारि=नष्ट

होवे, अथ=और, इस प्रकार अरिष्टाभिः=हिंसा से रहित, न मरने वाली बड़ी उम्र वाली, आगहि=गौओ के साथ सायंकाल के समय हमारे घर पधारिये।

मैक्डानल ने 'अरिष्टाभिः' का अर्थ व्रण आदि घावों की पीड़ा से शून्य (uninjured) किया है।

संहिता-पाठः

८. शृण्वन्तं पूषणं वयमिर्यमनष्टवेदसम्।
ईशानं राय ईमहे॥

पद-पाठः

शृण्वन्तम्। पूषणम्। वयम्। इर्यम्। अनष्टऽवेदसम्।
ईशानम्। रायः। ईमहे॥

८. संस्कृतव्याख्या :—(अस्मत् स्तोत्राणि), शृण्वन्तम्, इर्यम्=दारिद्र्यस्य प्रेरकम्, अनष्टवेदसम्=अविनष्टधनम्, ईशानम्=सर्वस्येश्वरम्, (एवंविधं) पूषणं (देवं), वयम्, रायः=धनानि, ईमहे=याचामहे।

शृण्वन्तम्=हमारे स्तोत्रों को ध्यान से सुनने वाले, और इर्यम्=दरिद्रता को दूर करने वाले, अनष्टवेदसम्=जिस का धन कभी नष्ट नहीं हुआ ऐसे,, ईशानम्=सब के ईश्वर, पूषणम्=सूर्य देव से, वयम्=हम लोग, रायः=धनों को, ईमहे=मांगते हैं।

मैक्डनाल ने 'इर्यम्' का अर्थ सावधान (watchful) किया है, तथा 'राय ईशानम्' का धन वितरण करने वाला (who disposes of riches) अर्थ किया है।

संहिता-पाठः

९. पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन।
स्तोतारस्त इह स्मसि॥

पद-पाठः

पूषन् । तव । व्रते । वयम् । न । रिष्येम । कदा । चन ।
स्तोतारः । ते । इह । स्मसि ॥

९. संस्कृतव्याख्या :—हे पूषन् =पोषक! तव=त्वदीये, व्रते=कर्मणि (वर्तमानाः) वयम् , कदाचन=कदाचिदपि, न रिष्येम=न हिंसिता भवेम। (तथा वयम्) इह=अस्मिन् कर्मणि, ते=तव, स्तोतारः=स्तुतिकर्तारः, स्मसि=स्मः (भवामः)।

व्याकरणम् :—स्मसि='अस्' धातुः, 'इदन्तोमसिः' इत्यनेन बहुवचने मस्यादेशः।

पूषन्=हे पोषक सूर्यदेव! तव=तेरे, व्रते=प्रसन्नता करने वाले कर्मों मे वर्तमान, वयम्=हम लोग, कदाचन=कभी भी, न रिष्येम=कष्ट न प्राप्त करे, तथा इह=इस स्तुतिरूपी कर्म में, ते=तुम्हारे, स्तोतारः=निरन्तर स्तुति करने वाले, स्मसि=बने रहे।

मैक्डानल के मत में 'व्रते' का अर्थ=सेवा (service) है।

संहिता-पाठः

१०. परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम्।
पुनर्नो नष्टमाजतु ॥

पद-पाठः

परि । पूषा । परस्तात् । हस्तम् । दधातु । दक्षिणम् ।
पुनः । नः । नष्टम् । आ । अजतु ॥

१०. संस्कृतव्याख्या :—पूषा=पोषकः, परस्तात्=परस्मिन् देशे (चोरव्याघ्रादिभिरुषिते) (गोधनस्य निवारणाय), दक्षिणं, हस्तं, परिदधातु=परिधानम् (निवारकम्) करोतु, नः=अस्मदीयम् , नष्टं च (गोधनम्), पुनः, आजतु=आगच्छतु (त्वया गमयतु)।

पूषा=पुष्टि करने वाने वाला सूर्य देव, परस्तात्=चोर व्याघ्रादि

से युक्त दूर देश में विचरण करने वाले हमारे गोधन की रक्षा के लिए, दक्षिणम्=अपना दाहिना, हस्तम्=हाथ, परिदधातु=हमारे ऊपर धारण करे, और नः=हमारा, नष्टम्=खोया हुआ गो अश्व आदि धन, पुनः=फिर, आजतु=प्राप्त करावे, घर पहुँचा दे।

मैकडानल ने 'परस्ताद्' का अर्थ दूर से (from a far) किया है।

(७-४९) आपः

संहिता-पाठः

१. समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात्
पुनाना यन्त्यनिविशमानाः।
इन्द्रो या वज्री वृषभो रराद
ता आपो देवीरिह मामवन्तु॥

पद-पाठः

समुद्रऽज्येष्ठाः। सलिलस्य। मध्यात्।
पुनानाः। यन्ति। अनिऽविशमानाः।
इन्द्रः। याः। वज्री। वृषभः। ररद।
ताः। आपः। देवीः। इह। माम्। अवन्तु॥

१. संस्कृतव्याख्या :—समुद्रज्येष्ठाः=समुद्रः ज्येष्ठो यासां ताः, सलिलस्य=अन्तरिक्षस्य, मध्यात्=माध्यमिकात्, यन्ति=गच्छन्ति, कीदृश्य इत्याह—पुनानाः=विश्वं शोधयन्त्यः, अनिविशमानाः=सर्वदा गच्छन्त्य., वज्री=वज्रभृत्। वृषभः=कामानां वर्षिता, इन्द्रः, याः=निरुद्धा अपः, ररद=लिखति, देवी=देव्यः ताः, आपः, इह=अस्मिन् प्रदेशे (स्थितम्), माम्, अवन्तु=रक्षन्तु, अभिगच्छन्तु वा।

व्याकरणम् —अव्याकरणीयमेतत् ।

परिचयः—इस सूक्त का वसिष्ठ ऋषि है, अप् (जल) देवता है, त्रिष्टुप् छन्द है ।

समुद्रज्येष्ठाः=समुद्र है प्रशस्यतर जिन में ऐसे जल, सलिलस्य=आकाश के, मध्यात्=मध्य स्थान से, यन्ति=गमन करते हैं, और वे पुनानाः=संसार को पवित्र करते हुए, अनिविशमानाः=सदा बहते हुए रहते हैं । वज्री=वज्र का धारण करने वाला, वृषभः=इच्छाओं की पूर्ति करने वाला, इन्द्रः=इन्द्र, याः=जिन रोके हुए जलो को, ररद=काट कर या तोड़ कर बहाता है, देवीः=दिव्य, ताः आपः—वे जल, इह=इस पृथ्वी लोक मे रहने वाले, माम्=मेरी, अवन्तु=रक्षा करें ।

मैक्डानल ने 'सलिलस्य' का अर्थ समुद्र (sea) किया है तथा 'अवन्तु' का अर्थ सहायता करे (help me) किया है ।

संहिता-पाठः

२. या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति
खनित्रिमा उत वा याः स्वयंजाः ।
समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्
ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥

पद-पाठः

याः । आपः । दिव्याः । उत । वा । स्रवन्ति ।
खनित्रिमाः । उत । वा । याः । स्वयम्ऽजाः ।
समुद्रऽअर्थाः । याः । शुचयः । पावकाः ।
ताः । आपः । देवीः । इह । माम् । अवन्तु ॥

२. संस्कृतव्याख्या :—या आपो, दिव्याः=अन्तरिक्षभवाः (सन्ति)

उत वा=अपि च। (नद्यादिगताः), स्रवन्ति=गच्छन्ति, याश्च, खनित्रिमाः=खननेन निर्वृताः, उत वा=अपि च, याः स्वयंजाः=स्वयं प्रादुर्भवन्त्यः, समुद्रार्थाः=समुद्रः गन्तव्यो यासाम्, शुचयः=दीप्तियुक्ताः, पावकाः=शोधयित्र्यश्च भवन्ति, ता आपो मामवन्तु इति पूर्ववत्।

व्याकरणम् :—स्पष्टम् व्याकरणे।

याः=जो, आपः=जल, दिव्याः=अन्तरिक्ष में उत्पन्न होते हैं, उत वा=अथवा, जो स्रवन्ति=नदी आदि में स्रोत रूप में बहते हैं, और जो खनित्रिमाः=खोदने से उत्पन्न हुए, कूपादिगत जल हैं, वा=अथवा, उत=और, याः=जो जल, स्वयंजाः=स्वयमेव पर्वत आदि के झरने आदि से स्वतन्त्र रूप में बहते हैं। तथा समुद्रार्थाः=समुद्र मे जा कर मिल जाते हैं, इस प्रकार के शुचयः=दीप्तिवाले, पावकाः=पवित्र करनेवाले, ताः=वे, देवीः=दिव्य, आपः=जल, माम् =मेरी, इह=इस लोक में, अवन्तु=रक्षा करें।

मैक्डानल ने 'शुचयः' का अर्थ स्वच्छ (clear) किया है।

संहिता-पाठः

३. यासां राजा वरुणो याति मध्ये
सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम्।
मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्
ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥

पद-पाठः

यासाम्। राजा। वरुणः। याति। मध्ये।
सत्यानृते इति। अवऽपश्यन्। जनानाम्।
मधुऽश्चुतः। शुचयः। याः। पावकाः।
ताः। आपः। देवीः। इह। माम्। अवन्तु ॥

३. संस्कृतव्याख्या :—वरुणः, यासाम् =अपाम्, राजा =स्वामी, मध्ये=मध्यमलोके, याति=गच्छति, किं कुर्वन्नित्याह—जनानां=प्रजानाम्, सत्यानृते=सत्यमसत्यं च, अवपश्यन् =जानन्, (तथा) याः=आपः, मधुश्चुतः=रसं क्षरन्त्यः, शुचयः, पावकाः, ता आप इति पूर्ववत्।

वरुणः=वरुण देवता, यासाम् =जिन जलों का, राजा=स्वामी है, तथा मध्ये=मध्यम लोक मे, अन्तरिक्षलोक में, जनानाम्=मनुष्यो के, सत्यानृते=सत्य और झूठ को, अवपश्यन् =देखता हुआ, जानता हुआ, याति=गमन करता है। याः=जो जल, मधुश्चुतः=रस को टपकाने वाले, शुचयः=दीप्तियुक्त हैं, वे जल मेरी रक्षा करे, यह पूर्ववत् अर्थ है।

मैक्डानल ने 'मधुश्चुतः' का अर्थ=मिठास को टपकाने वाले (distil sweetness) किया है, तथा 'देवीः'=देवतारूप (goddesses) किया है।

संहिता-पाठः

४. यासु राजा वरुणो यासु सोमो
विश्वे देवा यासूर्जं मदन्ति।
वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्टस्
ता आपो देवीरिह मामवन्तु॥

पद-पाठः

यासु। राजा। वरुणः। यासु। सोमः।
विश्वे। देवाः। यासु। ऊर्जम्। मदन्ति।
वैश्वानरः। यासु। अग्निः। प्रऽविष्टः।
ताः। आपः। देवीः। इह। माम्। अवन्तु॥

४. संस्कृतव्याख्या :—(अपाम्) राजा, वरुणः, यासु=अप्सु

(वर्तते), सोमः, यासु (वर्तते), यासु (स्थिताः), विश्वे=सर्वे देवाः, ऊर्जम् अन्नम्, मदन्ति, वैश्वानरः, अग्निः, यासु, प्रविष्टः, ता आपः इति पूर्ववत्।

व्याकरणम् :—सुबोधं व्याकरणम्।

राजा=जलों का राजा वरुण, यासु=जिन जलो मे निवास करता है, यासु=जिन जलो में, सोमः=सोम निवास करता है, यासु=जिन जलों से उत्पन्न, विश्वेदेवाः=सारे देवगण, ऊर्जम्=अन्न को, खाकर मदन्ति=प्रसन्न होते हैं। वैश्वानरः=सब का नेता, अग्निः=अग्नि देवता, यासु=जिन जलो में, प्रविष्टः=निवास करता है, ताः आपः=वे जल इत्यादि वाक्य पूर्ववत् है।

मैक्डानल ने 'ऊर्जम् मदन्ति' का अर्थ=देवगण जिन जलो का आनन्दपूर्वक पान करते हुए शक्ति प्राप्त करते हैं (All gods drink exhilarating strength), किया है।

(७-७१) अश्विनौ

संहिता-पाठः

१. अप स्वसुरुषसो नग्जिहीते
रिणक्ति कृष्णीररुषाय पन्थाम्।
अश्वामघा गोमघा वां हुवेम
दिवा नक्तं शरुमस्मद्युयोतम्॥

पद-पाठः

अप। स्वसुः। उषसः। नक्। जिहीते।
रिणक्ति। कृष्णीः। अरुषाय। पन्थाम्।
अश्वऽमघा। गोमघा। वाम्। हुवेम।
दिवा। नक्तम्। शरुम्। अस्मत्। युयोतम्॥

१. संस्कृतव्याख्या :—स्वसुः=स्वसृस्थानीयायाः, उषसः, (सकाशात्), नक्=नक्तम्। अपजिहीते=अपगच्छति, कृष्णीः=कृष्णवर्णा (रात्रिः), अरुषाय=आरोचमानाय (अह्ने सूर्याय वा), पन्थां=पन्थानम्, रिणक्ति=रेचयति, हे, अश्वामघा=अश्वधनौ, गोमघा=गोधनौ, वाम्=युवाम्, हुवेम=स्तुमः, दिवानक्तम्=सर्वदा, शरुम्=हिंसकम्, अस्मत्=अस्मत्तः, युयोतम्=पृथक्कुरुतम्।

व्याकरणम् :—शरुम्='शॄ' हिंसायाम् 'उ' प्रत्यये शरुरिति सिध्यति।

परिचय :—इस सूक्त का अश्विनी कुमारो का युगल देवता है, त्रिष्टुप् छन्द, वसिष्ठ ऋषि है।

स्वसुः=अपनी बहिन के समान, उषसः=उषा से, नक्=(नक्तम्) रात्रि, अपजिहीते=नष्ट होती है, अर्थात् उषा को स्थान देने के बाद रात्रि स्वयं हट जाती है। कृष्णीः=काले वर्ण की रात्रि, अरुषाय=चमकते हुए सूर्य के लिए या दिन के लिए, पन्थाम्=मार्ग को, रिणक्ति=खाली कर देती है। इस लिये अश्वामघा=हे अश्व धन वाले, गोमघा=गो धन वाले, अर्थात् अश्वो और गौओ का दान देने वाले अश्विनी कुमारो, वाम्=तुम दोनो की, हम लोग हुवेम=स्तुति करते हैं, या तुम्हारा आह्वान करते हैं। आप दिवानक्तम्=दिन और रात, शरुम्=हानि पहुँचाने वाले पदार्थों को, अस्मत्=हम से, युयोतम्=अलग करते रहिए।

मैक्डानल ने 'शरुम्' का अर्थ बाण (arrow), किया है।

संहिता-पाठः

२. उपायातं दाशुषे मर्त्याय
रथेन वाममश्विना वहन्ता।
युयुतमस्मदनिरामभीवां
दिवा नक्तं माध्वी त्रासीथां नः॥

पद-पाठः

उपऽआयातम् । दाशुषे । मर्त्याय ।
रथेन । वामम् । अश्विना । वहन्ता ।
युयुतम् । अस्मत् । अनिराम् । अमीवाम् ।
दिवा । नक्तम् । माध्वी इति । त्रासीथाम् । नः ॥

२. संस्कृतव्याख्या :—हे अश्विनौ युवाम्, उपायातम्=उपागच्छतम् (अस्मदाह्वानं प्रति), किमर्थमित्याह—दाशुषे=हविषां दात्रे यजमानाय, रथेन, वामम् =वहनीयं धनम्, वहन्ता=वहन्तौ, , अस्मत् =अस्मत्तः, अनिराम् =दारिद्रयम्, अमीवां=रोगं च, युयुतम् = पृथक्कुरुतम्, हे, माध्वी=मधुमन्तौ युवाम्, नः=अस्मान्, दिवानक्तम् =सर्वदा, त्रासीथाम् =रक्षतम् ।

व्याकरणम् :—न व्याकरणीयमत्र ।

अश्विना=हे अश्विनी कुमारो ! तुम दोनो उपायातम् =हमारा आह्वान स्वीकार कर यहाँ आइए । तथा दाशुषे=हवि का दान देने वाले, मर्त्याय=यजमान के लिये, रथेन=अपने रथ के द्वारा, वामम् = सेवनीय या चाहे गये धन को, वहन्ता=लेते हुए, आइए, और अनिराम् =इरा=अन्न उससे भिन्न अर्थात् दारिद्र्य को, अस्मत्=हम से, युयुतम् =पृथक् करिए, माध्वी=हे मधु वाले अश्विनी कुमारो ! नः= हमारे, अमीवाम्=रोगों को, दिवानक्तम्=रात दिन अर्थात् प्रत्येक काल मे (सर्वदा), त्रासीथाम्=दूर कीजिए, रक्षा कीजिए।

मैक्डानल ने 'अनिराम्' का अर्थ आलस्य (languor) किया है। 'माध्वी' का अर्थ मधु-प्रेमी (lovers of honey) है ।

संहिता-पाठः

३. आ वां रथमवमस्यां व्युष्टौ
सुम्नायवो वृषणो वर्तयन्तु ।

स्यूमगभस्तिमृतयुग्भिरश्वैर्
आश्विना वसुमन्तं वहेथाम् ॥

पद-पाठः

आ। वाम्। रथम्। अवमस्याम्। विऽउष्टौ।
सुम्नऽयवः। वृषणः। वर्तयन्तु।
स्यूमऽगभस्तिम्। ऋतयुक्ऽभिः। अश्वैः।
आ। अश्विना। वसुऽमन्तम्। वहेथाम् ॥

३. संस्कृतव्याख्या :—अवमस्याम् =आसन्नायाम् , व्युष्टौ=व्युच्छन्त्याम् उषसि, वाम् =युवयोः, रथम् , सुम्नायवः=सुखेन योजयन्तोऽश्वाः, वृषणः= वर्षका, युवाम्, आवर्तयन्तु, स्यूमगभस्तिं=सुखरश्मिम् , वसुमन्तम् = प्रदेयधनयुक्तम् , (रथम्), हे अश्विना=अश्विनौ, ऋतयुग्भिः=उदकयुक्तैः, अश्वैः, आवहेथाम् ।

व्याकरणम् :—स्यूम='स्वि' तन्तुसन्ताने 'मन्' प्रत्ययः ।

अवमस्याम् =आगामी या निकट, व्युष्टौ=प्रातःकाल के समय में, वाम्= तुम दोनो के, रथम्=रथ में, सुम्नायवः=सुख देने वाले (सुख से जोड़ने वाले) घोड़ो, और वृषणः=वृष्टि करने वाले घोड़ो को, तुम दोनो आवर्त- यन्तु=चलाओ, घुमाओ । तथा स्यूमगभस्तिम् =सुखकारक लगाम वाले, या रश्मियों से बाधे हुये, वसुमन्तम्=दानयोग्य धनयुक्त रथ को, हे अश्विनीकुमारो ! ऋतयुगभिः=जलयुक्त, अश्वैः=घोड़ो से, आवहेथाम्= चला कर लाइये ।

मैक्डानल ने 'स्यूमगभस्तिम्' का अर्थ चमडे के पट्टो से बंधा हुआ (drawn with thongs) किया है । और 'ऋतयुग्भिः' का अर्थ समय पर जोड़े गये घोड़ो से, (horses yoked in due time) किया है ।

संहिता-पाठः

४. यो वां रथो नृपती अस्ति वोळ्हा
त्रिवन्धुरो वसुमाँ उस्रयामा।
आ न एना नासत्योप यातम्
अभि यद्वां विश्वप्स्न्यो जिगाति॥

पद-पाठः

यः। वाम्। रथः। नृपती इति नृपती। अस्ति। वोळ्हा।
त्रिऽवन्धुरः। वसुऽमान्। उस्रऽयामा।
आ। नः। एना। नासत्या। उप। यातम्।
अभि। यत्। वाम्। विश्वऽप्स्न्यः। जिगाति॥

४. संस्कृतव्याख्या :—हे नृपती=नृणां पालकौ, वाम् =युवयोः, यः रथः, वोळ्हा=युवयोर्वाहकः, अस्ति=सर्वदा संनिहितो वर्तते, (असौ), त्रिवन्धुरः=सारथ्यधिष्ठानत्रययुक्तः, वसुमान् =धनवान्, उस्रयामा=उस्रं दिवसं, तत्प्रतिगन्ता, एना=एतेन (रथेन), हे, नासत्या=अश्विनौ! नः= अस्मान्, उप आ यातम्, यत्, रथः, वाम्, विश्वप्स्न्यः=व्याप्तरूपः। अभिजिगाति=अभिगच्छति।

व्याकरणम् :—विश्वं प्साति (भक्षयति) इति 'विश्वप्स्न्यः' ततः नयति इत्यर्थे विश्वप्स्निः स्वार्थे अच् सकाराकारलोपः छान्दसः।

नृपती=मनुष्यों के पालन करने वाले हे अश्विनीकुमारो! वाम्= तुम दोनो का, रथः=रथ, वोळ्हा=तुम्हारा वहन करने वाला, अस्ति= है, जो कि रथ, त्रिवन्धुरः=सारथि समेत तीन व्यक्तियो के बैठने योग्य स्थान से युक्त है, तथा वसुमान्=धनवान्, उस्रयामा=दिन के प्रति जाने वाला है, अर्थात् दिन भर चलने वाला है, एना=इस रथ से, नासत्या=हे अश्विनीकुमारो! तुम, नः=हम लोगों के समीप,

उपायाताम्=आइए। यत्=जो रथ, विश्वप्स्न्यः=संसार में व्याप्त होता हुआ, अभिजिगाति=अभिगमन करता है। अथवा जिस रथ की विश्वप्स्न्यः=वसिष्ठ ऋषि, जिगाति=स्तुति करता है, उस रथ से आप पधारिए।

मैक्डानल के मत में 'उस्रयामा' का अर्थ प्रातःकाल चलने वाला (faring at day break) तथा 'विश्वप्स्न्यः' का अर्थ खाने के पदार्थों से भरा हुआ (laden with all food) है।

संहिता-पाठः

५. युवं च्यवानं जरसोऽमुमुक्तं
नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम्।
निरंहसस्तमसः स्पर्तमत्रिं
नि जाहुषं शिथिरे धातमन्तः॥

पद-पाठः

युवम्। च्यवानम्। जरसः। अमुमुक्तम्।
नि। पेदवे। ऊहथुः। आशुम्। अश्वम्।
निः। अंहसः। तमसः। स्पर्तम्। अत्रिम्।
नि। जाहुषम्। शिथिरे। धातम्। अन्तरिति॥

५. संस्कृतव्याख्या:—(हे अश्विनौ)! युवम्=युवाम्, च्यवानम्, जरसः=जीर्णाद्रूपात्, अमुमुक्तम्=अमुञ्चतम्, (तथा), पेदवे=एतन्नामकाय राज्ञे, आशुम्=शीघ्रगामिनम्, अश्वम्, निः ऊहथुः=न्यवहतम् (युद्धे), (तथा) अत्रिम्=अत्रिऋषिम्, अंहसः=अग्नेः सकाशात्, तमसः=गुहान्तः-स्थितात्, च, निःस्पर्तम्=न्यपारयतम्, (तथा), जाहुषम्, शिथिरे=शिथिले (भ्रष्टे स्वराष्ट्रे) अन्तः=मध्ये, (पुनः), निधातम्=न्यधातम्।

व्याकरणम्:—व्याकरणं व्यर्थम्।

हे अश्विनीकुमारो ! युवम्=तुम दोनो ने, च्यवानम्=च्यवन नाम के ऋषि को, जरसः=जीर्ण अवस्था से, वृद्धता से, अमुमुक्तम्=छुड़ा दिया था, तथा पेदवे=पेदु नाम के राजा के लिए, आशु=तेज चलने वाले, अश्वम्=घोडे को, नि ऊहथुः=युद्ध मे पहुँचा दिया था, तथा अत्रिम्=अत्रि नाम के महर्षि को, अंहसः=ऋबीस नामक पाप विशेष से, तमसः=गुहा में विद्यमान अन्धकार से, निःस्पर्तम्=पार कर दिया था, तथा जाहुषम्=जाहुष नाम के राजा को, शिथिरे=अपने राष्ट्र के शिथिल, भ्रष्ट हो जाने पर, पुनः=उसके राज्य के, अन्तः=अन्दर, निधातम्=बैठा दिया था। इस प्रकार तुम बहुत बड़ी सामर्थ्य व महिमा वाले हो।

संहिता-पाठः

६. इयं मनीषा इयमश्विना गीर्
इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम्।
इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन्
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥

पद-पाठः

इयम्। मनीषा। इयम्। अश्विना। गीः।
इमाम्। सुऽवृक्तिम्। वृषणा। जुषेथाम्।
इमा। ब्रह्माणि। युवऽयूनि। अग्मन्।
यूयम्। पात। स्वस्तिऽभिः। सदा। नः॥

६. संस्कृतव्याख्या :—हे अश्विना=अश्विनौ, इयम् मनीषा=मे कामना (इयमस्ति), इयं गीः=इयं मे स्तुतिरस्ति, (यत्), वृषणा=कामानां वर्षितारौ युवाम्, इमाम्, सुवृक्तिम्=स्तुतिम्, जुषेथाम्=स्वीकुरुतम्। इमा ब्रह्माणि=व्यापकस्तुतिवाक्यानि, युवयूनि=नित्य-

युवकाभ्याम् , (युवाभ्याम्), अग्मन् = प्राप्ता भवेयुः, (तथा), यूयम् , स्वस्तिभिः = आशीर्वादैः, नः = अस्मान् , सदा = सर्वदा, पात = रक्षतम् ।

व्याकरणम् :—सुवृक्तिम् = सु + 'वृज्' + क्तिन् ।

अश्विना = हे अश्विनीकुमारो ! इयम् = यह, मनीषा = मेरी कामना है, इयम् = यह, गीः = मेरी स्तुति रूप मे प्रार्थना है कि, वृषणा = शक्तिशाली, या इच्छाओ की पूर्ति करने वाले, आप दोनो इमाम् = इस, सुवृक्तिम् = मेरी स्तुति को, जुषेथाम् = स्वीकार कीजिए, इमा = ये, ब्रह्माणि = व्यापक स्तुति वाक्य, युवयूनि = सर्वदा युवावस्था वाले या शक्ति वाले, तुम्हे अग्मन् = प्राप्त हो, तथा यूयम् = आप, स्वस्तिभिः = अपने आशीर्वादो से, नः = हमे, सदा = सर्वदा, पात – रक्षा करते रहिए ।

विशेष—'युवयूनि' का अर्थ तुम दोनो के द्वारा चाही गई (स्तुतियाँ) भी हैं ।

(७-८६) वरुणः

संहिता-पाठः

१. धीरा त्वस्य महिना जनूंषि
वि यस्तस्तम्भ रोदसी चिदुर्वी ।
प्र नाकमृष्वं नुनुदे बृहन्तं
द्विता नक्षत्रं पप्रथच्च भूम ॥

पद-पाठः

धीरा । तु । अस्य । महिना । जनूंषि ।
वि । यः । तस्तम्भ । रोदसी इति । चित् । उर्वी इति ।
प्र । नाकम् । ऋष्वम् । नुनुदे । बृहन्तम् ।
द्विता । नक्षत्रम् । पप्रथत् । च । भूम ॥

१. संस्कृतव्याख्या :—अस्य=वरुणस्य, यजूंपि=जन्मानि, महिना= महिम्ना, तु=क्षिप्रं, धीरा=धीराणि, धैर्यवन्ति, (भवन्ति)। यः=वरुणः, उर्वी=विस्तीर्णे, रोदसी चित्=द्यावापृथिव्यावपि, वि तस्तम्भ=विविधं स्तब्धे स्वकीये स्थाने स्थिते अकरोत्, यश्च, बृहन्तम्=महान्तम्, नाकम्= स्वर्गम्, आदित्यम्=नक्षत्रं च, ऋष्वम्=दर्शनीयम्, द्विता=द्वैधम्, प्र नुनुदे=प्रेरयति स्म। भूम=भूमिम्, च, यः, पप्रथत्=विस्तारितवान्।

व्याकरणम् :—ऋष्वम्='ऋषी' गतौ 'व' प्रत्ययः। चक्षुर्विषयतां गतं ऋष्वमित्युच्यते।

परिचयः—इस सूक्त का वसिष्ठ ऋषि है, त्रिष्टुप् छन्द है, और वरुण देवता है।

अस्य=इस वरुण के, महिना=माहात्म्य से, तु=जल्दी से ही, जनूंषि=जन्म अर्थात् जन्म लेने वाले प्राणी, धीरा:=धैर्य वाले बन जाते हैं, यह जो वरुण उर्वी=विस्तीर्ण, रोदसी=द्युलोक और पृथिवीलोक को, चित=भी, वितस्तम्भ=विविध प्रकार से धारण किये हुए है, तथा जो बृहन्तम्=महान्, नाकम्=आदित्य या स्वर्गलोक को, नक्षत्रम्= नक्षत्रलोक को, ऋष्वम्=दर्शनीय रूप से, द्विता=दो प्रकार से, प्रनुनुदे=प्रेरणा करता है, च=और, भूम=भूमि को, पप्रथत्=विस्तृत बनाता है (उस वरुण से ही उत्पन्न होने वाली सब वस्तुएँ आज-कल पाली जा रही हैं)

मैक्डानल ने 'धीरा' का बुद्धिमान् (intelligent) 'महिमा' का शक्ति (might), 'ऋष्वम' का अर्थ ऊँचा (high) और 'बृहन्तम्' का अर्थ विस्तीर्ण (lofty) किया है।

संहिता-पाठः

२. उत स्वया तन्वा३ सं वदे तत्
कदा न्व१न्तर्वरुणे भुवानि।

किं मे हव्यमहृणानो जुषेत
कदा मृळीकं सुमना अभि ख्यम् ॥

पद-पाठः

उत । स्वया । तन्वा । सम् । वदे । तत् ।
कदा । नु । अन्तः । वरुणे । भुवानि ।
किम् । मे । हव्यम् । अहृणानः । जुषेत ।
कदा । मृळीकम् । सुऽमनाः । अभि । ख्यम् ॥

२. संस्कृतव्याख्या :—'उत'=इति विचिकित्सायाम्, किम्, स्वया=स्वकीयया, तन्वा=शरीरेण । संवदे=सह वदनं करोमि, (आहोस्वित्), तत्=तेन वरुणेन सह संवदे इति । कदा नु, वरुणे=देवे, अन्तः भुवानि=अन्तर्भूतो भवानि, (चित्ते संलग्नो भवानीत्यर्थः), मे=मदीयम्, हव्यम्=स्तोत्रं हविर्वा, अहृणानः=अक्रुध्यन् वरुणः, किम्=केन हेतुना, जुषेत=सेवेत, सुमनाः=शोभनमनस्कः, (अहम्), कदा=कस्मिन् काले, मृळीकम्=सुखयितारम्, अभि ख्यम्=अभिपश्येयम् ।

व्याकरणम् :—अहृणानः='हृणीङ्' + शानच्, यणं बाधित्वा ईकार-लोपः, नञ्समासः ।

वरुण को जल्दी देखने की इच्छा वाला ऋषि इस मन्त्र से वितर्क करता है । उत=क्या, स्वया=अपने, तन्वा=शरीर के साथ, संवदे=बातचीत करूँ, अथवा तत्=उस वरुण के साथ बातचीत करूँ । कदा=कब, नु=निश्चय से, वरुणे=वरुणदेव के, अन्तः=हृदय मे, भुवानि=स्थान प्राप्त करूँ; तथा मे=मेरा, हव्यम्=स्तोत्र या हवि को, अहृणानः=क्रुद्ध न होता हुआ वरुण, किम्=क्या, जुषेत=सेवन कर लेगा, और सुमनाः=प्रसन्न मन होता हुआ मैं, कदा=कब, मृळीकम्=सुख देने वाले, वरुणम्=वरुण को, अभिख्यम्=देखूंगा ।

मैकडानल ने 'मृळीकम्' का अर्थ दया (mercy) किया है ।

संहिता-पाठः

३. पृच्छे तदेनो वरुण दिदृक्षू-
पो एमि चिकितुषो विपृच्छम् ।
समानमिन्मे कवयश्चिदाहुर्
अयं ह तुभ्यं वरुणो हृणीते ॥

पद-पाठः

पृच्छे । तत् । एनः । वरुण । दिदृक्षु ।
उपो इति । एमि । चिकितुषः । विऽपृच्छम् ।
समानम् । इत् । मे । कवयः । चित् । आहुः ।
अयम् । ह । तुभ्यम् । वरुणः । हृणीते ॥

३. संस्कृतव्याख्या :—हे, वरुण ! तदेनः=पापम् , पृच्छे=त्वां पृच्छामि, दिदृक्षुः=द्रष्टुमिच्छन्नहम् , विपृच्छम् =विविधं प्रष्टुम् , (येनाहं तव पाशेन बद्धस्तत्पापं कथयेति), चिकितुषः=विदुषो जनान् , उपो एमि= उपागाम् , (ते), कवयश्चित् =क्रान्तदर्शिनो जनाश्च, मे=मह्यम् , समानमित् = समानमेव, आहुः=अकथयन् , (किमाहुस्तदाह), (हे स्तोतः), तुभ्यमयं ह= त्वत्कृतेऽयमेव, वरुणः, हृणीते=क्रुध्यति, अतः क्रोधं परित्यज्य मोचय ।

हे वरुण ! तत्=उस, एनः=अपराध को या पाप को, पृच्छे=तुझ से पूछता हूँ, दिदृक्षुः = जिस पाप को देखने या जानने की इच्छा वाला भी मैं, तुम्हारे पाशों से जिस पाप के कारण बँधा हुआ हूँ, विपृच्छम् =मैं उस पाप को जानने के लिए अनेक प्रकार से पूछता हूँ, जिससे उसे छोड़ सकूँ, तथा चिकितुषः=जानकार विद्वानों के, उप=समीप, उ= निश्चय से, एमि=जाता हूँ। कवयः=क्रान्तदर्शी वे लोग, चित् =भी, समानम् इत् =एक रूप का ही, आहुः=उत्तर देते हैं कि हे स्तोता ! तुभ्यम् =तुझ से, अयम् =यह वरुण, ह=निश्चय रूप में, हृणीते=क्रुद्ध

है (इसलिए हे वरुण ! मेरे प्रति क्रोध को छोड़ कर मुझे पाशों से मुक्त कीजिए)।

मैक्डानल ने 'कवयः' का अर्थ=ऋषि (sages) किया है।

संहिता-पाठः

४. किमाग आस वरुण ज्येष्ठं
यत्स्तोतारं जिघांससि सखायम् :
प्र तन्मे वोचो दूळभ स्वधावो
ऽव त्वानेना नमसा तुर इयाम् ॥

पद-पाठः

किम् । आगः । आस । वरुण । ज्येष्ठम् ।
यत् । स्तोतारम् । जिघांससि । सखायम् ।
प्र । तत् । मे । वोचः । दुःऽदभ । स्वधाऽवः ।
अव । त्वा । अनेनाः । नमसा । तुरः । इयाम् ॥

४. संस्कृतव्याख्या :—हे वरुण ! ज्येष्ठम् =अधिकम्, किमाग आस=कोऽपराधो मया कृतः, यत् =येन (आगसा), सखायम् =मित्रभूतम्, स्तोतारम्, जिघांससि=हन्तुमिच्छसि, हे दूळभ=अन्यैर्बाधितुमशक्य, स्वधावः=तेजस्विन्, तत् =आगः, मे=मह्यम्, प्र वोचः=प्रब्रूहि, (येन प्रायश्चित्तं कृत्वा), अनेनाः=अपापः सन्नहम्, तुरः=त्वरमाणः, नमसा=नमस्कारेण हविषा वा, (त्वाम्), अव इयाम् =उपगच्छेयम्।

व्याकरणम् :—व्याकरणं स्पष्टम्।

हे वरुण ! ज्येष्ठम्=बड़ा, किम्=कौन सा, आगः=वह पाप, आस=मैंने किया था, यतः=जिस से, सखायम्=हितकारी मित्र के समान, स्तोतारम्=मुझ स्तुति करने वाले को, जिघांससि=तुम मारना चाहते

हो। हे दूळभ ! =शत्रुओं से अधृष्य, तथा स्वधावः=तेजस्वी हे वरुण ! तत्=उस पाप को, मे=मुझ से, प्रवोचः=कहिए, जिससे उस पाप का प्रायश्चित्त करके, अनेनाः=पापरहित हुआ मैं, तुरः=शीघ्रता के साथ, नमसा=नमस्कार या हवि से, त्वा=तुझे, अवेयाम्=जान सकूं, या प्राप्त कर सकूँ, या प्रसन्न कर सकूँ।

मैक्डानल ने 'दूळभ' शब्द का अर्थ जिसे मुश्किल से धोखा दिया जा सके (hard to deceive) और 'स्वधावन्' का अर्थ स्वाधीन (self depended) किया है।

संहिता-पाठः

५. अव॑ द्रुग्धानि॒ पित्र्या॑ सृजा नो

ऽव॒ या व॒यं च॑कृमा त॒नूभिः॑।

अव॑ राजन्पशु॒तृपं॒ न ता॒युं

सृ॒जा व॒त्सं न दाम्नो॒ वसि॑ष्ठम्॥

पद-पाठः

अव॑। द्रु॒ग्धानि॑। पित्र्या॑। सृ॒ज। नः॒।
अव॑। या। व॒यम्। च॒कृ॒म। त॒नूभिः॑।
अव॑। रा॒ज॒न्। प॒शु॒ऽतृप॑म्। न। ता॒युम्।
सृ॒ज। व॒त्सम्। न। दाम्नः॑। वसि॑ष्ठम्॥

५. संस्कृतव्याख्याः—हे वरुण, पित्र्या=पितृतः प्राप्तानि, नः=अस्मदीयानि, द्रुग्धानि=द्रोहान् (बन्धनहेतुभूतान्), अवसृज=विमुञ्च, वयं च या=यानि द्रोहजातानि, तनूभिः=शरीरैः, चकृम=कृतवन्तः स्म, (तानि), अवसृज, हे राजन् =राजमान वरुण ! पशुतृपम् न तायुम् =स्तैन्यप्रायश्चित्तं कृत्वा पश्चात् घासादिभिः पशूनां तर्पयितारं स्तेनमिव, दाम्नः=रज्जोः, वत्सं न=वत्समिव, वसिष्ठम् =मां बन्धकात् पापात्, अवसृज=विमुञ्च।

व्याकरणम् :—वसिष्ठम् =अतिशयेन वशी वशिष्ठस्तम्। वशिन्-शब्दादिष्ठन्।

हे वरुण ! पित्र्या=पिता आदि पूर्वजों से किये गये, नः=हमारे, द्रुग्धानि=द्रोह के कारण पापों को, अवसृज=माफ कर दो, छोड़ दो। वयम् च=और हम लोग, या=जो पाप, तनूभिः=अपने शरीरों से, चकृम=कर चुके हैं (उन्हें भी क्षमा कर दे), हे राजन्=प्रकाशमान वरुण, तायुम्=प्रथम पशुओं को चुराने वाले, और बाद में पशुतृपम्=पशुओं को घास आदि प्रदान करके तृप्त करने वाले, चोर की तरह दाम्नः=रस्सी से, वत्सम्=बछड़े की तरह, वसिष्ठम्=वश में विद्यमान या धन वाले, मुझ को (पाप से छुड़ा, यह वाक्य शेष है)।

संहिता-पाठः

६. न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः सा
सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः।
अस्ति ज्यायान्कनीयस उपारे
स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता॥

पद-पाठः

न। सः। स्वः। दक्षः। वरुण। ध्रुतिः। सा।
सुरा। मन्युः। विऽभीदकः। अचित्तिः।
अस्ति। ज्यायान्। कनीयसः। उपऽअरे।
स्वप्नः। चन। इत्। अनृतस्य। प्रऽयोता॥

६. संस्कृतव्याख्या :—हे वरुण, स स्वो दक्षः=पुरुषस्य स्वभूतं तद्बलं पापप्रवृत्तौ कारणम्, न=न भवति, किं तर्हि तदाह :—ध्रुतिः=स्थिरा दैवगतिः (उत्पत्तिसमये निर्मिता), सा च=सा ध्रुतिः। सुरा=प्रमाद-कारिणी, मन्युः=क्रोधः (गुर्वादिविषयः), विभीदकः=द्यूतसाधनोऽक्षः।

अचित्तिः=अज्ञानम् , (आपत्तिकारणम्) । (अपि च), कनीयसः=अल्पस्य (पुरुषस्य), उपारे=उपागते समीपे, ज्यायान् =अधिकः (ईश्वरः) अस्ति, (स एव पापे प्रवर्तयति), (एवं सति), स्वप्नश्चन=स्वप्नोऽपि अनृतस्य= पापस्य, प्रयोता=प्रकर्षेण मिश्रयिता भवति, इत् इति पादपूरणः । अतो दैवागतो मेऽपराधः क्षन्तव्यः ।

व्याकरणम् :—अव्याकरणीयमेतत् ।

हे वरुण ! सः=वह, स्वः=अपना, दक्षः=बल है (जो पाप प्रवृत्ति में), न=कारण नहीं होता, किन्तु ध्रुतिः=उत्पत्ति के समय उत्पन्न हुई दैवगति अर्थात् नियति ही कारण है । सा=वही ध्रुति, सुरा=प्रमाद कराने वाली है, मन्युः=क्रोध रूप है, (अतः पूज्यो के विषय में) अनर्थ का कारण है । विभीदकः=जुए में प्रवृत्ति कराने वाली भी वही ध्रुति है, अचित्तिः=अविवेक का कारण भी वही है (इस प्रकार वही पुरुष को पाप की ओर ले जाती है), तथा कनीयसः=हीन साधन वाले पुरुष के, उपारे=पाप की प्रवृत्ति के निकट आने पर, ज्यायान्=उस पुरुष से बड़ा ईश्वर, अस्ति=उसका रक्षक है, (जो कर्मानुसार मनुष्य को फल देता है), इस प्रकार स्वप्नः चन=स्वप्न भी अर्थात् संकल्प भी, अनृतस्य= पाप का, प्रयोता=मिलने वाला या देने वाला होता है, अर्थात् मानसिक पाप भी मनुष्य के सुख-दुःखमय भोगों का कारण होता है । (हे वरुण ! इन मानसिक व शारीरिक पापो को तू क्षमा कर) ।

मैक्डानल ने 'अस्ति ज्यायान् कनीयस उपारे' का अर्थ छोटे के किये पाप का भागी (जिम्मेदार) बड़ा है, (the elder is in the offence of the younger) किया है । इसी प्रकार—'स्वप्नःचन इत् अनृतस्य प्रयोता' इस वाक्य का अर्थ नींद आने पर भी पाप पीछा नहीं छोड़ता (not even sleep is the warder off of wrong) किया है ।

संहिता-पाठः

७. अरं दासो न मीळ्हुषे कराण्य-
हं देवाय भूर्णयेऽनागाः ।
अचेतयदचितो देवो अर्यो
गृत्सं राये कवितरो जुनाति ॥

पद-पाठः

अरम् । दासः । न । मीळ्हुषे । कराणि ।
अहम् । देवाय । भूर्णये । अनागाः ।
अचेतयत् । अचितः । देवः । अर्यः ।
गृत्सम् । राये । कविऽतरः । जुनाति ॥

७. संस्कृतव्याख्या :—मीळ्हुषे=सेक्त्रे कामानां वर्षित्रे वा, भूर्णये=जगतो भर्त्रे, देवाय=दानादिगुणयुक्ताय वरुणाय, अनागाः=अपापः सन्, अहम्, अरम्=अलम् कराणि=परिचरणं करवाणि। दासो न=भृत्य इव, (यथा दासः स्वस्वामिने परिचरति सम्यक्), अर्यः=स्वामी, स देवः, अचितः=अजानतोऽस्मान्, अचेतयत्=प्रज्ञापयतु, गृत्सम्=स्तोतारम् च, कवितरः=प्रज्ञातरो देवः, राये=धनाय, जुनाति=प्रेरयतु ।

व्याकरणम् :—भूर्णये='भृ' धातोः 'क्तिन्' । ऋकारछान्दसत्वादुरादेशः, रपरत्वं दीर्घत्वम्, रदाभ्यामिति निष्ठानत्वम्, णत्वम् ।

मीळ्हुषे=सींचने वाले, अर्थात् इच्छापूर्ति करने वाले, भूर्णये=संसार का भरण करने वाले, देवाय=दान आदि गुण वाले वरुण के लिए, अनागाः=उसकी कृपा से निष्पाप बना हुआ मैं, अरम्=(अलम्) पर्याप्त रूप से, दासः=नौकर, न= की तरह, कराणि=सेवा करूँ, उसी प्रकार, अर्यः=स्वामी, देवः=वह वरुण देव, अचितः=अज्ञान वाले हम लोगो को, अचेतयत्=ज्ञान देवे, और गृत्सम्=स्तुति करने वाले

के मार्ग में, कवितरः=अधिक (विशेष) ज्ञान वाला वह वरुण देव, राये= धनप्राप्ति के लिए, जुनाति=आने वाले विघ्नों को दूर करे, अर्थात् धन की प्राप्ति करावे।

मैक्डानल ने 'भूर्णये' का अर्थ क्रुद्ध वरुण देव (angry god) किया है, तथा गृत्सम्' का अर्थ अनुभवी व्यक्ति (experienced man) किया है।

संहिता-पाठः

८. अयं सु तुभ्यं वरुण स्वधावो
हृदि स्तोम उपश्रितश्चिदस्तु।
शं नः क्षेमे शमु योगे नो अस्तु
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥

पद-पाठः

अयम्। सु। तुभ्यम्। वरुण। स्वधाऽवः।
हृदि। स्तोमः। उपश्रितः। चित्। अस्तु।
शम्। नः। क्षेमे। शम्। ऊँ इति। योगे। नः। अस्तु।
यूयम्। पात। स्वस्तिऽभिः। सदा। नः॥

८. संस्कृतव्याख्या:—हे स्वधावः=अन्नवन्, वरुण, तुभ्यम्= त्वदर्थं क्रियमाणः, अयम्=एतत्सूक्तात्मकम्, स्तोमः=स्तोत्रम्, हृदि= त्वदीये हृदये, सु=सुष्ठु, उपश्रितः=उपगतः, अस्तु, चित् इति पूरकः, नः= अस्मदीये, क्षेमे=रक्षणे, शम्=उपद्रवाणां शमनम्, अस्तु, योगे च नः= अस्मदीये प्रापणे, शमु=शमनम्, नः=अस्मान्, स्वस्तिभिः=अविनाशैः, पात=रक्षत।

व्याकरणम्:—स्पष्टम्।

स्वधावः=हे अन्नवाले वरुण, तुभ्यम् अयम्=तेरे लिए किया गया यह, स्तोमः=पूरे सूक्त से स्तोत्र (स्तुति), हृदि=तेरे हृदय मे, सु=अच्छी प्रकार, उपश्रितः=स्थिर या प्राप्त, अस्तु=हो, चित्=यह पद निरर्थक है, केवल पादपूर्ति के लिये आया है । तथा नः=हमारे, क्षेमे=प्राप्त पदार्थों की रक्षा करने मे, शम्=उपद्रवों की शान्ति हो, योगे=अप्राप्त पदार्थों की प्राप्ति में, नः=हमारी, शमु=विघ्नो की शान्ति ही हो, यूयम्=हे वरुण आदि देवगणो ! आप नः=हमारी, सदा=सर्वदा, स्वस्तिभिः=कल्याण प्रदान के द्वारा, पात=रक्षा कीजिये ।

मैक्डानल ने 'स्वधावः' पद का अर्थ स्वतन्त्र (self dependent) किया है ।

(७-१०३) मण्डूक

संहिता-पाठः

१. संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः ।
वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः ॥

पद-पाठः

संवत्सरम् । शशयानाः । ब्राह्मणाः । व्रतऽचारिणः ।
वाचम् । पर्जन्यऽजिन्विताम् । प्र । मण्डूकाः । अवादिषुः ॥

१. संस्कृतव्याख्या :—व्रतचारिणः=संवत्सरसत्रात्मकं कर्माचरन्तः, ब्राह्मणाः=ब्राह्मणा इव, संवत्सरम्=आवर्षर्तोरेकं संवत्सरम्, शशयानाः=वर्षणार्थम् तपश्चरन्तः, (इव), (बिल एव सन्तः), मण्डूकाः, पर्जन्यजिन्विताम्=पर्जन्यप्रियकरीम्, वाचम्, प्र अवादिषुः=प्रवदन्ति ।

व्याकरणम् :—जिन्विताम् 'जिन्वि' स्तुतौ 'क्त' प्रत्ययः द्वितीया ।

परिचयः— इस सूक्त का वसिष्ठ ऋषि है, मण्डूक देवता है, त्रिष्टुप् छन्द है। वसिष्ठ ऋषि वर्षा की इच्छा से निम्नलिखित मन्त्रों से पर्जन्य देव की स्तुति करने लगे। जिस स्तुति का मण्डूकों ने निम्न-लिखित प्रकार से अनुमोदन किया।

व्रतचारिणः=व्रत को धारण करने वाले, ब्राह्मणाः=ब्राह्मणों की तरह, संवत्सरम्=एक वर्ष तक, शशयानाः=बिलों में या पृथिवी के अन्दर शयन करने वाले, मण्डूकाः=मेंढक, पर्जन्यजिन्विताम्=पर्जन्य को प्रसन्न करने वाली, वाचम्=वाणी को, प्र अवादिषुः=बोलने लगे।

मैकडानल ने 'पर्जन्यजिन्विताम्' का अर्थ, मेघों द्वारा उत्पन्न की गई (roused parjanya), किया है।

संहिता-पाठः

२. दिव्या आपो अभि यदेनमायन्
दृतिं न शुष्कं सरसी शयानम्।
गवामह न मायुर्वत्सिनीनां
मण्डूकानां वग्नुरत्रा समेति॥

पद-पाठः

दिव्याः। आपः। अभि। यत्। एनम्। आयन्।
दृतिम्। न। शुष्कम्। सरसी इति। शयानम्।
गवाम्। अह। न। मायुः। वत्सिनीनाम्।
मण्डूकानाम्। वग्नुः। अत्र। सम्। एति॥

२. संस्कृतव्याख्या:—दिव्याः=दिविभवाः, आपः, दृतिं न=दृतिमिव, शुष्कम्=नीरसम्, सरसी=सरस्याम्, शयानम्=निवसन्तम्, एनम्=मण्डूकगणम्, यत्=यदा, आयन्=अभिगच्छन्ति, (तदा), अत्र=

अस्मिन् वर्षणे पर्जन्ये वा सति, वत्सिनीनाम् = वत्सयुक्तानाम्, गवाम् न मायुः = गवां शब्द इव, मण्डूकानाम्, वग्नुः = शब्दः, समेति = संगच्छते, अह इति पूरकः ।

व्याकरणम् :—वग्नुः = वच् 'परिभाषणे' औणादिकः 'नु' प्रत्ययः ।

दिव्यः = आकाश में उत्पन्न होने वाले, आपः = जल, दृतिं न = मशक की तरह, शुष्कम् = जलरहित, सरसी शयानम् = बडे तालाब मे रहने वाले, एनम् = इस मण्डूकगण से, यत् = जब, आयन् = प्राप्त होते हैं, तब अत्र = इस वर्षा के होने पर, वत्सिनीनाम् = बछडे वाली, गवाम् = गौओं के, मायुः = शब्द की, न = तरह, मण्डूकानाम् = मेंढकों का, वग्नुः = शब्द, समेति = एक साथ निकल पड़ता है (जैसे बछड़ो से मिलने पर गौएँ रंभाती हैं, वैसे ही वर्षा पड़ने पर मेंढक भी शोर मचाते हैं।)

संहिता-पाठः

३. यदीमेनाँ उशतो अभ्यवर्षीत्
तृष्यावतः प्रावृष्यागतायाम् ।
अख्खलीकृत्या पितरं न पुत्रो
अन्यो अन्यमुप वदन्तमेति ॥

पद-पाठः

यत् । ईम् । एनान् । उशतः । अभि । अवर्षीत् ।
तृष्याऽवतः । प्रावृषि । आऽगतायाम् ।
अख्खलीकृत्य । पितरम् । न । पुत्रः ।
अन्यः । अन्यम् । उप । वदन्तम् । एति ॥

३. संस्कृतव्याख्या :—उशतः = कामयमानान्, तृष्यावतः = तृष्णावतः, एनान् = मण्डूकान्, प्रावृषि = वर्षर्तौ, आगतायाम् = आगते सति, यत् = यदा, अभ्यवर्षीत् = पर्जन्यो जलैरभिसिञ्चति, ईम् इति पूरणः, (तदानीम्)

अख्खलीकृत्य=अख्खल इति शब्दानुकरणं तद्वत् शब्दं कृत्वा, पुत्रः, पितरं न=पितरमिव, अन्यः=मण्डूकान्तरः, वदन्तम् =शब्दयन्तम् , अन्यम् = मण्डूकम् , उप एति=प्राप्नोति ।

व्याकरणम् :—व्याकरणे न किञ्चिद् वक्तव्यम् ।

उशतः=कामना करने वाले, तृष्यावतः=प्यासे, एनान्=इन मेंढकों को, प्रावृषि=वर्षा ऋतु के आने पर, यत्=जब, अभिअवर्षात्=मेघ पानी से सींचता है, ईम्=निरर्थक पदपूर्ति के लिए है । तब अख्खलीकृत्य=अख्ख, अखख इस प्रकार के शब्द को करने वाला, पुत्रः=पुत्र, पितरम्=पिता के समीप, न=जिस प्रकार (चिल्लाता हुआ पहुँचता है) वैसे ही, अन्यः=एक, मेंढक, अन्यम्=दूसरे, वदन्तम्=टर्राने वाले मेंढक के पास, उपैति=पहुँचता है ।

संहिता-पाठः

४. अन्यो अन्यमनु गृभ्णात्येनोर्
अपां प्रसर्गे यदमन्दिषाताम् ।
मण्डूको यदभिवृष्टः कनिष्कन्
पृश्निः संपृङ्क्ते हरितेन वाचम् ॥

पद-पाठः

अन्यः । अन्यम् । अनु । गृभ्णाति । एनोः ।
अपाम् । प्रऽसर्गे । यत् । अमन्दिषाताम् ।
मण्डूकः । यत् । अभिऽवृष्टः । कनिस्कन् ।
पृश्निः । सम्ऽपृङ्क्ते । हरितेन । वाचम् ॥

४. संस्कृतव्याख्या :—एनोः=एनयोर्मण्डूकयोः, अन्यः=मण्डूकः, अन्यम् =मण्डूकमनु, गृभ्णाति=गृह्णाति, अपाम् =उदकानाम् , प्रसर्गे= प्रसर्जने (वर्षणे) सति । यत =यदा, अमन्दिषाताम् =हृष्टावभूताम् , यत् =

यदा, च, अभिवृष्टः=पर्जन्येनाभिषिक्तः, कनिष्कन्=भृशं उत्प्लवं कुर्वन्, पृश्निः=पृश्निवर्णः, मण्डूकः, हरितेन=हरितवर्णेनान्येन मण्डूकेन, वाचम्, संपृक्ते=योजयति ।

एनोः=इन दोनो मेंढको में, अन्यः=एक, अन्यम्=दूसरे मेंढक को, अनु=पीछे दौड़ कर, गृभ्णाति=पकड़ लेता है, अपाम्=जलों के, प्रसर्गे=बरसने पर, यत्=जब, अमन्दिषाताम्=दोनो मेंढक खुश होते हैं, यत्=और जब, अभिवृष्टः=(पानी से) वर्षा के जल से स्नान किया हुआ, कनिष्कन्=कूदता हुआ, पृश्निः=चितकबरा मेंढक, हरितेन=हरे रंग के मेंढक से, वाचम् संपृङ्क्ते=ध्वनि मिलाता है, अर्थात् जब दोनो एक साथ टर्राते हैं (तब एक दूसरा एक दूसरे पर अनुग्रह-सा करता है, अर्थात्—परस्पर एक दूसरे का साथ देते हुए जोर से चिल्लाते हैं) ।

संहिता-पाठः

५. यदे॑षाम॒न्यो अ॒न्यस्य॒ वाचं॑
शा॒क्तस्ये॑व॒ वद॑ति॒ शिक्ष॑माणः ।
सर्वं॒ तदे॑षां स॒मृधे॑व॒ पर्व॒
यत्सु॒वाचो॒ वद॑थ॒नाध्य॒प्सु ॥

पद-पाठः

यत् । ए॒षा॒म् । अ॒न्यः । अ॒न्यस्य॑ । वाच॑म् ।
शा॒क्तस्य॑ऽइव । वद॑ति । शिक्ष॑माणः ।
सर्व॑म् । तत् । ए॒षा॒म् । स॒मृधा॑ऽइव । पर्व॑ ।
यत् । सु॒ऽवाचः॑ । वद॑थन । अधि॑ । अ॒प्ऽसु ॥

५. संस्कृतव्याख्या :—हे मण्डूकाः ! यत्=यदा, एषाम्=युष्माकं मध्ये, अन्यः=मण्डूकः, अन्यस्य=मण्डूकस्य, वाचम्, वदति=अनुकरोति, शिक्षमाणः=शिक्ष्यमाणः (शिष्यः), शाक्तस्य=शक्तिमतः,

शिक्षकस्य वाचं यथा अनुवदति, यत् =यदा च, सुवाचः=शोभनवाचः (यूयम्), अप्सु=वृष्टेषु जलेषु, अधि=उपरि, (प्लवन्तः), वदथन =शब्दं कुरुत, तत् =तदा, एषाम् =युष्माकम्, सर्वम्, पर्व=परुष्मच्छरीरम्, समृधेव=समृद्धमेव, (भवतीत्यर्थः)।

हे मण्डूको ! यत्=जब, एषाम्=तुम में, अन्यः=एक मेंढक, अन्यस्य=दूसरे मेंढक की, वाचं वदति=वाणी का अनुकरण करता है, तब शाक्तस्य=शक्तिवाले गुरु की वाणी का, शिक्षमाणः=शिष्य की तरह अनुकरण होता है, यत् =और, जब, सुवाचः=अच्छी वाणी वाले तुम सब, अप्सु=वर्षा होने पर, अधि=पानी के ऊपर तैरते हुए, वदथन=बोलते हो, तत्=तब, एषाम्=तुम्हारा, सर्वम्=सारा, पर्व=जोड़ो वाला शरीर, समृधेव=समृद्ध - बढ़ सा जाता है, अर्थात्—ग्रीष्म ऋतु मे मिट्टी के रूप को प्राप्त हुए मेंढक वर्षा पड़ने पर एक मेंढक की आवाज सुन कर पूर्ण अंगवाले बने हुए जमीन मे से निकल पड़ते हैं।

संहिता-पाठः

६. गोमा॑युरेको॑ अ॒जमा॑यु॒रेकः॒
पृश्नि॒रेको॒ हरि॑त॒ एक॑ एषाम्।
स॒मा॒नं नाम॒ बिभ्र॑तो॒ विरू॑पाः
पु॒रु॒त्रा वाचं॑ पिपिशु॒र्वद॑न्तः॥

पद-पाठः

गोऽमा॑युः। एकः॑। अ॒जऽमा॑युः। एकः॑।
पृश्निः॑। एकः॑। हरि॑तः। एकः॑। ए॒षा॒म्।
स॒मा॒नम्। नाम॑। बिभ्र॑तः। विरू॑पाः।
पु॒रु॒ऽत्रा। वाच॑म्। पि॒पि॒शुः॒। वद॑न्तः॥

६. संस्कृतव्याख्या :—एषाम् =मण्डूकानां मध्ये, एकः, गोमायुः= गवामिव शब्दकारकः, एकः=अन्यः, अजमायुः=अजस्य शब्द इव शब्द-

कारकः, एकः, पृश्निः=पृश्निवर्णः, एकः=अपरः, हरितः=हरितवर्णः, (एवं), विरूपाः=नानारूपा अपि, समानम् =एकं 'मण्डूका' इति, नाम= संज्ञाम् , बिभ्रतः=धारयन्तः, पुरुत्रा=बहुषु देशेषु, वाचम् , वदन्तः, पिपिशुः=प्रादुर्भवन्ति ।

व्याकरणम् :—पुरुत्रा='पुरु' शब्दात् 'देवमनुष्य०' इत्यादिना 'त्रा' पिपिशुः='पिश्' अवयवे लिटि रूपम् ।

एषाम्=इन मेंढको में से, एकः=एक मेंढक, गोमायुः=गौ के जैसे शब्द वाला है, एकः=एक दूसरा, अजमायुः=बकरे की तरह शब्द करने वाला है, एकः=एक मेढक, पृश्निः=चितकबरा होता है, एकः= दूसरा, हरितः=हरे रंग वाला होता है। इस प्रकार विरूपाः=भिन्न रंगो वाले भी मेंढक, समानम् =एक जैसे, नाम=मण्डूक नाम को, बिभ्रतः= धारण करने वाले, पुरुत्रा=बहुत से मेढको के रूप में, वाचं वदन्तः= शब्द करने वाले, होते हुए, पिपिशुः=अनेक रूप वाले बन जाते हैं, प्रादुर्भूत हो जाते हैं।

संहिता-पाठः

७. ब्राह्मणासो अतिरात्रे न सोमे
सरो न पूर्णमभितो वदन्तः ।
संवत्सरस्य तदहः परि ष्ठ
यन्मण्डूकाः प्रावृषीणं बभूव ॥

पद-पाठः

ब्राह्मणासः । अतिऽरात्रे । न । सोमे ।
सरः । न । पूर्णम् । अभितः । वदन्तः ।
संवत्सरस्य । तत् । अहः । परि । स्थ ।
यत् । मण्डूकाः । प्रावृषीणम् । बभूव ॥

७. अतिरात्रे=अतिरात्राख्ये, सोमे न=सोमयाग इव, ब्राह्मणासः=ब्राह्मणाः, (स्तुत्यादीनि पर्यायेण शंसन्ति), हे मण्डूकाः! न=संप्रति साम्प्रतम्, (नशब्दः संप्रत्यर्थे), पूर्णं सरः अभितः=पूर्णसरोवरं सर्वतः, वदन्तः=रात्रौ शब्दं कुर्वाणाः यूयम्, तदहः=तद्दिनम्, परिष्ठ=परितः भवथ। यत्=अहः, प्रावृषीणम्=प्रावृषि भवम्, बभूव, तस्मिन्नहनि सर्वतो वर्तमाना भवथ।

अतिरात्रे=अतिरात्र नाम के यज्ञ विशेष मे और सोमे=सोम याग में, न=जैसे, ब्राह्मणासः=ऋत्विज् लोग (यज्ञ कर्ता) (मन्त्रो का जोर-जोर से उच्चारण करते हैं) न=उसी प्रकार इस समय, पूर्णम्=जल से भरे हुए, सरः=तालाब के, अभितः=चारो तरफ (बोलने वाले मेढक प्रतीत होते हैं), वत्सरस्य=वर्ष के, तदहः=उस दिन, मण्डूकाः=मेढक, परि ष्ठ=चारों तरफ से इकट्ठे हो कर बैठ जाते हैं। यत्=जिस दिन, प्रावृषीणम्=वर्षा का जल, बभूव=बरसता है।

मैक्डानल ने 'परि ष्ठ' का अर्थ खुशी मनाते हैं (celebrate) किया है।

संहिता-पाठः

८. ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत
ब्रह्म कृण्वन्तः परिवत्सरीणम्।
अध्वर्यवो घर्मिणः सिष्विदाना
आविर्भवन्ति गुह्या न के चित्॥

पद-पाठः

ब्राह्मणासः। सोमिनः। वाचम्। अक्रत।
ब्रह्म। कृण्वन्तः। परिवत्सरीणम्।
अध्वर्यवः। घर्मिणः। सिस्विदानाः।
आविः। भवन्ति। गुह्याः। न। के। चित्॥

८. संस्कृतव्याख्या :—सोमिनः=सोमयुक्ताः, परिवत्सरीणम् = सांवत्सरिकं गवामयनिकम्, ब्रह्म=स्तुतशस्त्रात्मकम्, कृण्वन्तः=कुर्वन्तः, ब्राह्मणासः=ब्राह्मणा इव, वाचम् =शब्दम्, अक्रत=अकृपत, घर्मिणः= प्रवर्ग्येण चरन्तः, अध्वर्यवः=ऋत्विज इव, सिष्विदानाः=स्विद्यद्गात्राः, गुह्याः=घर्मकालेऽभिगूढाः, केचित् =केचन मण्डूकाः, न=संप्रति वृष्टौ सत्याम्, आविर्भवन्ति=जायन्ते।

सोमिनः=सोमवाले, परिवत्सरीणम् =वार्षिक, ब्रह्म=स्तोत्रशस्त्रात्मक यज्ञ को, कृण्वन्तः=करनेवाले, ब्राह्मणासः=ब्राह्मण लोग, वाचम् अक्रत=शब्द बोलते हैं, ये मेंढक भी, घर्मिणः=घर्म नाम के अध्याय से यज्ञ करने वाले, अध्वर्यवः=ऋत्विक् गण की तरह, सिस्विदानाः= अत्यधिक पसीने वाले बने हुए, गुह्याः=ग्रीष्म ऋतु में तहखाने में बैठने वाले बन जाते हैं (फिर यज्ञ के समय बाहर निकल आते हैं) उसी प्रकार केचित् =कुछ मेंढक, न=इस समय (वर्षा होने पर) आविः— भवन्ति=प्रकट हो जाते हैं। यहाँ 'न' का अर्थ 'इव' है—तथा प्रकट से होते हैं, यह अर्थ है।

संहिता-पाठः

९. देवहितिं जुगुपुर्द्वादशस्य
ऋतुं नरो न प्र मिनन्त्येते।
संवत्सरे प्रावृष्यागतायां
तप्ता घर्मा अश्नुवते विसर्गम्॥

पद-पाठः

देवऽहितिम्। जुगुपुः। द्वादशस्य।
ऋतुम्। नरः। न। प्र। मिनन्ति। एते।
संवत्सरे। प्रावृषि। आऽगतायाम्।
तप्ताः। घर्माः। अश्नुवते। विऽसर्गम्॥

९, सस्कृतव्याख्या :—नरः=नेतारः, एते=मण्डूकाः, देवहितिम्=देवैः कृतं विधानम् , जुगुपुः=गोपायन्ति, (काले काले रक्षन्ति), (अत एव) द्वादशस्य=द्वादशमासात्मकसंवत्सरस्य ऋतुम् =वसन्तादिकम् , न प्र मिनन्ति=न हिंसन्ति, संवत्सरे=वर्षे पूर्णे, प्रावृषि=वर्षर्तौ, आगतायाम् =आगते सति, घर्माः=पूर्वं घर्मकाले वर्तमानाः, तप्ताः=तापेन पीडिताः, (सम्प्रति) विसर्गम् =बिलान्मोचनम् , अश्नुवते=प्राप्नुवन्ति ।

नरः=नेता बने हुए, एते=यह मण्डूक, देवहितिम् =देवताओं के द्वारा किये गये नियमों का, अर्थात् जिस ऋतु का जो धर्म है, उस की उसी प्रकार नियम-पालन द्वारा, जुगुपुः=समय-समय पर रक्षा करते हैं, इसी लिए द्वादशस्य=बारह महीनों वाले संवत्सर के, ऋतुम्=वसंतादि ऋतुओं को, न प्रमिनन्ति=नहीं नष्ट करते, अर्थात् पर्जन्य की स्तुति का अनुमोदन करते हुए वृष्टि का कारण बन जाते हैं । संवत्सरे=वर्ष की पूर्ति पर, प्रावृषि=वर्षा ऋतु के, आगतायाम् =आने पर, घर्माः=पहिले ग्रीष्म ऋतु में रहने वाले, तप्ताः=गर्मी के सन्ताप से पीडित मण्डूक, अब विसर्गम्=बिलों से छुटकारा, अश्नुवते=प्राप्त करते हैं ।

मैक्डानल ने 'नरः' का मनुष्य (men) तथा 'घर्माः' का दूध का प्रदान करना (milk offering) अर्थ किया है । पर इस अर्थ की यहाँ संगति बिलकुल नहीं बैठती ।

संहिता-पाठः

१०. गोमा॑युरदादजमा॑युरदात्
पृश्नि॑रदा॒द्धरि॑तो॒ नो॒ वसू॑नि ।
गवां॑ म॒ण्डूका॒ दद॑तः श॒तानि॑
सहस्रसा॒वे प्र ति॑रन्त॒ आयुः॑ ॥

पद-पाठः

गोऽमायुः । अदात् । अजऽमायुः । अदात् ।
पृश्निः । अदात् । हरितः । नः । वसूनि ।
गवाम् । मण्डूकाः । ददतः । शतानि ।
सहस्रऽसावे । प्र । तिरन्ते । आयुः ॥

१०. संस्कृतव्याख्या :—गोमायुः पूर्ववत्, वसूनि=धनानि, नः= अस्मभ्यम्, अदात् =ददातु, अजमायुः च, अदात्, हरितः=हरितवर्णश्च (अदात्), पृश्निः च, अदात्, (तथा) सहस्रसावे=सहस्रसंख्याका ओषधयः सूयन्त इति वर्षर्तुः सहस्रसावः, (तस्मिन् सति), मण्डूकाः, गवां शतानि= अपरिमिताः गाः ददतः=अस्मभ्यम् प्रयच्छन्तः, आयुः=जीवनम् । प्र तिरन्ते=प्रवर्धयन्तु ।

गोमायुः=गौ के समान शब्द करने वाला मेंढक, वसूनि=धनों को, नः= हमारे लिए, अदात्=देवे, अजमायुः=बकरे के समान शब्द करने वाला मेंढक भी, अदात् =धन देवे । हरितः=हरे रंग का मेंढक भी, अदात् =धन देवे, पृश्निः=चितकबरा मेंढक भी, अदात् =धन देवे तथा सहस्रसावे=हजारो की संख्या मे जब ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं उस वर्षा ऋतु का नाम 'सहस्रसाव' है उस के आने पर, मण्डूकाः= मेंढक, गवाम् =गौओं को, शतानि=सैकड़ों की संख्या को, ददतः= हम को देते हुए, आयुः=हमारे जीवन को, प्र तिरन्ते=बढ़ावे ।

मैकडानल ने 'सहस्रसावे' शब्द का अर्थ=हजारो बार निचोडे जाने वाले सोम रस के समय मे (in a thousand fold some poressing), किया है ।

(१०-१४) यम-सूक्त

संहिता-पाठः

१. परेयिवांसं प्रवतो महीरनु
बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतं संगमनं जनानां
यमं राजानं हविषा दुवस्य ॥

पद-पाठः

परेयिऽवांसम् । प्रवतः । महीः । अनु ।
बहुऽभ्यः । पन्थाम् । अनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतम् । सम्ऽगमनम् । जनानाम् ।
यमम् । राजानम् । हविषा । दुवस्य ॥

१. संस्कृतव्याख्या :—हे मदीयान्तरात्मन्, यजमान वा त्वम्, राजानम् =पितॄणां स्वामिनम्, यमम्, हविषा = पुरोडाशादिना, दुवस्य= परिचर, कीदृशम् :—प्रवतः=प्रकृष्टकर्मवतः पुरुषान्, महीः=तत्तद्भोगोचित-भूप्रदेशान्, अनु परेयिवांसम् =मरणादूर्ध्वं प्रापितवन्तम्, (तथा), बहुभ्यः (स्वर्गार्थिभ्यः पुण्यकृद्भ्यः), पन्थाम् =स्वर्गोचितं मार्गम्, अनुपस्पशानम्, अबाधमानम्, वैवस्वतम् =सूर्यपुत्रम्, जनानां = पापिनाम्, संगमनम् = गन्तव्यस्थानम् ।

व्याकरणम् :—दुवस्य='दु' धातोर्विकरणव्यत्ययः, छान्दसत्वाल्लोट् मध्यमपुरुषैकवचनम् उवङ् । प्रवतः=प्र + वतुप्, षष्ठी ।

परिचयः=इस सूक्त का विवस्वान् का पुत्र यम ऋषि है, अंगिरा, पितर, भृगु और अथर्वा, लिङ्गोक्त-देवता हैं, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् और बृहती छन्द हैं ।

हे मेरे अन्तरात्मा या हे यजमान ! तू राजानम् =पितरों के स्वामी, यमम् =यम की, हविषा=पुरोडाश आदि के द्वारा, दुवस्य=सेवा कर, जो कि यम प्रवतः=उत्कृष्ट पुण्य कर्म करने वाले पुरुषों को, महीः= उन के भोगों के योग्य भूप्रदेशों पर, अनु=लक्ष्य करके, परेयिवासम् = मरने के बाद पहुँचाता है तथा, बहुभ्यः=स्वर्ग चाहने वाले पुण्यात्माओं को, पन्थाम् =स्वर्ग योग्य मार्ग में जाने के समय, अनुपस्पशानम् = बाधा नहीं डालता, अर्थात् पापी पुरुषों को ही स्वर्ग जाने से रोकता है पुण्यात्माओं को नहीं, ऐसे वैवस्वतम् =सूर्य के पुत्रभूत, जनानाम् = पापी पुरुषों के, संगमनम् =अभिगम्य, उस यम की सेवा करो।

मैक्डानल ने 'मही' (mighty), बड़े-बड़े विस्तृत, 'प्रवतः' ढालू प्रदेशों से (steeps) अर्थ किया है और 'अनुपस्पशानम्, का देखा है, स्वच्छ बनाया है (has spied out) अर्थ किया है, तथा 'परेयिवासम्, यह विशेषण यम का ही है। जिसका अर्थ यह है वह यम जो उस रास्ते से जा चुका है (who has passed awey) किया है।

संहिता-पाठः

२. यमो नो गातुं प्रथमो विवेद
नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुर्
एना जज्ञानाः पथ्या३ अनु स्वाः॥

पद-पाठः

यमः। न। गातुम्। प्रथमः। विवेद।
न। एषा। गव्यूतिः। अपऽभर्तवै। ऊँ इति।
यत्र। नः। पूर्वे। पितरः। पराऽईयुः।
एना। जज्ञानाः। पथ्याः। अनु। स्वाः॥

२. संस्कृतव्याख्या :—प्रथमः=मुख्यः, यमः, नः=अस्माकम्, गातुम्=शुभाशुभनिमित्तम्, विवदे=जानाति, एषा गव्यूतिः न अपभर्तवाउ=अतिशयज्ञानयोगात् यमस्य न केनचित् अपहर्तुं शक्यते, यत्र=यस्मिन्मार्गे, नः=अस्माकम्, पूर्वे, पितरः, परेयुः, एना=अनेन मार्गेण गच्छन्तः, जज्ञानाः=जाताः (सर्वे), स्वाः=स्वभूताः, पथ्याः=गतीः, अनु=अनुगच्छन्तीति।

व्याकरणम् :—अव्याकरणीयमेतत्।

प्रथमः=सब में मुख्य, यमः=यमराज, नः=हमारे अर्थात् प्रजा के, गातुम्=शुभ-अशुभ कर्मों को, विवेद=जानता है, एषा=यह, गव्यूतिः=ज्ञान या पद्धति, न=नहीं, ऊ=निश्चय से, अपभर्तवै=अपहरण की जा सकती है, अर्थात् यम के इस स्वाभाविक ज्ञान को कोई नहीं हटा सकता, यत्र=जिस मार्ग में, नः=हमारे, पूर्वे पितरः=पूर्वज पितृगण परेयुः=गये हैं, एना=इस मार्ग से, जज्ञानाः=उत्पन्न होने वाले सब प्राणी, स्वाः=अपने-अपने कर्मानुसार, पथ्याः=मार्गों को, अनु=जाते हैं, अनुगमन करते हैं।

मैक्डानल ने प्रथमः=सब से पहले (first) किया है। स्वाः=अनेक (several) किया है।

संहिता-पाठः

३. मात॑ली क॒व्यैर्य॒मो अङ्गि॑रोभि॒र्
बृह॒स्पति॒र्ऋक्व॑भिर्वावृधा॒नः।
यांश्च॑ दे॒वा वा॑वृ॒धुर्ये च॑ दे॒वान्
स्वाहा॒न्ये स्व॒धया॒न्ये म॑दन्ति॥

पद-पाठः

मात॑ली। क॒व्यैः। य॒मः। अङ्गि॑रःऽभिः।
बृह॒स्पतिः। ऋक्व॑ऽभिः। व॒वृ॒धा॒नः।

यान् । च । देवाः । वबृधुः । ये । च । देवान् ।
स्वाहा । अन्ये । स्वधया । अन्ये । मदन्ति ॥

३. संस्कृतव्याख्या :—मातली=इन्द्रः (मातलिरिन्द्रस्य सारथिः), कव्यैः=पितृभिः, (सह), वबृधानः=वर्धमानो भवति, यमः च, अंगिरोभिः= पितृविशेषैः (वबृधानः) (तत्र) देवाः=इन्द्रादयः, यांश्च=पितृन्, वबृधुः= वर्धयन्ति, ये च (पितरः), देवान्=इन्द्रादीन्, (वर्धयन्ति), (तेषां मध्ये), अन्ये=इन्द्रादयः, स्वाहा मदन्ति=स्वाहाकारेण हृष्यन्ति, अन्ये=पितरः, स्वधया=स्वधाकारेण (हृष्यन्ति) ।

मातली=मातली नाम के सारथि वाला इन्द्र, कव्यैः=कव्य का पितृभोज्य पदार्थों का भोग करने वाले पितरो के साथ, वावृधानः= बढ़ता रहता है, यमः=और यमराज, अङ्गिरोभिः=अगिरा नाम के पितरो के साथ बढ़ता है, वृहस्पतिः=बृहस्पति नामक पितर, ऋक्वभिः= ऋचाओ से, बढ़ता है, देवाः=इन्द्रादि, याश्च=जिन कव्य भोजन करने वाले पितरो को, वावृधुः=बढ़ाते हैं, च=और, ये=जो, पितर, देवान= इन्द्रादि को बढ़ाते हैं उन मे, अन्ये=कुछ इन्द्रादि देवगण स्वाहा= स्वाहाकार से, मदन्ति=तृप्त होते हैं, अन्ये=कुछ पितृगण, स्वधया= स्वधाकार से, मदन्ति=तृप्त होते हैं ।

मैकडानल ने, 'वावृधानः' का दृढ़ बनाता हुआ (having grown strong) अर्थ किया है ।

संहिता-पाठः

४. इमं यम प्रस्तरमा हि सीदा-
ङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः ।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्व्
एना राजन्हविषा मादयस्व ॥

पद-पाठः

इमम् । यम । प्रऽस्तरम् । आ । हि । सीद ।
अङ्गिरःऽभिः । पितृऽभिः । सम्ऽविद्वानः ।
आ । त्वा । मन्त्राः । कविऽशस्ताः । वहन्तु ।
एना । राजन् । हविषा । मादयस्व ॥

४. संस्कृतव्याख्या :—हे, यम, अङ्गिरोभिः, पितृभिः, संविद्वानः= ऐकमत्यं गतस्त्वम्, इमम्, प्रस्तरम् =विस्तीर्णम्, (यज्ञविशेषं), आसीद= आगत्योपविश। हि=यस्मात् कविशस्ताः=विद्वद्भिरृत्विग्भिः प्रयुक्ताः, मन्त्राः, त्वा=त्वाम्, आवहन्तु, हे राजन्! एना=एतेन, हविषा (तुष्टः), मादयस्व=यजमानं हर्षय।

व्याकरणम् :—अव्याकरणीयमेतत्।

हे यम! अंगिरोभिः=इस नाम के पितृभिः=पितरों के साथ, संविदानः=ऐकमत्य को प्राप्त हुआ, तू इमम्=इस, प्रस्तरम् =विस्तीर्ण यज्ञ विशेष मे विछाये पर, आसीद=आकर बैठो, हि=क्योंकि, कविशस्ताः= विद्वान् ऋत्विजो से बोले गये, मंत्राः=मंत्र, त्वा=तुझ को, आवहन्तु= यहाँ बुलावे। हे राजन्, एना=इस, हविषा =हवि के द्वारा सन्तुष्ट हुआ तू, मादयस्व =यजमान को प्रसन्न बना।

मैक्डानल ने 'प्रस्तरम् का अर्थ बिखरी हुई घास' (strewn grass) किया है, तथा मादयस्व= आनन्द लें,(regoice)किया है।

संहिता-पाठः

५. अङ्गिरोभिरा गहि यज्ञियेभिर्
यम वैरूपैरिह मादयस्व।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता ते
ऽस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्य ॥

पद-पाठः

अङ्गिरःऽभिः । आ । गहि । यज्ञियेभिः ।
यम । वैरूपैः । इह । मादयस्व ।
विवस्वन्तम् । हुवे । यः । पिता । ते ।
अस्मिन् । यज्ञे । बर्हिषि । आ । निऽसद्य ॥

५. संस्कृतव्याख्याः—हे यम ! वैरूपैः=विविधरूपयुक्तैः, यज्ञियेभिः=यज्ञयोग्यैः, अङ्गिरोभिः सह, आगहि=आगच्छ, इह=अस्मिन् यज्ञे, मादयस्व=यजमानं हर्षय, यः=विवस्वान् , ते=तव, पिता, (अस्ति), अस्मिन् यज्ञे, तं विवस्वन्तम् , हुवे=आह्वयामि, स च, बर्हिषि (आस्तीर्णे), आ निषद्य=उपविश्य, (यजमानं हर्षयतु) ।

व्याकरणम् :—अव्याकरणीयमेतत् ।

हे यम ! वैरूपैः=विविध रूप वाले, यज्ञियेभिः=यज्ञ योग्य, अङ्गिरोभिः=अंगिरा नामक पितरों के साथ, आगहि=आइए, और इह=इस यज्ञ में, आकर मादयस्व=यजमान को प्रसन्न कीजिये, यः=जो विवस्वान् (सूर्य), ते=तेरा, पिता=जनक रक्षक है, उस विवस्वन्तम् =सूर्य को, हुवे=यज्ञ मे आह्वान करता हूँ, वह अस्मिन्, यज्ञे=इस यज्ञ मे, बर्हिषि=विस्तीर्ण इस कुशा पर, आनिषद्य=बैठ कर, यजमान को प्रसन्न करें । (यहाँ पूर्व क्रिया का अध्याहार किया जाता है) ।

मैक्डानल ने 'यज्ञियेभिः' का अर्थ आदरणीय (adorable) किया है ।

संहिता-पाठः

६. अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा
अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानाम्
अपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥

पद-पाठः

अङ्गिरसः । नः । पितरः । नवऽग्वाः ।
अथर्वाणः । भृगवः । सोम्यासः ।
तेषाम् । वयम् । सुऽमतौ । यज्ञियानाम् ।
अपि । भद्रे । सौमनसे । स्याम ॥

६. संस्कृतव्याख्या :—अङ्गिरसः, अथर्वाणः=अथर्वनामकाः, भृगवः=भृगुनामकाः, नः=अस्माकम्, पितरः, नवग्वाः=अभिनवगमनयुक्ताः, ते च, सोम्यासः=सोममर्हन्तः, यज्ञियानाम्, तेषाम्, सुमतौ=अनुग्रहबुद्धौ, वयं स्याम, अपि च, सौमनसे भद्रे=सौमनस्यस्य कारणे कल्याणे (स्याम)।

अङ्गिरसः=अंगिरा नाम के, नः पितरः=हमारे पितृगण, नवग्वाः=नवीन गमन वाले, अर्थात् सदा नवीन वस्तु के समान प्रीति उत्पन्न करने वाले, और सोम्यासः=चन्द्रमा के समान आह्लादक, और अथर्वाणः=अथर्वा नाम वाले, भृगवः=भृगु नाम वाले, (हमारे पितर) हैं, तेषाम्=उन, यज्ञियानाम्=यज्ञयोग्य, पितरों की, सुमतौ=अनुग्रहवाली (कृपापूर्ण) बुद्धि में, वयम्=हम लोग, स्याम=रहें, अपि=और, सौमनसे=मन को प्रसन्न करनेवाले, भद्रे=कल्याणकारी, सुखकारी फलवाले बनें।

संहिता-पाठः

७. प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः ।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता
यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ॥

पद-पाठः

प्र । इहि । प्र । इहि । पथिऽभिः । पूर्व्येभिः ।
यत्र । नः । पूर्वे । पितरः । पराऽईयुः ।
उभा । राजाना । स्वधया । मदन्ता ।
यमम् । पश्यासि । वरुणम् । च । देवम् ॥

७. संस्कृतव्याख्या :—यत्र=यस्मिन् स्थाने, नः=अस्माकम्, पूर्वे=पुरातनाः, पितरः, परेयुः, पूर्वेभिः=पूर्वस्मिन् काले भवैः, पथिभिः=मार्गैः, (तत्स्थानम्) प्रेहि, हे पितः, (गत्वा च), स्वधया=अमृतान्नेन, मदन्ता=मदन्तौ, राजाना=राजानौ, उभा=उभौ, यमं देवम्, वरुणं च, पश्यासि=पश्य ।

यत्र=जिस स्थान में, नः=हमारे, पूर्वे=प्राचीन, पितरः=पितामहादि, परेयुः=गये हैं, पूर्व्येभि=पूर्वकाल मे बने हुए, अर्थात् अनादि काल से चले हुए, पथिभिः=मार्गो से, प्रेहि=शीघ्र-शीघ्र जाओ, और जाकर स्वधया=अन्न से, मदन्ता=तृप्त होने वाले, राजाना=दीप्तिमान् शरीर वाले, उभा=दोनो, यमम्=यम को, वरुणम=वरुण को, देवम्=उक्त दोनो देवो को, पश्यासि=देखो ।

संहिता-पाठः

८. सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेने-
ष्टापूर्तेन परमे व्योमन् ।
हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि
सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः ॥

पद-पाठः

सम् । गच्छस्व । पितृऽभिः । सम् । यमेन ।
इष्टापूर्तेन । परमे । विऽओमन् ।

हित्वाय॑ । अवद्यम् । पुनः । अस्तम् । आ । इहि ।
सम् । गच्छस्व । तन्वा॑ । सुऽवर्चाः ॥

८. संस्कृतव्याख्याः—(हे पितः त्वम्), परमे=उत्कृष्टे, व्योमन्=स्वर्गाख्ये स्थाने, पितृभिः सह, संगच्छस्व, इष्टापूर्तेन=श्रौतस्मार्तदानफलेन, संगच्छस्व, अवद्यम्=पापम् , हित्वा, अस्तम्=गृहम् , एहि=आगच्छ, (ततः), सुवर्चाः सुवर्चोयुक्तेन, तन्वा=शरीरेण, संगच्छस्व ।

हे मेरे पिता ! फिर तुम परमे=उत्कृष्ट, व्योमन्=स्वर्ग नामक स्थान मे, पितृभि.=पितरो के साथ, संगच्छस्व=मिलो, इष्टापूर्तेन=यज्ञ और कूप आदि के द्वारा, संगच्छस्व=पितरों से मिलो । फिर अवद्यम्=पाप को, हित्वाय=छोड कर, अस्तम्=म्रियमाण नाम के घर को, एहि=जाओ, और वहाँ, सुवर्चाः=सुन्दर चमक वाले, तन्वा=शरीर को, संगच्छस्व=ग्रहण करो, अर्थात् नया जन्म कर्मानुसार प्राप्त करो ।

मैक्डानल ने 'सुवर्चाः' का शक्तिशाली (full of vigour) अर्थ किया है ।

संहिता-पाठः

९. अपे॑त॒ वीत॒ वि च॑ सर्प॒तातो॒
ऽस्मा ए॒तं पि॒तरो॑ लो॒कम॑क्रन् ।
अहो॑भिर॒द्भिर॒क्तुभि॒र्व्य॑क्तं
य॒मो द॑दात्यव॒सान॑मस्मै ॥

पद-पाठः

अप॑ । इ॒त॒ । वि । इ॒त॒ । वि । च॒ । स॒र्प॒त॒ । अतः॑ ।
अ॒स्मै । ए॒तम् । पि॒तरः॑ । लो॒कम् । अ॒क्र॒न् ।
अहः॑ऽभिः । अ॒त्ऽभिः । अ॒क्तुऽभिः॑ । विऽअ॑क्तम् ।
य॒मः । द॒दा॒ति॒ । अ॒व॒ऽसान॑म् । अ॒स्मै ॥

९. संस्कृतव्याख्या :—श्मशाने पूर्वं स्थिता हे पिशाचादयः, अतः=अस्मात् (प्रमृज्यमानदहनस्थानात्) अपेत=अपगच्छत, वीत=विशेषेण गच्छत, विसर्पत=दूरं गच्छत, पितरः, अस्मै=मृतयजमानस्यार्थाय, एतं लोकम्=इदं दहनस्थानम्, अक्रन्=यमस्याज्ञयाऽन्वकुर्वन्, यमः, अपि, अहोभिः=दिवसैः, अद्भिः=अभ्युक्षणोदकैः, अक्तुभिः=रात्रिभिः, व्यक्तम्=संगतम्, अवसानम्=दहनस्थानम्, अस्मै, ददाति=दत्तवान्।

व्याकरणम् :—अक्तुभिः='अञ्जू' 'सिञ्चति अवश्यायेन पृथ्वीमिति' 'अक्तम्' यद्वा नक्तमेवाक्तम् छान्दसत्वाद्भिस्।

हे पिशाचो! तुम, अतः=इस पवित्र दहन स्थान से, अपेत=हट जाओ, वीत=इधर उधर चले जाओ, विसर्पत=इस जगह को छोड़ कर दूर चले जाओ, पितरः=पितरों ने, अस्मै=इस मेरे यजमान के लिए, एतम्=इस, लोकम्=दहन स्थान को, अक्रन्=बना दिया है, यमः=यम भी, अहोभिः=अनेक दिनों से, अद्भिः=जलों से, अक्तुभिः=रातोंसे, व्यक्तम्=शुद्ध किये गये, अर्थात् काल जलादि से शुद्ध किये गये अवसानम्=इस जलाने के स्थान को, अस्मै=इस मृतक यजमान के लिए, ददाति=दे चुका है।

संहिता-पाठः

१०. अति द्रव सारमेयौ श्वानौ
चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा।
अथा पितॄन् सुविदत्राँ उपेहि
यमेन ये सधमादं मदन्ति॥

पद-पाठः

अति। द्रव। सारमेयौ। श्वानौ।
चतुःऽअक्षौ। शबलौ। साधुना। पथा।

यमो देवः, प्र जीवसे=प्रकृष्टजीवनार्थम् , नः=अस्माकम् , दीर्घमायुः, आ यमत् =प्रयच्छतु ।

हे ऋत्विजो ! यूयम् = तुम लोग, यमाय=यम के लिए, घृतवत्=घी वाले, हविः=पुरोडाशादि हव्य को, जुहोत=हवन करो। च=और, प्रतिष्ठत=तुम लोग यम की उपासना करो, देवेषु=देवताओं में, सः= वह यम देवता, प्र जीवसे=दीर्घ जीवन के लिए, नः=हमें, दीर्घम् =लम्बे, आयुः=उम्र को, आ यमत् =प्रदान करें।

मैक्डानल ने 'घृतवत्'=अधिक घी वाले (abunding in ghee) (हवि) अर्थ किया है।

संहिता-पाठः

१५. यमाय मधुमत्तमं
राज्ञे हव्यं जुहोतन।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः
पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ॥

पद-पाठः

यमाय । मधुमत्ऽतमम् ।
राज्ञे । हव्यम् । जुहोतन ।
इदम् । नमः । ऋषिऽभ्यः । पूर्वऽजेभ्यः ।
पूर्वेभ्यः । पथिकृत्ऽभ्यः ॥

१५. संस्कृतव्याख्या :—हे ऋत्विजः! यमाय, राज्ञे, मधुमत्तमम् = अतिमधुरम् , हव्यम् , जुहोतन, पूर्वजेभ्यः=सृष्टयादावुत्पन्नेभ्यः, पूर्वेभ्यः= पूर्वभाविभ्यः, पथिकृद्भ्यः=शोभनमार्गकारिभ्यः, ऋषिभ्यः, इदम् =प्रत्यक्षम् , नमोस्तु।

हे ऋत्विजो ! यमाय=यम राजा के लिए, मधुमत्तमम्=अत्यन्त मधुर, हव्यम्=पुरोडाशादि हवि को, जुहोतन=प्रदान करो, पूर्वजेभ्यः=सृष्टि के आदि मे उत्पन्न हुए, अत एव पूर्वेभ्यः=हम से पूर्व होने वाले, पथिकृद्भ्यः=सुन्दर मार्ग के बनाने वाले, ऋषिभ्यः=ऋषियो के लिए, इदम्= यह, नमः=नमस्कार या अन्न हो ।

मैक्डानल ने 'मधुमत्तमम' का अर्थ खूब शहद मिली हुई (most honied) अर्थ किया है ।

संहिता-पाठः

१६. त्रिकंद्रुकेभिः पतति
षळुर्वीरेकमिद्बृहत् ।
त्रिष्टुब्गायत्री छन्दांसि
सर्वा ता यम आहिता ॥

पद-पाठः

त्रिऽकंद्रुकेभिः । पतति ।
षट् । उर्वीः । एकम् । इत् । बृहत् ।
त्रिऽस्तुप् । गायत्री । छन्दांसि ।
सर्वा । ता । यमे । आऽहिता ॥

१६. संस्कृतव्याख्या :—त्रिकद्रुकेभिः=त्रयो यागविशेषाः त्रिकद्रुकाः, तान् संरक्षणार्थम्, (द्वितीयार्थे तृ०) पतति=यमस्तान् प्राप्नोति, उर्वीः=भूमीः । (च प्राप्नोति), एकमित्=एकमेव, बृहत्=महत्, (प्राप्नोति), छन्दांसि=त्रिष्टुबादीनि, ताः सर्वाः=तानि सर्वाणि, यमे, आहिता=आहितानि, (स्तुतित्वेनावस्थितानि) ।

यह यमराज त्रिकद्रुकेभिः=तीन पर्वों वाले, अर्थात् ज्योतिः, गौः, आयुः, नाम वाले यज्ञ विशेषो की रक्षा के लिए, स्वयं पतति=प्राप्त

होता है, वहाँ पहुँचता है (यहाँ द्वितीया के अर्थ मे तृतीया विभक्ति की गई है) षट् =छः संख्या वाली, उर्वीः=भूमियो को भी (पतति=प्राप्त होता है), उन छः भूमियो के नाम (१) द्यौः (२) पृथिवी (३) आपः (४) ओषधयः (५) अर्कः और (६) सुनृता है। एकम् इत्=एक ही विस्तृत, बृहत्=इस बड़े संसार की भी रक्षा करने के लिए (पतति=वही यम पहुँचता है) और जो त्रिष्टुप् गायत्री=त्रिष्टुप् और गायत्री नाम वाले, छन्दांसि=छन्द हैं, सर्वा=सारे, ता=ये छन्द, यमे=यमराज मे ही, आहिता=निहित हैं, अर्थात् ऋत्विज् लोग गायत्री आदि छन्दो से यमराज की ही स्तुति करते हैं।

मैक्डानल ने 'त्रिकद्रुकेभिः' का यह यमराज सोम के तीन पात्रों के ऊपर से है अर्थात् सोम रस के भरे हुए तीन पात्रो पर उस के पान करने के लिए जल्दी से पहुँचता है (it flies through the three soma vats) अर्थ किया है। यह भी लिखा है कि त्रिकद्रुक शब्द इस मंत्र को छोड़ कर अन्य मंत्रो मे सप्तमी विभक्ति में (locative case) मे आया है और यह शब्द सारे ऋग्वेद मे कुल छः बार ही प्रयुक्त हुआ है तथा इस का सम्बन्ध सोम के साथ ही किया गया है जो कि सोम तीन दिन की मेहनत के बाद तैयार किया जाता है। जैसा कि मैक्डानल ने लिखा है (the term त्रिकद्रुक in the ritual of the Brahmaṇas is the name of three days in a Soma ceremony. The metaphor flying is applied to the flowing Soma compared with the bird.)

(१०-३४) अक्ष-सूक्त (Gambler)

संहिता-पाठः

१. प्रावेपा मा बृहतो मादयन्ति
प्रवातेजा इरिणे वर्वृताना ।
सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो
विभीदको जागृविर्मह्यमच्छान् ॥

पद पाठः

प्रावेपाः । मा । बृहतः । मादयन्ति ।
प्रवातेऽजाः । इरिणे । वर्वृतानाः ।
सोमस्यऽइव । मौजऽवतस्य । भक्षः ।
विऽभीदकः । जागृविः । मह्यम् । अच्छान् ॥

१. संस्कृतव्याख्या :—बृहतः=महतः, प्रवातेजाः=प्रवणे देशे जाताः, इरिणे=आस्फारे, वर्वृतानाः=प्रवर्तमानाः. प्रावेपाः=कम्पनशीलाः (अक्षाः), मा मादयन्ति=मां हर्षयन्ति, (किं च) जागृविः=जागरणस्य कर्ता, विभीदकः=विभीतकविकारोऽक्षः, मह्यम्=माम्, अच्छान्=अत्यर्थं मादयति, (तत्र दृष्टान्तः) सोमस्येव=यथा सोमस्य, मौजवतस्य=मुजवति पर्वते जातस्य, भक्षः=पानम् (मादयति) ।

व्याकरणम् :—जागृविः='जागृ' धातोः 'क्विन्' ।

परिचयः—इस सूक्त का कवषऐलूष ऋषि है, त्रिष्टुप् और जगती छन्द हैं। मुजवान् का पुत्र सौजवत या अक्ष देवता है। इस मन्त्र में जूए के नशे का वर्णन किया है।

बृहतः=बडे विभीतक, (बहेड़े) के फलरूप में उपयुक्त जूए के पासे प्रवातेजाः=पहाड़ों के ढालू स्थानों पर या अधिक हवा वाले स्थानों पर पैदा होने वाले तथा इरिणे=फैलाए हुए जूआ खेलने के तख्ते पर,

वर्वृतानाः=फैंके जाते हुए या खड़खड़ाते हुए या विद्यमान होते हुए, प्रावेपाः=जब हिलते हैं या बिखरते हैं, तब मा=मुझ को, मादयन्ति=मस्त कर देते हैं, और जागृविः=जय और पराजय में हर्ष और शोक के द्वारा जूए-बाजों को रात दिन जगाने वाला, विभीदकः=जूए का पासा, मौजवतस्य=मुजवान् नाम के पर्वत पर उत्पन्न हुए, सोमस्य=सोम लता के रस के, भक्षः इव=पान की तरह, मह्यम्=मुझे, अच्छान्= व्याप्त कर लेता है, अर्थात् आनन्दित बनाता है (जूए की खड़खड़ाहट को सुन कर मुझे उचित अनुचित कुछ नहीं सूझता)।

मैक्डानल ने 'अच्छान्' का अर्थ प्रसन्न करता है (has pleased me) किया है।

संहिता-पाठः

२. न मा॑ मिमेथ॒ न जि॑हीळ ए॒षा
शि॒वा सखि॑भ्य उ॒त मह्य॑मासीत् ।
अ॒क्षस्या॒हमे॑कप॒रस्य॑ हे॒तोर्
अनु॑व्रता॒मप॒ जा॒याम॑रोधम् ॥

पद-पाठः

न । मा॒ । मि॒मे॒थ॒ । न । जि॒हीळे॑ । ए॒षा ।
शि॒वा । सखि॑ऽभ्यः । उ॒त । मह्य॑म् । आ॒सी॒त् ।
अ॒क्षस्य॑ । अ॒हम् । ए॒क॒ऽप॒रस्य॑ । हे॒तोः ।
अनु॑ऽव्रताम् । अप॑ । जा॒याम् । अ॒रो॒ध॒म् ॥

२. संस्कृतव्याख्या :—एषा=मम जाया, मा=माम्, न मिमेथ= न चुक्रोध, न जिहीळे=न च लज्जितवती, सखिभ्यः=अस्मन्मित्रेभ्यः, शिवा=सुखकरी, आसीत्=अभूत्, उत=अपि च, मह्यम्, (शिवासीत्), इत्थम्, अनुव्रताम्=अनुकूलाम्, जायाम्, एकपरस्य=एकः परः प्रधानं यस्य, अक्षस्य, हेतोः=कारणात्, अहम्, अप अरोधम्=परित्यक्तवानस्मि ।

एषा=इस मेरी स्त्री ने, मा=मुझ को, न मिमेथ=कभी दुःख नहीं दिया या मुझ पर कभी क्रोध नहीं किया, न जिहीळे=न कभी अनादर किया या लजा देने वाला कोई काम किया, सखिभ्यः=मेरे मित्रों के लिए (अर्थात् जुआरियों के लिए), शिवा=सुखदेने वाली, आसीत्=रही। उत=और (मेरे लिये भी सुखदायक रही), इस प्रकार अनुव्रताम्=पतिव्रता, अनुगामिनी, अनुकूल, इस जायाम्=अपनी स्त्री को एकपरस्य=मुख्य एक पासे के लिए, अहम्=मैंने, अप अरोधम्=छोड़ दिया है, अर्थात् मुझ जुआरी ने अपनी प्रिय पत्नी को भी जूए में हरा दिया है।

संहिता-पाठः

३. द्वेष्टि श्वश्रूरप जाया रुणद्धि
न नाथितो विन्दते मर्डितारम्।
अश्वस्येव जरतो वस्न्यस्य
नाहं विन्दामि कितवस्य भोगम्॥

पद-पाठः

द्वेष्टि। श्वश्रूः। अप। जाया। रुणद्धि।
न। नाथितः। विन्दते। मर्डितारम्।
अश्वस्यऽइव। जरतः। वस्न्यस्य।
न। अहम्। विन्दामि। कितवस्य। भोगम्॥

३. संस्कृतव्याख्या:—श्वश्रूः=जायाया माता, द्वेष्टि=निन्दति (कितवम्), जाया=भार्या, अपरुणद्धि=निरुणद्धि, नाथितः=याचमानः (कितवः), मर्डितारम्=धनदानेन सुखयितारम्, न विन्दते=न लभते, (इति चिन्तयित्वा कितवः कथयति:—) अहम्, जरतः=वृद्धस्य, वस्न्यस्य=मूल्यार्हस्य, अश्वस्य इव, कितवस्य, भोगम्, न विन्दामि=न लभे।

जुआरी का कोई मित्र नहीं होता

श्वश्रूः=जुआरी की सास, अपनी कन्या के दुःखी रहने के कारण द्वेष्टि=अपने दामाद से द्वेष करती है, जाया=पत्नी भी, अपरुणद्धि=विरक्त हो जाती है। नाथितः=पैसा माँगने पर या दुःखी हुआ जुआरी मर्डितारम्=किसी को भी अपने लिए धन देकर सुखी करने वाला, न विन्दते=नहीं पाता, इस प्रकार बुद्धि से विचार करने पर, अहम्=मैं, वस्न्यस्य=बहुत मूल्य वाले, कीमती, जरतः=वृद्ध, अश्वस्य=घोड़े की, इव=तरह, कितवस्य=जुआरी होने का, भोगम्=सुख, न विन्दामि=नहीं पाता हूँ। जैसे कीमती घोड़ा बूढ़ा हो जाने पर बेकदरी का पात्र हो जाता है वैसे ही मैं (जुआरी) भी सुखी नहीं हूँ, सब मेरा अनादर करते है।

मैक्डानल ने 'अपरुणद्धि' का अर्थ भगा देती है (drives away) किया है, तथा 'वस्न्यस्य' बेचने के लिये ले जाया गया (is for sale) अर्थ किया है। जैसे बुड्ढे घोड़े को थोड़ी कीमत में बेच देते हैं और उसकी कदर नहीं होता वैसे ही जुआरी की भी कदर नहीं होती।

संहिता-पाठः

४. अन्ये जायां परि मृशन्त्यस्य
यस्यागृधद्वेदने वाज्य१क्षः।
पिता माता भ्रातर एनमाहुर्
न जानीमो नयता बद्धमेतम् ॥

पद-पाठः

अन्ये। जायाम्। परि। मृशन्ति। अस्य।
यस्य। अगृधत्। वेदने। वाजी। अक्षः।

पिता । माता । भ्रातरः । एनम् । आहुः ।
न । जानीमः । नयत । बद्धम् । एतम् ।

४. संस्कृतव्याख्याः—यस्य=कितवस्य, वेदने=धने, वाजी=बलवान्, अक्षः=देव., अगृधत् =अभिकांक्षां करोति, अस्य=तस्कितवस्य, जायाम् = भार्याम्, अन्ये=प्रतिकितवाः, परिमृशन्ति=वस्त्रकेशाद्याकर्षणेन संस्पृशन्ति, किं च, पिता, माता, भ्रातरः एनं=कितवम्, आहुः=वदन्ति, न जानीमः= न वयमेनं जानीमः, बद्धम् =रज्वा संयतम्, एतम् =एनम्, नयत=एनं यथेष्टं प्रदेशं प्रापय।

जूए का दुष्परिणाम

यस्य=जिस पुरुष के, वेदने=धन पर, वाजी=बलवान्, अक्षः= जूए का पासा, अगृधत्=ललचाता है, अर्थात् जो अपनी सम्पत्ति को जूए में लगाता है, अस्य=उस पुरुष की, जायाम्=पत्नी को, अन्ये= दूसरे जुआरी, परिमृशन्ति=स्त्री के जूए में हार जाने पर उसके वस्त्र केशादि को खींचते हैं और बेइज्जती करते हैं। तथा जब उस जुआरी को राजकर्मचारी पकड़ते हैं तब, पिता=जुआरी का पिता, माता=माता, भ्रातरः=भाई, बन्धु, एनम् =इस जुआरी के बारे में, आहुः=कह देते हैं कि, न जानीमः=हम इसे नहीं जानते, एनम्=इस, बद्धम्= बेड़ी से बंधे हुए को, नयत=जल्दी कोतवाली ले जाओ।

मैकडानल ने 'वाजी' का अर्थ जयशील (victorious) किया है।

संहिता-पाठः

५. यदादीध्ये न दविषाण्येभिः
परायद्भ्योऽव हीये सखिभ्यः।
न्युप्ताश्च बभ्रवो वाचमक्रतँ
एमीदेषां निष्कृतं जारिणीव॥

पद-पाठः

यत् । आऽदीध्ये । न । दविषाणि । एभिः ।
पराऽयत्ऽभ्यः । अव । हीये । सखिऽभ्यः ।
निऽउप्ताः । च । बभ्रवः । वाचम् । अक्रत ।
एमि । इत् । एषाम् । निःऽकृतम् । जारिणीऽइव ॥

५. संस्कृतव्याख्या :—यत् =यदा, (अहम्) आदीध्ये=ध्यायामि, (तदा) एभिः=अक्षैः, न दविषाणि=न दूषये, न परितपामि, अथवा—न देविषामीत्यर्थः, परायद्भ्यः=स्वयमेव परागच्छद्भ्यः, सखिभ्यः, अव हीये= अवहितो भवामि, किं च, बभ्रवः=बभ्रुवर्णाः, न्युप्ताः= कितवैराक्षिप्ताः (अक्षाः), वाचम् =शब्दम् , अक्रत=कुर्वन्ति, (तदा) एषाम् =अक्षाणाम् , निष्कृतम् =स्थानम् , जारिणीव=स्वैरिणीव, एमीत् =गच्छाम्येव, अक्षव्यसने-नाभिभूतः भवामि ।

जुआरी की विवशता

यत्=जब, आदीध्ये=मैं विचार करता हूँ, कि एभिः=इन जूए के पासों से, न दविषाणि=न खेलूँ, और ऐसा निश्चय कर के परायद्भ्यः=जूआ खेलने के स्थान (नाल) की तरफ जाते हुए, सखिभ्यः=जुआरी मित्रों से, अव हीये=छिप जाता हूँ या निश्चय कर लेता हूँ कि मैं जूआ नहीं खेलूंगा। परन्तु जब बभ्रवः=भूरे रंग वाले पासे, न्युप्ताः =फैंके जाते हैं, च=और, वे वाचम्=आवाज को, अक्रत=करते हैं। तब जारिणी इव=व्यभिचारिणी स्त्री की तरह, मैं भी एषाम्=इन पासों के, निष्कृतम्=सजे हुए खेलने के स्थान को, एमि-इत्=पहुँच ही जाता हूँ, रुक नहीं सकता ।

मैक्डानल ने 'इत्' का अर्थ सीधा-एकदम (straight) किया है ।

संहिता-पाठः

६. सभामेति कितवः पृच्छमानो
जेष्यामीति तन्वा३ शूशुजानः ।
अक्षासो अस्य वि तिरन्ति कामं
प्रतिदीव्ने दधत आ कृतानि ॥

पद-पाठः

सभाम् । एति । कितवः । पृच्छमानः ।
जेष्यामि । इति । तन्वा । शूशुजानः ।
अक्षासः । अस्य । वि । तिरन्ति । कामम् ।
प्रतिऽदीव्ने । दधतः । आ । कृतानि ॥

६. संस्कृतव्याख्या :—तन्वा=शरीरेण, शूशुजानः=दीप्यमानः, कितवः, जेष्यामि इति=विजयं करिष्यामि (इति गर्वयुक्तः), पृच्छमानः= अन्वेषयन्, सभाम्, एति, (तत्र) प्रतिदीव्ने=प्रतिदेवित्रे, कितवाय, कृतानि= देवनोपयुक्तकर्माणि, आदधतः=जायार्थम् मर्यादया दधतः, अस्य=कितवस्य, कामम् =इच्छाम्, अक्षासः=अक्षाः, वि तिरन्ति=वर्धयन्ति ।

तन्वा=शरीर से, शूशुजानः=चमकता हुआ, छैला बना हुआ, कितवः=जुआरी, जेष्यामि=सब को जीत लूंगा, आज मेरे साथ कौन जूआ खेलेगा इति=इस प्रकार, पृच्छमानः=पूछता हुआ, सभाम्= जूए खेलने के स्थान पर, एति=पहुँचता है, उस समय प्रतिदीव्ने= दूसरे जुआरी के साथ, कृतानि आदधतः=दाँव लगाते-लगाते, अस्य= इस जुआरी की, कामम्=इच्छा को, अक्षासः=पासे, वितिरन्ति= और भी बढ़ाते हैं, इस प्रकार मनुष्य जूए के व्यसन में फँस जाता है ।

मैक्डानल ने 'तन्वा शूशुजानः'=शरीर से काँपता हुआ

(trembling with his body) अर्थ किया है, 'कामम् वितिरन्ति'=पासे दाँव पर खेलने वाले की इच्छानुसार पड़ते हैं (the dice run counter to his desire) अर्थ किया है और 'कृतानि' का अर्थ जिताने वाले पासे का पड़ना (lucky throws) किया है।

संहिता-पाठः

७. अक्षास इदंङ्कुशिनों नितोदिनों
निकृत्वानस्तपनास्तापयिष्णवः ।
कुमारदेष्णा जयतः पुनर्हणो
मध्वा संपृक्ताः कितवस्य बर्हणा ॥

पद-पाठः

अक्षासः । इव । अङ्कुशिनः । निऽतोदिनः ।
निऽकृत्वानः । तपनाः । तापयिष्णवः ।
कुमारऽदेष्णाः । जयतः । पुनःऽहनः ।
मध्वा । सम्ऽपृक्ताः । कितवस्य । बर्हणा ॥

७. संस्कृतव्याख्या :—अक्षास इव=अक्षाः एव, अङ्कुशिनः=अंकुशवन्तः, नितोदिनः=नितोदितवन्तः, निकृत्वानः=पराजये निकर्तनशीलाः, तपनाः=संतापकाः, तापयिष्णवः=कुटुम्बस्य संतापनशीलाश्च, (भवन्ति), जयतः, कितवस्य, कुमारदेष्णाः=धनदानेन कुमाराणां दातारः, (अपि च) मध्वा=मधुना, संपृक्ताः, बर्हणा=सर्वस्वहरणेन, (कितवस्य) पुनर्हणः=पुनर्हन्तारो भवन्ति।

अक्षासः=जूए के पासे, इति=निश्चय रूप से ही, अङ्कुशिनः=हाथी के ऊपर अंकुश की तरह जुआरी के ऊपर शासन करते हैं, तथा नितोदिनः=जिस तरह घोड़े या बैल आदि को चाबुक (पड़ने पर)

चलाती है वैसे ही जुआरी को पासे चलाते हैं। ये पासे निकृत्वानः=जुआरी को जड़मूल से बरबाद करने वाले हैं, तपनाः= सन्ताप देने वाले हैं, तापयिष्णवः=जुआरी के कुटुम्ब को भी दुःख देने वाले हैं, जयतः कितवस्य=जीतने वाले जुआरी के भी (तपनाः) कष्ट देने वाले हैं। क्योंकि ये पासे जिस को कुमारदेष्णाः=धनादि देते हुए पुत्र होने की खुशी जैसा सुख देते हैं, और मध्वा संपृक्ताः=मधु से संयुक्त अमृत के तुल्य प्रतीत होते हैं, उस जुआरी का भी ये पासे बर्हणा=सर्वस्व हरण कर के भी, पुनः हनः=फिर कभी नाश कर देने वाले होगे।

मैक्डानल ने 'अंकुशिनः' का शाब्दिक अर्थ (literel meaning) लेते हुए अंकुश वाला (hooked) आदि अर्थ किया है।

संहिता-पाठः

८. त्रिपञ्चाशः क्रीळति व्रात एषां
देव इव सविता सत्यधर्मा।
उग्रस्य चिन्मन्यवे ना नमन्ते
राजा चिदेभ्यो नम इत्कृणोति॥

पद-पाठः

त्रिऽपञ्चाशः। क्रीळति। व्रातः। एषाम्।
देवःऽइव। सविता। सत्यऽधर्मा।
उग्रस्य। चित्। मन्यवे। न। नमन्ते।
राजा। चित्। एभ्यः। नमः। इत्। कृणोति॥

८, संस्कृतव्याख्याः—एषाम्=अक्षाणाम्, त्रिपञ्चाशः, व्रातः= संघः, क्रीळति=आस्फारे विहरति, सत्यधर्मा, सविता=सर्वस्य जगतः प्रेरकः सूर्यः, देव इव, (तद्वत्), (किं च) उग्रस्य चित्=क्रूरस्यापि, मन्यवे=

क्रोधाय, (एते अक्षाः) न नमन्ते=न प्रह्वीभवन्ति, (न वशे वर्तन्त इत्यर्थः), राजा चित्=ईश्वरोऽपि, एभ्यः, नम इत् =नमस्कारमेव, कृणोति=करोति।

सत्यधर्माः=नियम पर चलने वाले, सविता देवः=सूर्य देव के समान, एषाम् =इन पासो का, त्रिपंचाशः=५३ संख्या वालो का, व्रातः=समुदाय, क्रीडति=जूए के तख्ते पर खेला जाता है। ये पासे उग्रस्य चित् मन्यवे=भयंकर से भयंकर पुरुष के क्रोध के आगे, न नमन्ते=नहीं झुकते, अर्थात् क्रोधी को भी अपने वश मे कर लेते हैं। राजा चित् =राजा भी, एभ्यः=इन पासो के लिए, नमः इत्= नमस्कार ही, कृणोति=करता है। अर्थात् राजा भी इनके फंदे में पड़ जाता है, अतः राजा को भी इन्हे दूर से ही नमस्कार करना चाहिए।

संहिता-पाठः

९. नीचा वर्तन्त उपरि स्फुरन्त्य्
अहस्तासो हस्तवन्तं सहन्ते।
दिव्या अङ्गारा इरिणे न्युप्ताः
शीताः सन्तो हृदयं निर्दहन्ति॥

पद-पाठः

नीचाः। वर्तन्ते। उपरि। स्फुरन्ति।
अहस्तासः। हस्तऽवन्तम्। सहन्ते।
दिव्याः। अङ्गाराः। इरिणे। निऽउप्ताः।
शीताः। सन्तः। हृदयम्। निः। दहन्ति॥

९, संस्कृतव्याख्या:—नीचाः=नीचीनस्थले, वर्तन्ते, (तथापि) उपरि=पराजयाद् भीतानां हृदयस्योपरि, स्फुरन्ति, अहस्तासः=हस्तरहिताः, हस्तवन्तम्, सहन्ते=पराजयकरणेनाभिभवन्ति, दिव्याः=दिवि भवाः, अङ्गाराः= अङ्गारसदृशाः अक्षाः, इरिणे=इन्धनरहिते आस्फारे, न्युप्ताः, शीताः=

शीतस्पर्शाः, सन्तः, हृदयं, निर्दहन्ति=पराजयजनितसन्तापेन भस्मीकुर्वन्ति ।

ये जूए के पासे नीचा वर्तन्ते=नीचे तख्ते पर डाले जाते हैं, परन्तु उपरि स्फुरन्ति=जुआरिओ के ऊपर प्रभाव रखते हैं, अहस्तासः=इन पासो के हाथ नहीं होते, परन्तु हस्तवन्तम्=हाथ वाले जुआरी को, सहन्ते=दबा लेते हैं, इरिणे=जूए के तख्ते पर, नि-उप्ताः=फैंके गये ये पासे, दिव्याः=अनोखे, अङ्गाराः=अगारे हैं, जो शीताः=ठण्डे, सन्तः=होते हुए, भी हृदयम्=हृदय को, निर्दहन्ति=जलाते हैं ।

संहिता-पाठः

१०. जाया तप्यते कितवस्य हीना
माता पुत्रस्य चरतः क्व स्वित् ।
ऋणावा बिभ्यद्धनमिच्छमानो
ऽन्येषामस्तमुप नक्तमेति ॥

पद-पाठः

जाया । तप्यते । कितवस्य । हीना ।
माता । पुत्रस्य । चरतः । क्व । स्वित् ।
ऋणऽवा । बिभ्यत् । धनम् । इच्छमानः ।
अन्येषाम् । अस्तम् । उप । नक्तम् । एति ॥

१०. संस्कृतव्याख्या :—क्व स्वित् = क्वापि, चरतः=निर्वेदाद् गच्छतः कितवस्य, जाया, हीना=परित्यक्ता सती, तप्यते=वियोगतप्ता भवति, माता (जनन्यपि), पुत्रस्य (क्वापि चरतः) (पुत्रशोकसंतप्ता भवतीत्यर्थः), ऋणावा=ऋणवान् कितवः, बिभ्यद्धनम् =स्तेनजनितम् धनम्, इच्छमानः= कामयमानः, अन्येषाम् =ब्राह्मणादीनाम्, अस्तम् =गृहम्, नक्तम्, उप एति=चौर्यार्थमुपगच्छति ।

जब जुआरी सब कुछ हार कर घर छोड़ कर भाग जाता है तब

कितवस्य=जुआरी की, हीना=बिछुड़ी हुई, जाया=स्त्री, तप्यते=भोजनादि न मिलने से दुःखी होती है। क स्वित्=इधर उधर कहीं भी लापता, चरतः=भटकते हुए, पुत्रस्य=जुआरी बेटे की, माता=माता भी तड़पती है, ऋणवा=कर्जदार होकर जुआरी, बिभ्यत् =कर्ज वाले से डरता हुआ, भागा फिरता है। तथा धनम्,इच्छमानः=धन को चाहता हुआ, अन्येषा=दूसरों के, अस्तम्=घरों पर, नक्तम्=रात में, उपैति=चोरी के लिए सैंध, या नकब लगाने के लिए पहुँचता है।

संहिता-पाठः

११. स्त्रियं दृष्ट्वाय कितवं तताप-
न्येषां जायां सुकृतं च योनिम्।
पूर्वाह्णे अश्वान् युयुजे हि बभ्रून्
सो अग्नेरन्ते वृषलः पपाद ॥

पद-पाठः

स्त्रियम् । दृष्ट्वाय । कितवम् । तताप ।
अन्येषाम् । जायाम् । सुऽकृतम् । च । योनिम् ।
पूर्वाह्णे । अश्वान् । युयुजे । हि । बभ्रून् ।
सः । अग्नेः । अन्ते । वृषलः । पपाद ॥

११. संस्कृतव्याख्या :—कितवम् =कितवः, अन्येषाम् , जायाम् = धर्मपत्नीभूताम् , स्त्रियम् =नारीम् , सुकृतम् =सुष्ठु कृतम् (कर्म), योनिम्= गृहम् च, दृष्ट्वाय=ज्ञात्वा, तताप=तप्यते, पूर्वाह्णे=प्रातः, बभ्रून् = बभ्रुवर्णान्, अश्वान् =व्यापकानक्षान्, युयुजे=युनक्ति, (पुनः) वृषलः= वृषलकर्मा, सः=कितवः, अग्नेः, अन्ते=समीपे, पपाद=शीतार्तः सन् शेते।

कितवम् =यह जुआरी, अन्येषाम=औरों की, जायाम् स्त्रियम् = धर्मपत्नी को, सुकृतम् योनिम्=सुन्दर महलों को, दृष्ट्वाय=देख कर,

तताप=दुःखी होता है, या स्त्री आदि का देखना जुआरी को दुःख देता है कि हाय ! मैंने सब कुछ खो दिया, पर फिर भी हि=क्योंकि, वह पूर्वाह्णे=प्रातःकाल, फिर बभ्रून् =भूरे रंग वाले, अश्वान् =पासों को, युयुजे=दाँव पर फेंकता है, अतः=निर्धन बना हुआ, वृषलः=नीच, सः=वह जुआरी, वस्त्र न होने के कारण जाड़े की रात्रि मे काँपता हुआ अग्नेः=अग्नि के, अन्ते=समीप में, पपाद=पड़ा रहता है और इस प्रकार रात्रि को व्यतीत करता है।

मैक्डानल ने शब्दार्थ (literal meaning) लेते हुए 'अश्वान्' का अर्थ घोड़े (horses) किया है और 'वृषलः' का अर्थ मंगता (beggar) किया है।

संहिता-पाठः

१२. यो वः सेनानीर्महतो गणस्य
राजा व्रातस्य प्रथमो बभूव।
तस्मै कृणोमि न धना रुणध्मि
दशाहं प्राचीस्तदृतं वदामि॥

पद-पाठः

यः। वः। सेनाऽनीः। महतः। गणस्य।
राजा। व्रातस्य। प्रथमः। बभूव।
तस्मै। कृणोमि। न। धना। रुणध्मि।
दश। अहम्। प्राचीः। तत्। ऋतम्। वदामि॥

१२. संस्कृतव्याख्या :—हे अक्षाः, वः=युष्माकम्, महतः, गणस्य=संघस्य, यः=अक्षः, सेनानीः=नेता, बभूव=भवति, व्रातस्य च, राजा=ईश्वरः, प्रथमः=मुख्यो बभूव, तस्मै=अक्षाय, कृणोमि=अहमञ्जलिं करोमि, (अतः परम्) धनाः=धनानि, न रुणध्मि=न संपादयामि (अक्षार्थम्),

अहम् , दश=दशसंख्याकाः (अङ्गुलीः), प्राचीः=प्राङ्मुखीः करोमि, तत् = एतत् (अहम्), ऋतम् =सत्यम् , वदामि ।

हे मेरे दुष्कर्मो ! वः=तुम्हारे, महतः=बडे भारी, गणस्य=५३ संख्या वाले समुदाय का, यः=जो पासा, सेनानीः=नायक है, अर्थात् मुख्य पासा है, तथा व्रातस्य=तुम्हारे (पासों) के समूह में, प्रथमः=मुख्य या राजा, बभूव=है, तस्मै=उस पासे के लिए, अहम्=मैं, दश=दशों अंगुलियाँ, प्राचीः=पूर्व की ओर, करोमि=करता हूँ, अर्थात् दोनो हाथों से प्रणाम करता हूँ जिससे ये पासे मुझ से दूर ही रहें। इन पासों द्वारा, धना=धनो को, न रुणध्मि=नहीं चाहता हूँ, तत्=यह, ऋतम् वदामि=मैं सत्य ही कहता हूँ ।

मैक्डानल ने 'राजा' शब्द को उपमा के लिए माना है और राजा की तरह (as king) अर्थ किया है। 'रुणध्मि' का अर्थ रोकना (with hold) किया है ।

संहिता-पाठः

१३. अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व
वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः ।
तत्र गावः कितव तत्र जाया
तन्मे वि चष्टे सवितायमर्यः ॥

पद-पाठः

अक्षैः । मा । दीव्यः । कृषिम् । इत् । कृषस्व ।
वित्ते । रमस्व । बहु । मन्यमानः ।
तत्र । गावः । कितव । तत्र । जाया । तत् ।
मे । वि । चष्टे । सविता । अयम् । अर्यः ॥

१३. संस्कृतव्याख्या :—हे कितव ! बहु, मन्यमानः=मद्वचने

विश्वासं कुर्वन् त्वम् , अक्षैर्मा दीव्यः=द्यूतं मा कुरु, कृषिमित्=कृषिमेव, कृषस्व=कुरु, वित्ते=कृष्या संपादिते धने, रमस्व=रतिं कुरु, तत्र=कृषौ, गावः, (भवन्ति), तत्र जाया (भवति), तत्=तत एव, सविता=सर्वस्य प्रेरकः, अयम्, दृष्टिगोचरः, अर्यः—ईश्वरः, विचष्टे=विविधमाख्यातवान् ।

अक्षैः=पासो से, मा दीव्यः=मत खेलो, कृषिम् इत् कृषस्व=खेती ही करो, वित्ते=खेती के द्वारा प्राप्त हुए धन में, रमस्व=सुखी रहो, बहुमन्यमानः=उसी धन को बहुत मानते रहो, हे कितव=हे जुआरी, तत्र=उसी धन मे, गावः=गौएँ, तत्र=उसी मे, जाया=पत्नी है, अर्थात् गोदुग्धादि भोज्यपदार्थ और दाम्पत्यसुख सब कुछ खेती से प्राप्त हुए धन में ही मिलेगा, सविता=संसार को उत्पन्न करने वाला, अर्यः=स्वामी, ईश्वर या न्यायकारी, अयम्=यह भगवान्, तत्=इस आदेश को, मे=मेरे लिए, विचष्टे=दे रहा है ।

संहिता-पाठः

१४. मित्रं कृणुध्वं खलु मृळता नो
मा नो घोरेण चरताभि धृष्णु ।
नि वो नु मन्युर्विशतामरातिर्
अन्यो बभ्रूणां प्रसितौ न्वस्तु ॥

पद-पाठः

मित्रम् । कृणुध्वम् । खलु । मृळत । नः ।
मा । नः । घोरेण । चरत । अभि । धृष्णु ।
नि । वः । नु । मन्युः । विशताम् । अरातिः ।
अन्यः । बभ्रूणाम् । प्रऽसितौ । नु । अस्तु ॥

१४. संस्कृतव्याख्या :—हे अक्षाः, यूयम्, मित्रम् कृणुध्वम्=अस्मासु मैत्रीम् कुरुत, खलु, नः=अस्मान्, मृळत=सुखयत च, नः=

अस्मान् , धृष्णु=धृष्णुना, घोरेण=असह्येन, मा अभि चरत=मा गच्छत, वः=युष्माकम् , मन्युः=क्रोधः, अरातिः=अस्माकं शत्रुः, निविशताम् = अस्मच्छत्रुषु तिष्ठतु, अन्यः=कश्चित् शत्रुः, बभ्रूणाम् (युष्माकम्), प्रसितौ= प्रबन्धने, नु=क्षिप्रम् , अस्तु=भवतु ।

हे पासो ! तुम मित्रम् कृणुध्वम् =मेरे साथ मैत्री करो, मुझ से द्वेष मत करो, मैं बहुत बरबाद हो लिया, खलु=निश्चय करके, नः= मुझे, मृळत=सुखी करो, धृष्णु=दबाने वाले, घोरेण=भयंकर (असह्य) अपने स्वभाव से, नः=मेरे ऊपर, मा अभिचरत=मत प्रभाव जमाओ, मेरा पीछा छोड़ दो । हे पासो ! वः=तुम्हारा, मन्युः=क्रोध, अरातिः= हमारा नाशक है, जो कि नु=शीघ्र ही, निविशताम्=हमारे शत्रुओं पर पड़े, बभ्रूणाम्=भूरे रंग वाले तुम पासों के, प्रसितौ=जाल में या बन्धन में, अन्यः=कोई हमारा शत्रु ही, नु=शीघ्र, अस्तु=फँसे ।

मैक्डानल ने 'मृळत' का अर्थ दयालु बनो (be gracious) किया है । 'अभिचरत' का=जबरदस्ती अपनी ओर जादू के समान आकृष्ट मत करो (do not forcibly bewitch) 'निविशताम् ' का=शान्त हो जाओ (come to the rest) किया है ।

(१०-९०) पुरुषसूक्त (विराट् पुरुष)

संहिता-पाठः

१. सहस्रशीर्षा पुरुषः
सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वा-
त्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥

पद-पाठः

सहस्रऽशीर्षा । पुरुषः ।
सहस्रऽअक्षः । सहस्रऽपात् ।
सः । भूमिम् । विश्वतः । वृत्वा ।
अति । अतिष्ठत् । दशऽअङ्गुलम् ॥

१. संस्कृतव्याख्या :—सर्वप्राणिसमष्टिरूपो विराडाख्यो यः, पुरुषः, सहस्रशीर्षा=अनन्तशिरोभिर्युक्तः (उपलक्षणत्वात्), एवम्, सहस्राक्षः, सहस्रपात्, सः=पुरुषः, भूमिम्=ब्रह्माण्डम्, विश्वतः=सर्वतः, वृत्वा=परिवेष्ट्य, दशाङ्गुलम्=दशाङ्गुलपरिमितदेशम्, अत्यतिष्ठत्=अतिक्रम्य स्थितः, दशाङ्गुलमप्युपलक्षणम् ।

परिचयः—इस सूक्त का नारायण नाम का ऋषि है । अन्तिम छन्द त्रिष्टुप् है, शेष अनुष्टुभ् हैं । पुरुष देवता है ।

विराट् नाम का पुरुषः=पुरुष है, वह सहस्रशीर्षा=अनन्त सिरों वाला है, अर्थात् सब प्राणियों मे व्यापक होने से प्राणियो के सिर ही उसके सिर हैं, सहस्राक्षः=इसी तरह वह अनन्त आँखो वाला, सहस्रपात्=हजारो पैरो वाला है, और सः=वह पुरुष, भूमिम्=ब्रह्माण्ड को, विश्वतः=सब तरफ से, वृत्वा=घेर कर, दशागुलम्=केवल अगुली परिमित स्थान को, अति अतिष्ठत्=ब्रह्माड से बाहर व्याप्त कर के स्थित है, अर्थात् वह परम पुरुष इस ब्रह्मांड के अन्दर और बाहर व्याप्त है ।

संहिता-पाठः

२. पुरुष एवेदं सर्वं
यद्भूतं यच्च भव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो
यदन्नेनातिरोहति ॥

पद-पाठः

पुरुषः । एव । इदम् । सर्वम् ।
यत् । भूतम् । यत् । च । भव्यम् ।
उत । अमृतऽत्वस्य । ईशानः ।
यत् । अन्नेन । अतिऽरोहति ॥

२. संस्कृतव्याख्या :—इदम् =वर्तमानम् जगत् , सर्वं पुरुष एव, यत् भूतम् =अतीतम् यच्च, भव्यम् =भविष्यज्जगत् , तदपि पुरुष एवेत्यर्थः । उत=अपि च, अमृतत्वस्य=देवत्वस्य, अयम् ईशानः=स्वामी, यत् =यस्मात् कारणात्, अन्नेन=प्राणिनां भोग्येनान्नेन, अतिरोहति=कारणावस्था-मतिक्रम्य जगदवस्थां प्राप्नोति ।

यत् =जो, इदम् =यह दृश्यमान जगत् है, वह सर्वम् =सब कुछ, पुरुष एव=पुरुष ही है । अर्थात् ईश्वर चित् और अचित् मे व्यापक है । यच्च=और जो, भूतम्=अतीत जगत् है, और जो भव्यम्= भविष्यत् संसार है, वह भी पुरुष ही है, अर्थात् जिस प्रकार वर्तमान सृष्टि मे रहने वाले प्राणी उस विराट् पुरुष के अंश हैं वैसे ही भूत और भविष्य सृष्टि में भी थे । उत्=और, अमृतत्वस्य=देवताओं का (यह विराट्), ईशानः=स्वामी है, यत्=जिस कारण से, अन्नेन= प्राणियों के भोग के कारण, अतिरोहति=इस दृश्यमान जगत् रूप अवस्था को (कारणावस्था को छोड़कर) वह विराट् पुरुष प्राप्त होता है ।

संहिता-पाठः

३. एतावानस्य महिमा-
तो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि
त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥

पद-पाठः

एतावान् । अस्य । महिमा ।
अतः । ज्यायान् । च । पुरुषः ।
पादः । अस्य । विश्वा । भूतानि ।
त्रिऽपात् । अस्य । अमृतम् । दिवि ॥

३. संस्कृतव्याख्या :—एतावान् =सर्वोऽपि, अस्य=पुरुषस्य, महिमा= सामर्थ्यविशेषः (अस्ति), वास्तवस्तु पुरुषः, अतोऽपि ज्यायान् =अतिशयेनाधिकः, अस्य=पुरुषस्य, विश्वा=सर्वाणि, भूतानि=प्राणिजातानि, पादः= चतुर्थोऽशः, अस्य=पुरुषस्य, त्रिपात् =शिष्टं त्रिपदम् , अमृतम् =अविनाशि सत्, दिवि=द्योतनात्मके प्रकाशस्वरूपे व्यवतिष्ठते ।

भूत, भविष्यत्, वर्तमान रूप मे जितना भी जगत् है वह सारा ही एतावान्=इतना बड़ा, अस्य=इस विराट् पुरुष की, महिमा=महिमा सामर्थ्य विशेष ही है (विराट् का यह संसार वास्तविक रूप नहीं। वास्तविक रूप वाला), च=और, पुरुषः=विराट् पुरुष तो, अतः=इस सामर्थ्य से भी, ज्यायान्=अत्यधिक है, इस की ही सिद्धि करते हैं कि विश्वा=सारे, भूतानि=प्राणी, अस्य=इस पुरुष के, पादः=चौथे अंश (हिस्से) के रूप मे हैं। अस्य=इस पुरुष का, त्रिपात्=शेष तीन हिस्से, अमृतम्=विनाश रहित होते हुए, दिवि=स्वप्रकाशस्वरूप रूप में स्थित हैं (यद्यपि परमात्मा का परिणाम नही जाना जा सकता और उसके चार पैरो की कल्पना नहीं की जा सकती, पर यह जगत् परमात्मा की अपेक्षा बहुत छोटा है यह दिखाने के लिए यह कल्पना की गई है)।

संहिता-पाठः

४. त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः
पादोऽस्येहाभवत् पुनः ।

ततो विष्वङ् व्यक्रामत्
साशनानशने अभि ॥

पद-पाठः

त्रिऽपात् । ऊर्ध्वः । उत् । ऐत् । पुरुषः ।
पादः । अस्य । इह । अभवत् । पुनरिति ।
ततः । विष्वङ् । वि । अक्रामत् ।
साशनानशने इति । अभि ॥

४. संस्कृतव्याख्या :—त्रिपात् पुरुषः, ऊर्ध्वमुदैत् =अज्ञानरूपात् संसाराद् बहिर्भूतः स्थितवान् , अस्य पादः=लेशः, इह=मायायाम् , पुनः अभवत् =पुनः पुनरागच्छति, ततः=मायामागमनानन्तरम् , विष्वङ् =विविधरूपयुक्तः सन् , व्यक्रामत् =व्याप्तवान् , किं कृत्वेत्याह :—साशनानशने= चेतनाचेतने (अशनानशनादिसम्बन्धेन)=अभिलक्ष्येत्यर्थः ।

यह त्रिपात्=संसार रहित तीन पैरो वाला, पुरुषः=विराट् स्वरूप परमात्मा, ऊर्ध्वः=इस अज्ञान के कार्य संसार से परे है, अर्थात् संसार के गुण दोषो से नहीं छूआ जाता, अस्य=इस परमात्मा का, पादः=एक अंश, इह=इस संसार में, पुनः अभवत्=सृष्टि और प्रलय के द्वारा बराबर आता जाता है। ततः=संसार रूप में उत्पन्न होने के बाद, विष्वङ्=व्यापक, देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि के रूप मे विविध प्रकार से बना हुआ वह विराट्, साशनाशने=साशन=खाने वाले चेतन प्राणी, अनशन=न खाने वाले चेतनता से रहित पहाड़, नदी आदि दोनो प्रकार के जगत् को, अभि=लक्षित कर के, व्यक्रामत्=व्याप्त करके स्थित है।

मैक्डानल ने 'ऊर्ध्वः' ऊपर का (upward) अर्थ किया है।

संहिता-पाठः

५. तस्मा॑द्वि॒राळ॑जायत
वि॒राजो॒ अधि॒ पूरु॑षः ।
स जा॒तो अत्य॑रिच्यत
प॒श्चाद्भूमि॒मथो॑ पु॒रः ॥

पद-पाठः

तस्मा॑त् । वि॒राट् । अ॒जा॒य॒त ।
वि॒ऽराजः॑ । अधि॑ । पुरु॑षः ।
सः । जा॒तः । अति॑ । अ॒रि॒च्य॒त ।
प॒श्चात् । भूमि॑म् । अथो॒ इति॑ । पु॒रः ॥

५. संस्कृतव्याख्या :—तस्मात् = आदिपुरुषात्, विराट् = ब्रह्माण्ड-देहः, अजायत = उत्पन्नः, विराजोऽधि = विराड्देहस्योपरि, पुरुषः = तद्देहाभिमानी पुमान्, जीवः (अजायत), सः, जातः = विराट् पुरुषः, अत्यरिच्यत = अतिरिक्तोऽभूत् (देवतिर्यगादिरूपोऽभूत्), पश्चात् = देवादिजीवभावादूर्ध्वम्, भूमिम्, (ससर्जेति) अथो = भूमिसृष्टेरनन्तरम्, पुरः = शरीराणि (ससर्ज)।

तस्मात् = उस आदि पुरुष से, विराट् = हिरण्यगर्भ, अजायत = उत्पन्न हुआ, विराजः = उस विराट् के देह के (ऊपर), अधि = विराट् के देह को आधार बना कर, पुरुषः = समष्टि-देहाभिमानी हिरण्यगर्भ (अजायत = उत्पन्न हुआ), सः = वह, जातः = उत्पन्न हुआ विराट् पुरुष, अत्यरिच्यत = पशु पक्षी आदि शरीरो से बढ़ कर विद्यमान रहा, पश्चात् = इस प्रकार पशु पक्षी आदि के रूप में बनने के बाद, उस विराट् ने, भूमिम् = इस पृथिवीलोक को बनाया (यह क्रिया ऊपर से अध्याहृत की जाती है), अथो = भूमि की रचना के बाद, उन प्राणियो के पुरः = शरीरों को (क्योकि सात धातुओ से पूर्ण किये जाते हैं इस लिए शरीर पुर कहलाते हैं) बनाया।

मैक्डानल ने 'अत्यरिच्यत' का वह पुरुष बढ़ कर रहा (reached beyond), 'भूमिम्' का पृथिवी के बाद मे (the earth behind) तथा 'पुरः' का आगे (before) अर्थ किया है ।

संहिता-पाठः

६. यत्पुरुषेण हविषा
देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं
ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥

पद-पाठः

यत् । पुरुषेण । हविषा ।
देवाः । यज्ञम् । अतन्वत ।
वसन्तः । अस्य । आसीत् । आज्यम् ।
ग्रीष्मः । इध्मः । शरत् । हविः ॥

६, संस्कृतव्याख्या :—यत् =यदा, देवाः, (पुरुषस्वरूपमेव मनसा संकल्प्य) पुरुषेण=पुरुषाख्येन, हविषा, यज्ञम् =मानसयज्ञम् , अतन्वत= अन्वतिष्ठन् , (तदानीम्) अस्य=यज्ञस्य, वसन्तः, एव, आज्यम् आसीत् । (एवं) ग्रीष्मः, इध्मः=इन्धनम् , (आसीत्), तथा शरद्धविः (आसीत्) ।

यत्=जब उत्क्रम से शरीर उत्पन्न हो चुके, तब देवाः=देवगणों ने, आगे की सृष्टि बनाने के लिए पुरुषेण=अपने पुरुष स्वरूप, हविषा=हवि से, यज्ञम्=मानसिक यज्ञ को, अतन्वत=किया, अर्थात् देवताओ ने अपने संकल्प से आगे की सृष्टि बनाई, और तब अस्य=इस यज्ञ का, वसन्तः=वसन्त ऋतु, आज्यम्=घी के समान बना ग्रीष्मः=ग्रीष्म ऋतु, इध्मः=इन्धन बना, तथा शरत्=शरद् ऋतु, हविः=हवि के समान, आसीत्=बना, अर्थात् इन तीन मुख्य ऋतुओ को संकल्प से उत्पन्न किया ।

संहिता-पाठः

७. तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्
पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवा अयजन्त
साध्या ऋषयश्च ये ॥

पद-पाठः

तम् । यज्ञम् । बर्हिषि । प्र । औक्षन् ।
पुरुषम् । जातम् । अग्रतः ।
तेन । देवाः । अयजन्त ।
साध्याः । ऋषयः । च । ये ॥

७. संस्कृतव्याख्या :— यज्ञम् =यज्ञसाधनम् , तम् =पुरुषम् , बर्हिषि=मानसे यज्ञे, प्रौक्षन् =प्रोक्षितवन्तः, कीदृशमित्याह :—अग्रतः= सर्वसृष्टेः पूर्वम् , पुरुषं जातम् =पुरुषत्वेनोत्पन्नम् , तेन=पुरुषेण पशुना, देवा अयजन्त=मानसभागं निष्पादितवन्तः, (देवास्ते) साध्याः=सृष्टि-साधनयोग्या (तथा) ऋषयः=मन्त्रद्रष्टारः च ये सन्ति, ते सर्वे प्ययजन्तेत्यर्थः ।

यज्ञम्=यजनीय, तम् पुरुषम्=उस पुरुष को, बर्हिषि=मानसिक यज्ञ में, प्रौक्षन्=जल से छिड़क कर पवित्र बनाया जो कि पुरुष, अग्रतः= सृष्टि से पूर्व, पुरुषम्=पुरुष के रूप में, हिरण्यगर्भ जातम्=उत्पन्न हुआ था। तेन=उस यज्ञ पुरुष से, देवाः=देवताओं ने, साध्याः=सृष्टि के साधन मे लगे हुए प्रजापति आदि ने, च=और, ये=जो, ऋषयः=ऋषि हैं, उन्होंने अयजन्त=मानस यज्ञ को सम्पन्न किया, अर्थात् देवताओं ने, प्रजापतियो ने और ऋषियो ने अपने-अपने संकल्पो से सृष्टि बनाई।

संहिता-पाठः

८. तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः
संभृतं पृषदाज्यम् ।
पशून्तांश्चक्रे वायव्यान्
आरण्यान्ग्राम्याश्च ये ॥

पद-पाठः

तस्मात् । यज्ञात् । सर्वऽहुतः ।
सम्ऽभृतम् । पृषत्ऽआज्यम् ।
पशून् । तान् । चक्रे । वायव्यान् ।
आरण्यान् । ग्राम्याः । च । ये ॥

८. संस्कृतव्याख्या :—सर्वहुतः=सर्वात्मकपुरुषो हूयते यत्र सः। तस्मात् =पूर्वोक्तात् मानसात्, यज्ञात्, पृषदाज्यम् =दधिमिश्रमाज्यम्, संभृतम्=संपादितम्, (तथा च) वायव्यान् =वायुदेवताकान्, आरण्यान् = वन्यान्, पशून् चक्रे, (तथा) ये च, ग्राम्याः=गवाश्वादयः, तानपि चक्रे।

सर्वहुतः=सर्वात्मक पुरुष को जिस यज्ञ मे आह्वान किया गया है ऐसे, तस्मात्=उस, यज्ञात्=मानस यज्ञ से, पृषदाज्यम्=दही मिला हुआ घी, संभृतम्=बनाया गया, अर्थात् दही आदि भोग्य पदार्थों को बनाया, तथा वायव्यान्=वायु देवता वाले, और आरण्यान्=जंगल में रहने वाले हरिण आदि, पशून्=पशुओं को, च=और, ये=जो, ग्राम्याः=ग्राम मे रहने वाले गौ अश्व आदि पशु हैं, तान्=उन को भी, चक्रे=बनाया।

मैक्डानल ने 'सर्वहुतः' का अच्छे प्रकार से जिस में हवि प्रदान की गई ऐसा यज्ञ (completely offered sacrifice) यह अर्थ किया है। 'पृषदाज्यम्' का जमा हुआ चक्केदार घी (clotted butter) अर्थ किया है।

संहिता-पाठः

९. तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत
ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्
यजुस्तस्मादजायत ॥

पद-पाठः

तस्मात् । यज्ञात् । सर्वऽहुतः ।
ऋचः । सामानि । जज्ञिरे ।
छन्दांसि । जज्ञिरे । तस्मात् ।
यजुः । तस्मात् । अजायत ॥

९. संस्कृतव्याख्या :—सर्वहुतः, तस्मात् =पूर्वोक्तात् , यज्ञात् , ऋचः, सामानि च, जज्ञिरे=उत्पन्नाः, तस्मात् =यज्ञात् , छन्दांसि=गायत्र्यादीनि, जज्ञिरे, तस्मात् =यज्ञात् , यजुरपि, अजायत ।

उस सर्वहुतः=सर्वात्मक पुरुष बुलाया गया है जिस यज्ञ में ऐसे, यज्ञात् =मानसिक यज्ञ से, ऋचः=ऋग्वेद, सामानि=सामवेद, जज्ञिरे=उत्पन्न हुए, और तस्मात्=उस यज्ञ से, छदाँसि=गायत्री आदि छन्द या अथर्ववेद, जज्ञिरे=उत्पन्न हुए, तस्मात्=उस यज्ञ से, यजुः=यजुर्वेद भी, अजायत=उत्पन्न हुआ ।

मैक्डानल ने 'यजुः' पद का अर्थ यज्ञ सम्बन्धी नियम (sacrificial formula) किया है ।

संहिता-पाठः

१०. तस्मादश्वा अजायन्त
ये के चोभयादतः ।

गावो ह जज्ञिरे तस्मात्
तस्माज्जाता अजावयः ॥

पद-पाठः

तस्मात् । अश्वाः । अजायन्त ।
ये । के । च । उभयादतः ।
गावः । ह । जज्ञिरे । तस्मात् ।
तस्मात् । जाताः । अजावयः ॥

१०. संस्कृतव्याख्या :—तस्मात्=पूर्वोक्तात्, अश्वाः, अजायन्त, (तथा) ये के च, गर्दभा अश्वतराश्च, उभयादतः=ऊर्ध्वाधोभागयोः दन्तयुक्ताः, (तेऽप्यजायन्त) (तथा) तस्मात्, गावः, जज्ञिरे, किं च तस्मात्, अजावयः च, जाताः ।

व्याकरणम् :—अजावयः=अजाश्च अवयश्च इतरेतरद्वन्द्वः ।

तस्मात्=उक्त यज्ञ से, अश्वाः=घोड़े, अजायन्त=उत्पन्न हुए, ये के च=और जो कोई घोड़ों से भिन्न, उभयादतः=दोनो ओर दांतों वाले गधे या खच्चर आदि हैं वे भी, उत्पन्न हुए, तथा तस्मात्=उस यज्ञ से, गावः=गौएँ, जज्ञिरे=उत्पन्न हुईं, ह=यह बात प्रसिद्ध है, और तस्मात्=उस यज्ञ से, अजावयः=बकरियाँ और भेड़ें भी, जाताः=उत्पन्न हुईं ।

मैक्डानल ने 'गावः' शब्द का अर्थ पशुमात्र (cattle) किया है ।

संहिता-पाठः

११. यत्पुरुषं व्यदधुः
कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य कौ बाहू
का ऊरू पादा उच्येते ॥

पद-पाठः

यत् । पुरुषम् । वि । अदधुः ।
कृतिधा । वि । अकल्पयन् ।
मुखम् । किम् । अस्य । कौ । बाहू इति ।
कौ । ऊरू इति । पादौ । उच्येते इति ॥

११. संस्कृतव्याख्या :—यत् =यदा, पुरुषम् =विराड्रूपम् , व्यदधुः= संकल्पेनोत्पादितवन्तः, (तदानीम्), कतिधा=कतिभिः प्रकारैः, व्यकल्पयन् = विविधं कल्पितवन्तः, अस्य=पुरुषस्य, मुखम् , किम् , (आसीत्) कौ, बाहू , कौ, ऊरू, कौ, पादौ, उच्येते इति प्रश्नः ।

अब ब्राह्मणादि की सृष्टि बताने के लिए कुछ प्रश्न किए जाते हैं। प्रजापति के प्राणस्वरूप देवताओं ने, यत्=जब, पुरुषम् =विराट् रूपी पुरुष को, व्यदधुः=संकल्प से उत्पन्न किया, तब कतिधा=कितने प्रकार से, व्यकल्पयन्=उसे बनाया। अस्य=और इस विराट् पुरुष का, मुखम् = मुँह, किम् =क्या था, बाहू=दो भुजाएँ, कौ=कौन-सी थीं। ऊरू=दो जंघाएँ, पादौ=और दो पैर, कौ उच्येते=कौन से कहे जाते हैं। यह प्रश्न है, इस प्रश्न मे, विराट् पुरुष की जिज्ञासा प्रकट की गई है।

संहिता-पाठः

१२. ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्
बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः
पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥

पद-पाठः

ब्राह्मणः । अस्य । मुखम् । आसीत् ।
बाहू इति । राजन्यः । कृतः ।

ऊरू इति । तत् । अस्य । यत् । वैश्यः ।
पत्ऽभ्याम् । शूद्रः । अजायत ॥

१२. संस्कृतव्याख्या :—(उत्तरयति) अस्य=प्रजापतेः, ब्राह्मणः=ब्राह्मणत्वजातिविशिष्टः पुरुषः, मुखमासीत् =मुखादुत्पन्नः, राजन्यः=क्षत्रियजातिमान् पुरुषः, बाहूकृतः=बाहुत्वेन निष्पादितः । तत् =तदानीम् , अस्य=प्रजापतेः, यत् =यौ, ऊरू तद्रूपः वैश्यः (संपन्नः), पद्भ्याम् =पादाभ्याम् । शूद्रः=शूद्रत्वजातिमान् पुरुषः, अजायत ।

उक्त प्रश्नो का उत्तर देते हैं कि अस्य=इस प्रजापति का, ब्राह्मणः=ब्राह्मणत्व जातिविशिष्ट पुरुष, मुखमासीत् =मुख से उत्पन्न हुआ, और राजन्यः=क्षत्रिय जाति वाला पुरुष दो भुजाओ के समान, कृतः=बनाया, अर्थात् क्षत्रिय बाहु से उत्पन्न हुआ, तत्=उस समय, अस्य=इस प्रजापति का, ऊरू=ऊरू के समान, यत् वैश्यः=जो वैश्य जाति का पुरुष है वह बना, अर्थात् ऊरू से वैश्य जाति उत्पन्न हुई । तथा पद्भ्याम्=दोनो पैरो से, शूद्र=शूद्र जाति वाला पुरुष, अजायत=उत्पन्न हुआ ।

संहिता-पाठः

१३. चन्द्रमा मनसो जातश्
चक्षोः सूर्यो अजायत ।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च
प्राणाद्वायुरजायत ॥

पद-पाठः

चन्द्रमाः । मनसः । जातः ।
चक्षोः । सूर्यः । अजायत ।
मुखात् । इन्द्रः । च । अग्निः । च ।
प्राणात् । वायुः । अजायत ॥

१३. संस्कृतव्याख्या :—(प्रजापतेः) मनसः=मनःसकाशात्, चन्द्रमाः, जातः, चक्षोः सूर्यः, अजायत, मुखात्, इन्द्रश्च, अग्निश्च, प्राणात्, वायुः, अजायत।

इसी प्रकार मनसः=ब्रह्म के संकल्प से, चन्द्रमाः=चन्द्रमा, जातः= उत्पन्न हुआ। तथा चक्षोः=आँख से, सूर्यः=सूर्य भी, अजायत=उत्पन्न हुआ, मुखात्=मुख से, च=और, इन्द्रः=उत्पन्न हुआ, च=और, अग्निः=अग्नि भी उत्पन्न हुआ, प्राणात्=इस के प्राणवायु से, वायुः=हवा, अजायत=उत्पन्न हुई।

संहिता-पाठः

१४. नाभ्या आसीदन्तरिक्षं
शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्
तथा लोकाँ अकल्पयन्॥

पद-पाठः

नाभ्याः। आसीत्। अन्तरिक्षम्।
शीर्ष्णः। द्यौः। सम्। अवर्तत।
पत्ऽभ्याम्। भूमिः। दिशः। श्रोत्रात्।
तथा। लोकान्। अकल्पयन्॥

१४. संस्कृतव्याख्या :—तथा=अन्तरिक्षादीन्, लोकान्, (देवाः) नाभ्याः=प्रजापतेः नाभेः, अकल्पयन्, तदेव दर्शयति—नाभ्याः, अन्तरिक्षम्, आसीत्, शीर्ष्णः=शिरसः, द्यौः, समवर्तत=उत्पन्ना, पद्भ्याम्, भूमिः, श्रोत्रात् दिशः, (उत्पन्नाः)।

(तथा) अन्तरिक्षम्=अन्तरिक्ष लोक, नाभ्याः=प्रजापति की नाभि से, आसीत्=बना, शीर्ष्णः=शिर से, द्यौः=द्युलोक, समवर्तत=

उत्पन्न हुआ, पद्भ्याम् =दोनो पैरो से, भूमिः=भूमि उत्पन्न हुई, श्रोत्रात् =कानो से, तथा=उसी प्रकार, दिशः=दिशाओं को, अकल्पयन्=बनाया और इस प्रकार, लोकान् =विविध लोकों की रचना की गई।

संहिता-पाठः

१५. स॒प्तास्या॑सन् परि॒धय॒स्
त्रिः स॒प्त स॒मिधः॑ कृ॒ताः ।
दे॒वा यद्य॒ज्ञं त॑न्वा॒ना
अब॑ध्न॒न् पुरु॑षं प॒शुम् ॥

पद-पाठः

स॒प्त । अ॒स्य॒ । आ॒स॒न् । प॒रि॒ऽधयः॑ ।
त्रिः । स॒प्त । स॒म्ऽइधः॑ । कृ॒ताः ।
दे॒वाः । यत् । य॒ज्ञम् । त॒न्वा॒नाः ।
अब॑ध्नन् । पुरु॑षम् । प॒शुम् ॥

१५. संस्कृतव्याख्या :—अस्य=सांकल्पिकयज्ञस्य, सप्त=गायत्र्यादीनि छन्दांसि, परिधयः=परिधिभूतानि, आसन्, (ऐष्टिकस्याहवनीयस्य त्रयः, उत्तरवेदिकास्त्रयः, आदित्यश्च सप्तमः) तथा=समिधः, त्रिसप्त=एकविंशतिः, कृताः, (द्वादशमासाः, पञ्चर्तवः, त्रयो लोकाः, आदित्यश्च), यत् =यः पुरुषः वैराजोऽस्ति, (तम्) पुरुषम्, देवाः, यज्ञम्, तन्वानाः=कुर्वाणाः, पशुम्, अबध्नन् =विराट्पुरुषमेव पशुत्वेन कल्पितवन्तः।

अस्य=इस मानस यज्ञ के, सप्त=सात छन्द, परिधयः=मर्यादाएँ, परिधियाँ, आसन् =थीं। (आहवनीय की तीन परिधियाँ, उत्तरवेदिका की तीन परिधियाँ और आदित्य, इस प्रकार सात परिधियाँ बनीं) तथा समिधः=समिधाएँ, त्रिःसप्त=२१ (इक्कीस), कृताः=बनाई। १२ महीने, ५ ऋतुएँ, भूर्भुवः स्वः नाम के ३-तीन लोक और एक आदित्य यह

सब मिल कर २१ (इक्कीस) समिधाएँ हैं। यत्=जो विराट् नाम का पुरुष है, उस पुरुषम्=पुरुष को, देवाः=प्रजापति प्राण, इन्द्रियरूपी देवताओं ने, यज्ञम्=उस मानस यज्ञ को, तन्वानाः=करते हुए, पशुम्=पशु के रूप मे, अबध्नन्=बाँधा, अर्थात् माना, स्वीकार किया। पशु का अर्थ पश्यति इति पशुः इस व्युत्पत्ति से चर जगत् है।

मैक्डानल ने 'परिधयः' का अर्थ सीमा का निर्देश करने वाले खम्भे (enclosing sticks) किया है, तथा 'पशुम्' का अर्थ=बलि का पशु (victim) किया है।

संहिता-पाठः

१६. य॒ज्ञेन॑ य॒ज्ञम॑यजन्त दे॒वास्
तानि॒ धर्मा॑णि प्रथ॒मान्या॑सन्।
ते ह॒ नाकं॑ महि॒मान॑: सचन्त॒
यत्र॒ पूर्वे॑ सा॒ध्याः सन्ति॑ दे॒वाः ॥

पद-पाठः

य॒ज्ञेन॑। य॒ज्ञम्। अ॒य॒ज॒न्त॒। दे॒वाः।
तानि॑। धर्मा॑णि। प्र॒थ॒मानि॑। आ॒स॒न्।
ते। ह॒। नाक॑म्। म॒हि॒मान॑:। स॒च॒न्त॒।
यत्र॑। पूर्वे॑। सा॒ध्याः। सन्ति॑। दे॒वाः।

१६. संस्कृतव्याख्या :—देवाः, यज्ञेन=पूर्वोक्तेन, यज्ञम्=यज्ञस्वरूपम्, प्रजापतिम्, अयजन्त=पूजितवन्तः, (तस्मात्) तानि=प्रसिद्धानि, धर्माणि=जगद्रूपविकाराणां धारकाणि, प्रथमानि=मुख्यानि, आसन्, यत्र=यस्मिन्, पूर्वे, साध्याः=पुरातनाः साधकाः, देवाः, सन्ति=तिष्ठन्ति, तत्, नाकम्=विराट्प्राप्तिरूपं स्वर्गम्, ते महिमानः=तदुपासका महात्मानः, सचन्त=प्राप्नुवन्ति।

उक्त सम्पूर्ण भाव को पुनः संक्षेप मे कहते हैं कि:—देवाः=देवताओ ने, यज्ञेन=संकल्प से, यज्ञम्=यज्ञस्वरूप प्रजापति को, अयजन्त=पूजा। इस प्रकार पूजा करने के बाद तानि=प्रसिद्ध, धर्माणि=जगत्‌रूपी विकार को धारण करने वाले पञ्चतत्त्व हैं, वे प्रथमानि=प्रथम रूप से, आसन्=बने, यत्र=जिस स्वर्गलोक में, पूर्वे=प्राचीन, साध्याः=विराट् की उपासना के द्वारा सिद्धि करने वाले, देवाः=देवगण, सन्ति=रहते हैं। उस नाकम्=स्वर्ग को, ते=वे, महिमानः=उपासक महात्मा लोग, ह=निश्चय से, सचन्त=प्राप्त होते हैं।

मैक्डानल ने 'धर्माणि' का अर्थ नियम (ordinances) किया है, तथा 'महिमानः' का शक्तियाँ (powers), एवं 'नाकम्' का आकाश (firmament) अर्थ किया है।

(१०-१२९) सृष्ट्युत्पत्तिसूक्त

संहिता-पाठः

१. नास॑दासी॒न्नो सदा॑सीत्त॒दानीं॒
नासी॒द्रजो॒ नो व्यो॑मा प॒रो यत्।
किमाव॑रीवः॒ कुह॒ कस्य॒ शर्म॒न्न्-
अम्भः॒ किमा॑सी॒द्गह॑नं गभी॒रम्॥

पद-पाठः

न। अस॑त्। आ॒सी॒त्। नो इति॑। सत्। आ॒सी॒त्। त॒दानी॑म्।
न। आ॒सी॒त्। रजः॑। नो इति॑। विऽओ॑म। प॒रः। यत्।
किम्। आ। अ॒व॒री॒व॒रिति॑। कुह॑। कस्य॑। शर्म॑न्।
अम्भ॑ः। किम्। आ॒सी॒त्। गह॑नम्। ग॒भी॒रम्॥

१. संस्कृतव्याख्या :—तदानीम् =प्रलयदशायाम् , असत् = निरुपाख्यम् , न आसीत् , (तथा) नो सत् =नैव सदात्मवत् सत्त्वेन निर्वाच्यम् , आसीत् , नासीद्रजः =पातालादयः पृथिव्यन्ता नासन्नित्यर्थः, व्योम= अन्तरिक्षम् , नो=नैवासीत् , परः =व्योम्नः परस्तात् , यत् =यत्किञ्चिदस्ति (तदपि नासीत्), किम् , आवरीवः =आवरणीयं तत्त्वम् , (नासीदित्यर्थे प्रश्नः) कुह=कुत्र, कस्य, शर्मन् =शर्मणि (कस्य जीवस्य शर्मणि तदावरकमावृणुयात्) गहनम् =दुष्प्रवेशम् , गभीरम् =अत्यगाधम् , अम्भः, किमासीत् , तदा न किञ्चिदासीदिति ।

व्याकरणम् :—आवरीवः =आवृणोतीति आवरणो वा आवरिः औणादिक ई आवृ+ई मतुबर्थे 'अ' प्रत्ययः, 'अन्येषामपि दृश्यते' इति दीर्घः ।

परिचयः—इस सूक्त का परमेष्ठी नाम का प्रजापति ऋषि है । सृष्टि, स्थिति, प्रलय आदि का कर्ता परमात्मा देवता है । त्रिष्टुप् छन्द है ।

'तपसः तत् महिना अजायत एकम् ' इत्यादि मन्त्रों से सृष्टि का निरूपण ऋग्वेद के अगले मन्त्रों में आगे करेंगे । अब सृष्टि से पहली प्रलयावस्था का वर्णन करते हैं ।

उस प्रलय दशा में इस जगत् का मूल कारण—असत् =शशविषाण के समान निरुपाख्य (अभावात्मक), न=नहीं, असीत्=था, क्योंकि ऐसे कारण से भावरूप जगत् उत्पन्न नहीं हो सकता, तथा नो= नही, सत् =सत्ता वाला जिसे भावरूप से (निर्वाच्य) कहा जा सके ऐसा, आसीत् =था, अर्थात् सत् असत् से विलक्षण अनिर्वाच्य ही जगत् का कारण था । "नो सत्" इस पद से यदि आत्मा की पारमार्थिक सत्ता का निषेध किया जाता है तो आत्मा निरुपाख्य हो जायगा । यदि कहो कि यहाँ आत्मा का निषेध ही नहीं किया गया क्योंकि

"आनीत् अवातम्" इत्यादि मन्त्रभाग से आत्मा की सत्ता आगे बतलाई जायगी, अतः "नो सत" इस वाक्य से परिशेष न्याय के द्वारा माया या प्रकृति की ही सत्ता का निषेध किया गया है तो यह भी ठीक नहीं क्योंकि इस अवस्था में "तदानीम्" यह विशेषण निरर्थक हो जायगा। एवं माया की पारमार्थिक सत्ता के निषेध का यह प्रकरण भी नहीं, क्योंकि माया की पारमार्थिक सत्ता व्यवहार दशा मे भी नहीं मानी जाती। इसलिए व्यावहारिक सत्ता वाले पृथिवी आदि पाँच महाभूतो की जब प्रलय के समय कारणरूप में सत्ता थी तब "नो सत्" यह निषेध उचित नहीं। इस शंका का उत्तर देने के लिए कहते हैं कि—रजः=लोक भी, न आसीत्=उस समय नहीं थे। यहाँ पर 'रजः' शब्द को जातिपरक मान कर 'रजः' इस एक वचन का प्रयोग किया गया है, अर्थात् पाताल आदि सातो लोक भी उस समय न थे। तथा व्योम=आकाश लोक भी, नो=नहीं था, और यत्=जो, परः=आकाश के आगे रहने वाले द्युलोक से लेकर सत्यलोक पर्यन्त सात लोक हैं वे भी नहीं थे, इस प्रकार चौदह भुवनो वाला ब्रह्माड भी अपने रूप मे नहीं था। आवरीवः=आवरण करने वाला, आकाशादि रूप पदार्थ भी आवरणीय के न होने से, किम्=चर्चा का विषय नहीं बन सकता। वह आवरण करने वाला तत्त्व, कुह=जिस जगह पर रहे वह आधारभूत प्रदेश भी नहीं था, कस्य=किसी भी भोक्ता जीव के, शर्मन्=सुख-दुःखानुभव रूपी भोग के होने पर ही वह आवरण करने वाला पदार्थ आवरण करने वाला कहा जा सकता है अथवा नहीं। जीवों के उपभोग के लिए सृष्टि बनती है। वे जीव तब विलीन थे इस लिए वे भी आवरण की सत्ता के कारण नहीं बन सकते थे, अर्थात् भोग्य-प्रपंच और भोक्तृ-प्रपंच दोनो ही नहीं थे। सब के निषेध करने से जल का भी निषेध संभव है किन्तु 'आपो ह वा इदं अग्रे सलिलमासीत्' तै० संहिता ७।१।५।१ इस श्रुति के आधार पर कोई उस समय जल की

सत्ता न मान बैठे इस लिए उसका पृथक् निषेध करते हुए कहते हैं कि, गहनम् =दुष्प्रवेश, गभीरम् =अत्यन्त अगाध, अम्भः=जल, किम् = क्या, आसीत् =था, अर्थात् वह भी नहीं था। उक्त तैत्तिरीयसंहिता का वचन अवान्तर प्रलय का निर्देश करता है, महाप्रलय का नहीं।

मैक्डानल ने 'रजः' का अर्थ वायु (not the air) किया है। 'किम् आवरीवः' किसे अपने में रखता (what did it contain) किया है। 'कस्य शर्मन्' का अर्थ किस की रक्षा (in whose protection) किया है।

संहिता-पाठः

२. न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि
न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं
तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास॥

पद-पाठः

न। मृत्युः। आसीत्। अमृतम्। न। तर्हि।
न। रात्र्याः। अह्नः। आसीत्। प्रऽकेतः।
आनीत्। अवातम्। स्वधया। तत्। एकम्।
तस्मात्। ह। अन्यत्। न। परः। किम्। चन। आस॥

२. संस्कृतव्याख्याः—(तदानीम्) न मृत्युरासीत्, तर्हि=प्रतिहार-समये, अमृतम् न=अमरणमपि नासीत्, रात्र्याः, अह्नः च, प्रकेतः= प्रज्ञानम्, न आसीत्, स्वधया=मायया, (युक्तम् ब्रह्म) (एकब्रह्म आसीदिति तात्पर्यम्) तस्मात् =मायायुक्तात् ब्रह्मणः, अन्यत् किं चन, न आस=न बभूव, परः=परस्तात् (सृष्टेरूर्ध्वं वर्तमानमिदं जगत्—तदपि न बभूवेत्यर्थः), तत् =ब्रह्मतत्त्वम्, आनीत् =प्राणितवत्, अवातम्, एकम्, आसीदिति।

व्याकरणम् :—प्रकेतः=प्र+कित+घञ्।

इस प्रकार सर्वसंहार होने पर क्या संहार करने वाला मृत्यु ही उस समय था इस का उत्तर देते हैं कि—मृत्युः=मृत्यु (यम), न=नहीं, आसीत् =था, मारने वाले के न होने पर सब अमर हो जावेंगे इसलिए कहते हैं कि अमृतम्=अमरण, अर्थात् प्राणियों की स्थिति भी, तर्हि=उस प्रलय के समय, न= नहीं थी। रात्र्याः=रात्रि का, अह्नः=दिन का, प्रकेतः=ज्ञान, न=नहीं, आसीत्=था, क्योंकि सूर्य और चन्द्रमा ही नहीं थे। ("तदानीम्" यह कालवाची व्यवहार तो उपचार से किया गया है)। तत् =वह ब्रह्मतत्त्व ही, आनीत्=प्राण, (सत्ता) वाला था, और वह अवातम्=अपनी क्रिया से शून्य था, तथा स्वधया=माया के साथ (स्वस्मिन् ब्रह्मणि धीयते इति स्वधा=माया), एकम्=अविभाग रूप मे था, तस्मात्=उक्त मायासहित ब्रह्म से, अन्यत्=भिन्न, किं चन=कुछ भी पदार्थ, ह=निश्चय रूप से, न आस=नहीं था, परः=सृष्टि से पूर्व यह जगत् भी, न=नहीं था।

संहिता-पाठः

३. तम॑ आसी॒त्तम॑सा गू॒ळ्हमग्रे॑
ऽप्रके॒तं स॑लि॒लं सर्व॑मा इ॒दम्।
तु॒च्छ्येना॒भ्वपि॑हितं॒ यदासी॑त्
तप॑स॒स्तन्म॑हि॒नाजा॑य॒तैक॑म् ॥

पद-पाठः

तमः॑। आ॒सी॒त्। तम॑सा। गू॒ळ्हम्। अग्रे॑।
अ॒प्र॒ऽके॒तम्। स॒लि॒लम्। सर्व॑म्। आ॒ः। इ॒दम्।
तु॒च्छ्येन॑। आ॒भु। अपि॑ऽहितम्। यत्। आसी॑त्।
तप॑सः। तत्। म॒हि॒ना। अ॒जा॒य॒त॒। एक॑म् ॥

३. संस्कृतव्याख्या :—अग्रे=सृष्टेः प्राक्, (जगत्) तमसा=अन्धकारेण, गूळ्हम्=आवृतम्, तमः=भावरूपाज्ञानं मूलकारणम्, आसीत्,

तच्च, अप्रकेतम् =अप्रज्ञायमानम् , सलिलम् =चलम् , इदम् =दृश्यमानम्, सर्वम् =जगत् सर्वम् , आः =आसीत् , आभु=समन्ताद् भूतम् , तुच्छयेन= तुच्छकल्पनेन भावरूपाज्ञानेनेत्यर्थः, अपिहितम् =आच्छादितम् , आसीत्, एकम् =एकीभूतम् , तमसः =स्रष्टव्यपर्यालोचनरूपस्य, महिना=माहात्म्येन, अजायत=उत्पन्नम् ।

व्याकरणम् :—सलिलम् ='षल' गतौ इलच् ।

इस प्रकार यदि जगत् नहीं था तो फिर किस प्रकार उत्पन्न हुआ। इसलिए कहते हैं कि—अग्रे=सृष्टि से पहले प्रलयदशा मे, सारा जगत् माया नाम के तमसा=अज्ञान से, गूढम्=आच्छादित, आसीत्=था, और यह जगत् भी तमः=अपने मूल कारण में ही, आसीत्=था, तथा कर्म और कर्ता रूप दोनो तब अप्रकेतम्=अज्ञायमान थे, नाम और रूप से रहित थे, क्योंकि इदम्=यह अब दिखाई पड़ने वाला, सर्वम्=सारा संसार, सलिलम्=कारण के साथ अविभाग रूप मे ही, आः=आस=था। या सलिलम् यह दृष्टांत है, जैसे दूध और पानी मिले होते हैं वैसे कार्य और कारण मिले हुए थे। यत्=जो जगत्, आभु= व्यापक, तुच्छयेन=अभावरूप अज्ञान से, अपिहितम्=आच्छादित, आसीत्=था, तत्=वह, एकम् =कारण के साथ मिला हुआ यह जगत्, तपसः=ईश्वर के संकल्परूपी तप से, महिना=विस्तार के साथ, अजायत=उत्पन्न हुआ।

मैक्डानल ने 'आः इदम्' का अर्थ भावरूप में आने वाला (coming into being) किया है। तथा 'तपसः' का अर्थ (heat) 'महिना' का शक्ति (power) अर्थ किया है।

संहिता-पाठः

४. कामस्तदग्रे समवर्तताधि
मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।

सतो बन्धुमसति निरविन्दन्
हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥

पद-पाठः

कामः । तत् । अग्रे । सम् । अवर्तत । अधि ।
मनसः । रेतः । प्रथमम् । यत् । आसीत् ।
सतः । बन्धुम् । असति । निः । अविन्दन् ।
हृदि । प्रतिऽइष्य । कवयः । मनीषा ॥

४. संस्कृतव्याख्या :—अग्रे=प्राक्, कामः=इच्छा (सिसृक्षा); समवर्तत=समजायत, मनसः=अन्तःकरणसम्बन्धि, रेतः=बीजभूतम्, प्रथमम्, यत्=यतः, आसीत्=अभवत्, सतः=सत्त्वेनानुभूयमानस्य जगतः, बन्धुम्=बन्धुहेतुकं कर्म, कवयः=क्रान्तदर्शिनो योगिनः, हृदि=हृदये, मनीषा=बुद्ध्या प्रतीष्य=विचार्य, असति=सद्विलक्षणे कारणे, निरविन्दन्=निष्कृष्यालभन्त ।

व्याकरणम् :—प्रतीष्य=प्रति+'इष्' इच्छायाम्, 'अन्येषामपि' इत्यनेन दीर्घः ।

ईश्वर ने जो संकल्प किया वह किस कारण से किया इस शंका का उत्तर देते हैं कि:– तत्=इसलिए, अग्रे=विकाररूप सृष्टि से उत्पन्न होने से पूर्व, परमेश्वर के मनमें कामः=संसार बनाने की इच्छा, समवर्तत=उत्पन्न हुई, जो संकल्प मनसः अधि=वासना रूप से अवशिष्ट माया मे विलीन सब प्राणियों के अन्तःकरण मे रहता था, अर्थात् उस संकल्प का आधार प्राणियो का मन था ब्रह्म नहीं, रेतः=भावी प्रपंच का कारण, प्रथमम्=पहले कल्प मे किया गया प्राणियों का पुण्य अपुण्य रूपी कर्म, यत्=जिस कारण से सृष्टि काल में, आसीत्=भूष्णु १ बढ़ने वाला या फलोन्मुख बना, जिस के कारण परमेश्वर के मन में सिसृक्षा उत्पन्न हुई सतः–भावरूप से प्रतीयमान

जगत् के बन्धुम्=बन्धन के कारण उस कर्मस्वरूप को, कवयः=तीन कालों को जानने वाले योगी, हृदि=हृदय में स्थित, मनीषा=बुद्धि से, प्रतीष्य=विचार कर के, असति=भाव से विलक्षण अव्याकृत कारण में, निः अविन्दन्=विवेकपूर्वक जानने में समर्थ हुए।

मेकडानल ने 'रेतः' का अर्थ कारण (seed) किया है। इस मन्त्र का अर्थ शब्दार्थ के रूप में मुग्धानल ने यहाँ ठीक किया है।

संहिता-पाठः

५. तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषाम्
अधः स्विदासी३दुपरि स्विदासी३त्।
रेतोधा आसन्महिमान आसन्
स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥

पद-पाठः

तिरश्चीनः। विऽततः। रश्मिः। एषाम्।
अधः। स्वित्। आसी३त्। उपरि। स्वित्। आसी३त्।
रेतःऽधाः। आसन्। महिमानः। आसन्।
स्वधा। अवस्तात्। प्रऽयतिः। परस्तात् ॥

५. संस्कृतव्याख्या :—एषाम्=अविद्याकामकर्मणाम्, रश्मिः=व्यापकतारूपकार्यवर्गः, विततः=विस्तृतः, आसीत्, 'स्वित्' वितर्के, (तत् किम्) तिरश्चीनः=तिरश्चाम्, किं वा, अधः=अधस्तात्, आसीत्, (अथवा) उपरि, (आसीत्), (तदेव विभजते—) (केचिद् भावाः) रेतोधाः=बीजभूतस्य कर्मणो विधातारः भोक्तारश्च आसन्, (अन्ये) महिमानः=विपदादयो योग्याः, आसन्, (तत्र भोक्तृभोग्ययोर्मध्ये), स्वधा=अन्नम्, अवस्तात्=

अवरः, निकृष्ट आसीत्, प्रयतिः=भोक्ता, परस्तात्=उत्कृष्ट आसीत्, भोग्यप्रपञ्चभोक्तृप्रपञ्चस्य शेषभूतं कृतवानित्यर्थः।

एषाम्=इन ('नासदासीत्' इस मंत्र से कही गई अविद्या "कामस्तदग्रे" इस मन्त्र से कहा गया संकल्प "मनसो रेतः" चौथे मन्त्र के इस भाग से कहा गया सृष्टि का कारण, इन) तीनों कारणों का, रश्मिः=सूर्य की किरण के समान, निमिषमात्र में व्याप्त होने वाला सूर्यवर्ग, विततः=विस्तृत, आसीत्=था, वह कार्यवर्ग सब से पहले तिरश्चीनः=क्या टेढ़े रूप मे अवस्थित था अर्थात् क्या वह मध्य में वर्तमान था? स्वित्=क्या, अधः=नीचे वर्तमान था, स्वित्=क्या उपरि=ऊपर, आसीत्=विद्यमान था? अर्थात् उत्पन्न हुआ कार्य जो एक क्षण में विद्यमान होता है वह सब जगह एकदम उत्पन्न हुआ इसलिए यह नहीं जाना जा सकता कि पहले बीच में उत्पन्न हुआ, नीचे उत्पन्न हुआ या ऊपर उत्पन्न हुआ। इस प्रकार उत्पन्न हुए जगत् में कुछ पदार्थ, रेतोधाः=बीजरूपी कर्म के बनाने वाले, जीवरूप में आसन्=थे, कुछ पदार्थ महिमानः=आकाशादि महान् रूप में, आसन्=थे, इस भोक्ता और भोग्य रूप सृष्टि मे, स्वधा=भोग्य पदार्थ, अवस्तात्=निकृष्ट माना जाता है। प्रयतिः=प्रयत्न करने वाला, या प्रकर्ष रूप मे नियम करने वाला भोक्ता, परस्तात्=उत्कृष्ट माना जाता है।

मैकडानल ने 'रश्मिः' का रस्सी (cord) अर्थ किया है। 'तिरश्चीनः' का आरपार (across) अर्थ किया है। 'महिमानः' का शक्तियाँ (powers) अर्थ किया है। 'स्वधा' का अदृश्य शक्ति energy), 'प्रयतिः' का मानसिक शक्ति (impulse) अर्थ किया है।

संहिता-पाठः

६. को अद्धा वेद क इह प्र वोचत्
कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः ।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेना-
था को वेद यत आबभूव ॥

पद-पाठः

कः । अद्धा । वेद । कः । इह । प्र । वोचत् ।
कुतः । आऽजाता । कुतः । इयम् । विऽसृष्टिः ।
अर्वाक् । देवाः । अस्य । विऽसर्जनेन ।
अथ । कः । वेद । यतः । आऽबभूव ॥

६. संस्कृतव्याख्या :—कः=पुरुषः, अद्धा=पारमार्थ्येन, वेद=जानाति, कः वा इह=अस्मिन् लोके, प्र वोचत्=प्रब्रूयात्, इयम्=दृश्यमाना विसृष्टिः=विविधा सृष्टिः, कुतः=कस्मादुपादानात्, कुतः=कस्मान्निमित्त-कारणाच्च, आजाता=समन्तात् प्रादुर्भूता, (इति को वेद), देवाः च, अस्य=जगतः, विसर्जनेन विविधसृष्ट्या, अर्वाक्=अर्वाचीनाः, कृताः पश्चात्सृष्टाः इत्यर्थः, अथ=एवं सति, को वेद, यतः=कारणात्, (जगत्), आबभूव=अजायत ।

इस प्रकार भोक्ता और भोग्य रूप से दो प्रकार की सृष्टि बतला दी गई । अब यह सृष्टि-विज्ञान कितना दुर्ज्ञेय और दुरूह है यह बतलाते हैं:—

कः=कौन मनुष्य, अद्धा=निश्चित रूप से, वेद=जानता है, कः=और कौन, इह=इस लोक में, प्रवोचत्=सृष्टि का विवरण बता सकता है, इयम्=यह दिखाई पड़ने वाली, विसृष्टिः=विविध प्रकार की सृष्टि, कुतः=किस नियति कारण से, हम सब लोग, सृष्टि

आजाता=अच्छे प्रकार से उत्पन्न हुई, और कुतः=किस उपादान कारण से (आजाता=उत्पन्न हुई) ये दोनो बातें, कः=कौन, वेद=जानता है जो विस्तार से बता सके। कोई कहे कि देवगण इस तत्त्व को जानते होंगे तो इसका उत्तर देते हैं कि देवाः=देवगण, अस्य=इस संसार के, विसर्जनेन=विविध रूप से बनने के बाद, अर्वाक्=अनन्तर, अर्थात् भूत भौतिक सृष्टि के बाद में उत्पन्न हुए हैं। अतः अपने से पूर्व काल की सृष्टि को वे नहीं जान सकते, उन से भिन्न कः=कौन मनुष्यादि, वेद=इस जगत् के कारण को जानता है, यतः=जिस कारण से आबभूव=यह सारा संसार उत्पन्न हुआ है।

संहिता-पाठः

७. इयं विसृष्टिर्यत आबभूव
यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्
सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद॥

पद-पाठः

इयम्। विऽसृष्टिः। यतः। आऽबभूव।
यदि। वा। दधे। यदि। वा। न।
यः। अस्य। अधिऽअक्षः। परमे। विऽओमन्।
सः। अङ्ग। वेद। यदि। वा। न। वेद॥

७. संस्कृतव्याख्या :—यतः=उपादानभूतात् परमात्मनः, इयम्, विसृष्टिः, आबभूव=समन्ताज्जाता, 'सोऽपि किल' यदि वा, दधे=धारयति, यदि वा न, (एवं कोऽन्यो धर्तुं शक्नुयात्), अस्य=जगतः, यः, अध्यक्षः=ईश्वरः, परमे=उत्कृष्टे, सत्यरूपे, व्योमन्=आकाशवत् निर्मले स्वप्रकाशे,

(प्रतिष्ठितः), सो अङ्ग=स ईश्वरः 'अङ्ग इति प्रसिद्धौ', अपि, वेद=जानाति, यदि वा, न वेद=न जानाति, सर्वज्ञ ईश्वर एव तां जानीयादित्यर्थः ।

इस प्रकार जैसे इस जगत् का निर्माण दुर्विज्ञेय है उसी प्रकार निर्मित जगत् का यथावत् पालन भी कठिन है—

यतः=जिस उपादान कारण से, इयम् विसृष्टिः=यह पहाड़, नदी समुद्रादि रूप विचित्र सृष्टि, आबभूव=उत्पन्न हुई है, वह कारण भी यदि वा=अथवा, दधे=सृष्टि को धारण किये हुये है, यदि वा=अथवा नहीं धारण किये हुये है, अर्थात् जिसने सृष्टि को बनाया यदि धारण कर सकता है तो वही धारण कर सकता है, अन्य नहीं । यः=जो, अस्य=इस जगत् का, अधि-अक्षः=ईश्वर है, वह परमे=उत्कृष्ट, व्योमन्=आकाश के समान अपने प्रकाश मे, या अपने आनन्द स्वरूप में, प्रतिष्ठित रहता है इस प्रकार का स्वः=वह सुखस्वरूप परमेश्वर, अंग=हे श्रोताओ ! यदि वा=क्या, वेद=जानता है, अथवा न वेद=नहीं जानता है । एकमात्र वह सर्वज्ञ ईश्वर ही इस सृष्टि को जान सकता है, अन्य नहीं ।

मैक्डानल ने 'दधे' का अर्थ सृष्टि की नींव रखी (founded it) किया है ।

मुद्रक :—
श्री देवदत्त शास्त्री, विद्याभास्कर,
विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान प्रैस,
साधु आश्रम, होशिआरपुर ।